जो अचूक-चिकित्सा-विधियों को जान-कर अच्छे और सफल चिकित्सक बनना चाहते हैं वे पहले इस किताब को शुरू से अख़ीर तक तीन-चार बार अच्छी तरह पढ़ जायँ और तब चिकित्सा करना शुरू करें।

जो किसी ख़ास रोग की चिकित्सा के लिए सिर्फ़ उसी रोग के विवरण को पढ़ेंगे वे उचित लाभ न उठा सकेंगे। किताब को शुरू से अख़ीर तक पढ़ जाना ज़रूरी है।

—लेखक

दो बातें

[रायबहादुर डाक्टर लक्ष्मीनारायण चौधुरी, रिटायर्ड सिविल सर्जन, की लिखी प्रस्तावना]

मुझे बेहद ख़ुशी है कि एक हिन्दुस्तानी भाषा में श्रीयुत् जानकीशरण वर्मा, बी० ए०, ने 'रोगों की अचूक चिकित्सा' जैसी फ़ायदेमन्द किताब लिखी है। मुझे पूरी उम्मेद है कि इस किताब से हर ख़ासों-आम को अच्छी तनदुरुस्ती क़ायम रखने में और बीमारियों को सहज ही भगा देने में पूरी पूरी मदद मिलेगी। इस किताब के लेखक ने किसी स्कूल या कालेज में डाक्टरी की तालीम नहीं पाई है, लेकिन यह अच्छा ही है, क्योंकि तब तो वह इलाज के सीधे-सादे, सही और अचूक ढंगों को नहीं बता सकते थे। लेखक ने तनदुरुस्ती और कुदरती इलाज की बहुत सी किताबें और पर्चे-अख़बारात पढ़े हैं, और इसके साथ ही काफ़ी तजुर्बा हासिल किया है। मैं उनके ख़यालात की क़द्र करता हूँ और इस किताब को बहुत मुफ़ीद समझता हूँ। इस किताब में सही और अचूक इलाज की सभी तरकीबें—ठीक ठीक खाना; हवा, धूप, पानी और मिट्टी का इस्तेमाल; कसरत और आराम के तरीके; अलग अलग बीमारियों के इलाज के तरीके—बताई गई हैं। छोटे छोटे क़िस्से-कहानियों से यह किताब और भी दिलचस्प हो गई है। किसी भी हिन्दुस्तानी भाषा में अभी तक कोई ऐसी किताब नहीं निकली है और अंगरेज़ी में भी ऐसी किताबों की गिनती कम ही होगी। भाषा इसकी ऐसी है कि

मामूली पढ़े-लिखे मर्द और औरत सभी इसमें दी हुई बातों को अच्छी तरह समझ सकते हैं। इस किताब की एक बड़ी खूबी यह है कि लेखक ने मुश्किल बातों को भी इस तरह समझाया है कि वह सभी की समझ में आ जाती हैं।

तनदुरुस्ती का मसला बहुत आसान है, लेकिन अफ़सोस कि इन दिनों लोगों ने उसे बहुत मुश्किल बना दिया है। तनदुरुस्त रहना ही शरीर की मामूली कुदरती हालत है, लेकिन इन्सान ने कुदरत के रास्ते में बहुत सी अड़चनें डाल रखी हैं। इसी से इन दिनों बीमारियों की भरमार है। इलाज करने वालों ने इस उलझन को बढ़ाकर तनदुरुस्ती के मसले को और भी पेचीदा कर दिया है। लेकिन यह मसला इतना पेचीदा नहीं है। कुदरत की राह में अड़चन न डालिए, आप तनदुरुस्त बने रहिएगा। अगर आप बीमार हैं तो जो अड़चनें आपने पहले से डाल रखी हैं उन्हें हटा दीजिए—आप अच्छे और तनदुरुस्त हो जाइएगा। इस सीधी बात को समझना मुश्किल न होना चाहिए। अगर कुदरत के उसूलों की पाबन्दी की जाय तो आदमी की उम्र कम से कम १०० साल की हो और इसके बाद भी वह हँसता हँसता अपने शरीर को छोड़े, रट-भुगतकर न मरे। दवा से कुछ भी फ़ायदा नहीं हो सकता। मैं मामूली दवाओं से लेकर क़ीमती दवाओं को अपनी ज़िन्दगी में अच्छी तरह आजमा चुका हूँ और मुझे यह कहने में कोई हिचक नहीं है कि वे बेकार ही नहीं बल्कि नुक़सानदेह भी हैं। शरीर को मामूली ग़िज़ा और हवा, पानी, धूप के सिवा और किसी चीज़ की भी ज़रूरत नहीं है। कुदरत ने उसे ऐसा ही बनाया है कि वह अपनी मरम्मत और सफ़ाई आप ही कर लेता है। मुझे खुशी है कि श्रीयुत् जानकीशरण वर्मा ने अपनी किताब में इस बात पर जोर दिया है और साथ ही उन

क़ुदरती तरकीबों का भी ज़िक्र किया है, जिनसे बीमारी दूर की जा सकती है।

ऐसी किताब की इस मुल्क में सख़्त ज़रूरत थी। यहाँ ग़ुरबत फैली है। लोगों को भर पेट खाने को नहीं मिलता। फिर फ़ीस और दवा के लिए रुपये कहाँ से लायें। अगर लायें भी तो यह ज़रूरी नहीं है कि बीमारी अच्छी हो ही जायगी। ऐसी हालतों में शर्तिया क़ुदरती इलाज ही काम कर सकता है। बुख़ार या किसी भी तेज़ बीमारी में उपवास और एनीमा का इस्तेमाल कर के देख लीजिए—आपको ख़ुद ही पता चल जायगा। याद रखिए, अव्वल तो किसी को भी बीमार न होना चाहिए और अगर कोई बीमार हो जाय तो उसे जल्दी से और बिना ख़र्च के ही अच्छा हो जाना चाहिए।

मुझे पूरी उम्मेद है कि इस किताब से मुल्क के अमीर-ग़रीब सबों को फ़ायदा पहुँचेगा और जिस मक़सद से लेखक ने इसे तैयार किया है वह पूरा होगा। यह किताब सब के घरों में रहना चाहिए और इसको पढ़कर फ़ायदा उठाना चाहिए।

जबलपुर

—लक्ष्मीनारायण चौधुरी
रिटायर्ड सिविल सर्जन

समर्पण

डाक्टर इक़बालकृष्ण तैमिनि

और

श्रीमती कुँअर तैमिनि

को

सादर समर्पित

आप की सौजन्यता से ही इस विषय मे मेरी रुचि हुई और आपने ही पहले-पहल कितावें दे देकर इस विषय को सीखने के लिए मुझे उत्साहित किया

—लेखक

मैंने यह पुस्तक क्यों लिखी

मैं यह बताना चाहता हूँ कि यह पुस्तक मैंने क्यों और कैसे लिखी।

कुछ साल हुए मैं बुरी तरह बीमार हुआ। महीनों खाट पर लाचार होकर पड़ा रहा। तरह तरह की चिकित्साएं की गईं पर सभी असफल रहीं। जब चिकित्सकों ने समझा कि मैं अच्छा नहीं हो सकता तो कुछ मित्रों और शुभैषियों ने, जिनमें स्वदेश के सुविख्यात नेता, पंडित हृदयनाथ कुँजरू, का नाम विशेष उल्लेखनीय है, प्राकृतिक चिकित्सा को आजमाने की सलाह दी। इस चिकित्सा से मैं दस दिन के अन्दर ही उठ खड़ा हुआ और यद्यपि पूरी तनदुरुस्ती हासिल करने में देर लगी, मैं हर रोज, हर हफ़्ते पहले से ज्यादा अच्छा होने लगा। मैं पहले भी थोड़ी बहुत होमियोपैथिक और आयुर्वेदीय चिकित्सा करता था, पर अब तो मुझे चिकित्सा का एक अचूक अस्त्र मिला-सा मालूम होने लगा। मैंने देखा कि इस चिकित्सा-विधि में अन्दाजी और अटकल-पच्चू बातें नहीं हैं। ऐसा नहीं है कि अगर यह दवा न लगी तो वह दवा दो। इस में तो प्राकृति के अचूक नियमों का सहारा है। जिस तरह दिन होता है, रात होती है, जन्म होता है, मृत्यु होती है, ऋतुएँ अपना अपना काम करती हैं—जिस तरह विश्व की सभी बातें कारण और कार्य के संबंध से ठीक ठीक होती हैं, उसी तरह तनदुरुस्ती के नियमों को तोड़ने से रोग होता है और उन नियमों का फिर से पालन करने से तनदुरुस्ती वापस आ जाती है। प्रकृति में न्याय है—नियम तोड़ो, दुख भोगो, नियमों का

पालन करो, सुखी बनो। इसी विश्वास से प्रेरित होकर मैं प्राकृतिक चिकित्सा की अचूक विधियों को जानने की कोशिश करने लगा। अपनी चिकित्सा के दिनों में ही, जब मैं कुछ स्वस्थ हुआ तो इस विषय की पुस्तकें पढ़ने लगा। इसके साथ ही साथ इन्हीं दिनों दूसरे लोगों की चिकित्सा करने के मौके भी मिले। ज्यों ज्यों तजुर्बा बढ़ता गया और चिकित्सा में सफलता मिलती गई त्यों त्यों उत्सुकता हुई कि मातृ-भाषा में मैं एक पुस्तक लिखूँ, जिससे साधारण ज्ञान वाले देश-वासियों, विशेषकर बहनों और माताओं, को इस विषय का ज्ञान हासिल हो। देश की हालत को देखते हुए यह जरूरी है कि यहां के रहने वाले तनदुरुस्त और तगड़े बनें, रोग-पीड़ित न हों और अगर हों भी तो बिना ज्यादा खर्च के ही जल्दी से जल्दी और जरूर अच्छे हो जांय। रोगों की अचूक चिकित्सा तो मेरा उद्देश्य है ही, लेकिन असली उद्देश्य है कि देश-वासी बीमार ही न हों। इन्हीं उद्देश्यों से मैंने यह किताब लिखी, और इसमें वैसी ही भाषा का प्रयोग किया जो आसानी से सबों की समझ में आ जाय। अचूक चिकित्सा के सिद्धान्त बहुत सरल हैं, लेकिन प्रकृति से दूर हो जाने के कारण हम उन्हें जल्दी नहीं समझ पाते। इसका ध्यान रखते हुए इस किताब में एक-एक बात को बहुत बार दुहराया गया है। कोशिश यह की गई है कि साधारण ज्ञान वाले लोग भी सभी बातों को अच्छी तरह समझ जायं। जिन सूत्रों से इस किताब के लिए मुझे 'मैटर' मिले वे नीचे दिये जाते हैं :—

(१) Henry Lindlhar, M D —The Philosophy and Practice of Natural Therapeutics

(२) Adolph Just—Return to Nature

(३) Louis Kuhne—The New Science of Healing; Facial Expression

(४) L. N. Choudhuri—Ideal Diet for Perfect Health and Rejuvenation; Ideal Children and How to get them

(५) K. L. Sarma—Practical Nature Cure, Vols. 1 & 2 और Fasting Cure

(६) Bernarr Macfadden की मासिक पत्रिका Physical Culture और उनकी बहुत सी पुस्तकें

(७) Stanley Lief—Diet Reform Simplified; How to Feed Children from Infancy onwards और उनकी मासिक पत्रिका Health for All

(८) Harry Benjamin—Your Diet in Health and Disease; Everybody's Guide to Nature Cure और Better Sight without Glasses

(९) Sir William Arbuthnot Lane—Good Health और उनकी मासिक पत्रिका New Health

(१०) Reddie Mallett—Nature's Way और दूसरी दूसरी पुस्तकें

(११) Arnold Ehret—Rational Fasting; Mucusless Diet Healing System और दूसरी दूसरी किताबे

(१२) विविध लेखकों की बहुत सी छोटी छोटी पुस्तकें

(१३) रायबहादुर डाक्टर लक्ष्मीनारायण चौधुरी, रिटायर्ड सिविल सर्जन, जबलपुर, के साथ बात-चीत

(१४) अपना अनुभव (तजुर्बा)

नं० १४ को छोड़कर मैं और सबों का अत्यन्त ऋणी हूँ।

इनके अलावा मैं डाक्टर इकबालकृष्ण जैमिनि (इलाहाबाद यूनिवर्सिटी), उनकी धर्म-पत्नी श्रीमती कुंअर जैमिनि, (प्रिन्सिपल एनी बेसंट स्कूल, इलाहाबाद) श्रीयुत गुरुप्रसाद (सब-पोस्टमास्टर, इलाहाबाद और अब लखीमपुर-खीरी), श्रीयुत बालेश्वर प्रसाद सिंह (संचालक, प्राकृतिक-चिकित्सा स्वास्थ्य-गृह, इलाहाबाद), श्रीयुत मूलराज मेहरोत्रा (इलाहाबाद युनिवर्सिटी) और प्रिन्सिपल केदारनाथ गुप्त (अग्रवाल विद्यालय कालेज, इलाहाबाद) का भी ऋणी हूँ। इन मित्रों ने मुझे बराबर ही उत्साहित किया और अपने अनुभवों से मुझे लाभ पहुँचाने की कोशिश की।

मैं लीडर प्रेस, इलाहाबाद, के अधिकारियों का विशेष ऋणी हूँ, जिनकी कृपा से अपने विचारों को मैं आपके सामने रखने में समर्थ हो सका हूँ।

इलाहाबाद
अगस्त, १९३६

—जानकीशरण वर्मा

इसे ज़रूर पढ़िए

दूसरे संस्करण के विषय में

मुझे इसकी बेहद ख़ुशी है कि इस किताब के पहले संस्करण का आशातीत आदर हुआ। किताब का आदर उस में दिये सिद्धान्तों का आदर है, जिससे आशा होती है कि देश-वासी शीघ्र ही प्राकृतिक जीवन के नियमों को फिर से अपना कर रोग और दुर्बलता की अवस्था से ऊँचा उठ जाँयगे।

इस किताब के लिखने का मेरा वास्तविक उद्देश्य है अपने भाइयों और बहनों को रोग-ग्रस्त होने से बिल्कुल बचाना।

मेरी तरह जिन लोगों की अवस्था कुछ ज्यादा है उनकी और हम से भी ज्यादा उम्र वालों की चिंता तो मुझे है ही, लेकिन ज्यादा चिंता उनकी है, जिन्होंने अभी-अभी जीवन शुरू किया है। मैं बच्चों, बालकों और नवयुवकों को रोग से बिल्कुल बचाना चाहता हूँ। इतना ही नहीं ; मैं चाहता हूँ कि वे पूर्णतया स्वस्थ हों। उनके शरीर, भाव और मन की सारी शक्तियाँ पूरी पूरी पुष्ट और विकसित हों और वे जीवन का अत्यधिक आनंद लेते हुए दूसरों के काम आयें। हमें तो जो होना था वह बहुत कुछ हो चुका। हम भी अपनी उन्नति कर सकते हैं, अब से कहीं ज्यादा अच्छे हो सकते हैं, पर हम अपने अतीत से सीमित हैं। इसीलिए हमें अपने बच्चों की ज्यादा फिक्र करनी चाहिए।

इस संस्करण में बहुत सी बातें नई हैं। तीन खंड—'बच्चों का पालन-पोषण', 'स्त्रियों का स्वास्थ्य' और 'प्राकृतिक चिकित्सा

का इतिहास'—बिल्कुल नये हैं। इनके अलावा पुराने खंडों में कई नये अध्याय मिलाये गये हैं। 'दुर्घटनाओं की चिकित्सा' और 'चिकित्सकों के प्रति' ऐसे दो नये अध्याय हैं। इतना ही नहीं, प्रायः हर पेज में कुछ लाइनें बढ़ाई गई हैं और बहुत सी ऐसी बातों पर प्रकाश डाला गया है, जिनका ज़िक्र पहले संस्करण में बिल्कुल न था। पाठक इस संस्करण को एक नई किताब की तरह आदि से अंत तक पढ़ जाने की कृपा करें। मुझे पूरी आशा है कि इस संस्करण से पुराने पाठक भी बहुत संतुष्ट होंगे।

चिकित्सा और स्वास्थ्य से संबंध रखने वाले अनुभव रोज़ ही बढ़ते रहते हैं। मुझे हर्ष है कि आगे के लिए मेरे पास बहुत सी बहुमूल्य बातें अभी से इकट्ठी हो रही हैं। पुराने संस्करण को दुहराने से पहले जो वृद्धि मेरे अनुभव में हुई थी वह पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है।

इलाहाबाद
मार्च, १९३८

—जानकीशरण वर्मा

चित्र-सूची

ाफ़-टोन चित्र—

[नोट—इनके अतिरिक्त भारत तथा अन्य देशों में भी अनेक
ख्यात चिकित्सक हैं जो प्रकृति से ही रोग-निवारण करते हैं]

ादे चित्र—

विषय-सूची

१. साधारण ज्ञान

विषय पृष्ठ

२. अचूक चिकित्सा के ढंग

३. रोगों का इलाज

७. स्त्रियों का स्वास्थ्य

विषय पृष्ठ

८. कुछ और बातें

९. संक्षिप्त इतिहास

तनदुरुस्ती

तनदुरुस्ती शरीर की मामूली हालत है। जरा से ध्यान से शरीर अच्छी हालत में रह सकता है। लेकिन तनदुरुस्ती (स्वास्थ्य) और बीमारी के बारे में लोगों के कुछ अजीब विचार हैं। लोग समझते हैं कि अधिकतर बीमार रहना ही शरीर की मामूली हालत है। हमारे दिलों में भय सा बना रहता है कि न जाने कब हम बीमार हो जाय। होता भी ऐसा ही है। कभी जुकाम (सर्दी) होता है तो कभी बुखार (ज्वर), कभी पेट दुखता है तो कभी सर, कभी पेचिश (आँव) होती है तो कभी पतले दस्त आते हैं और कभी हैजा फैलता है तो कभी चेचक का प्रकोप भयंकर रूप धारण करता है। हर साल, हर मौसम, हर महीने, हर हफ्ते और हर दिन बीमार रहते रहते हम ऐसा समझने लगे हैं कि बीमार रहना मानो मामूली और जरूरी बात है।

कारण और कार्य का संबंध—

सब बातों में कारण और कार्य का संबंध देखा जाता है। बिना कारण, बिना वजह के, कोई बात नहीं होती—यह हम खूब अच्छी तरह समझते हैं। अगर कोई कर्ज में पड़ता है तो हम कहते हैं कि वह अपनी आमदनी से ज्यादा खर्च करता है, इसलिए कर्जदार हुआ। अगर फसल अच्छी नहीं होती तो हम कहते हैं कि

वर्षा अच्छी नहीं हुई, इसी से पैदावार सन्तोषजनक नहीं है। अगर मकान गिर पड़ता है तो कहते हैं कि नींव और दीवार मजबूत नहीं थी। इसी तरह प्रत्येक घटना या बात का कारण हम ढूंढ निकालते हैं। लेकिन जब तनदुरुस्ती की बारी आती है तो कारण और कार्य का संबंध हम बिल्कुल भूल जाते हैं। अगर कोई पूछे कि तनदुरस्ती क्यों खराब हुई तो हम कहते हैं, 'न जाने क्यों हमारी तनदुरुस्ती खराब रहती है। हम तो बराबर अच्छी तरह रहते हैं, मामूली खाना खाते हैं, फिर भी तनदुरुस्ती अच्छी नहीं रहती। हमारे भाग्य में अच्छा रहना लिखा ही नहीं।' इस प्रकार अपने बीमार रहने का दोष हम अपने भाग्य या किसी और के मत्थे मढते हैं। जुकाम क्यों हुआ? ठंढ लग गई। बुखार क्यों हुआ? गर्मी ज्यादा पडती है। फोडे क्यों निकले? बरसात का मौसम है। मानो अपना कोई दोष ही नहीं। दोष या तो ठंढ का है या गर्मी का या बरसात का या किसी और का। हम यह भी देखते हैं कि उसी ठंढ या गर्मी में सभी लोग घूमते-फिरते और रहते हैं, फिर भी कुछ को जुकाम या ज्वर नहीं होता। तो भी अपने लिए सारा दोष हम मौसम के ऊपर ही छोड़ते हैं। मौसम का, बाहरी सर्दी या गर्मी का, प्रभाव (असर) शरीर पर पडता जरूर है, पर यह भी तो देखना चाहिए कि शरीर कैसा है, उसे हम किस तरह रखते हैं, उसे कैसा भोजन देते हैं, उसके अन्दर का खून (रक्त) साफ है या विकार-युक्त—उसे हमने मजबूत बनाया है या कमजोर, वह गर्मी-सर्दी सह सकता है या नहीं

और अगर नहीं तो क्यो नहीं। कारण और कार्य का संबंध ठीक नहीं समझने के कारण हम अपने को निर्दोष बताते हैं और इसी से दुखी बने रहते हैं।

कुछ भ्रम —

रोग के बारे में एक और भ्रम फैला हुआ है, यद्यपि वह भ्रम अब धीरे धीरे कम हो रहा है। कुछ लोग रोगों का कारण भूत-प्रेतादि से सताया जाना बताते हैं। मैं इस भ्रम के संबंध में भी यही कहूँगा कि कारण और कार्य की समझदारी की कमी से हम लोग भूत-प्रेत को अपने रोगों का कारण समझते हैं।

इन दिनो रोगों के कारण के बारे में एक और हवा फैली हुई है, और वह हवा इतनी जोरदार है कि आँधी का रूप धारण कर सब को अपने सामने झुकाये है। आजकल पढ़े-लिखे लोग—प्राय. सारा सभ्य संसार—रोगों का कारण कृमि (छोटे-छोटे कीड़े—germs) बताते हैं। यदि मैलेरिया (जाड़ा बुखार) होता है तो कृमि से, प्लेग होता है तो कृमि से, हैजा कृमि से, यक्ष्मा (तपेदिक) कृमि से—रोगों मे प्राय. सैकड़े निन्यानवे रोग कृमि से ही पैदा होते हैं। कृमि अवश्य हैं और उनका प्रभाव शरीर पर पड़ता भी है, पर जिस तरह मजबूत और तनदुरुस्त शरीर में मौसम से खराबी नहीं होती उसी तरह वैसे शरीर मे कृमियों से भी रोग पैदा नहीं हो सकते। पर आज कल तो ऐसी शिक्षा दी गई है कि बड़े से बड़ा डाक्टर और

गाँव-गवई का एक मामूली आदमी, दोनों ही, कृमि को ही मनुष्य-शरीर का जिलाने और नाश करने वाला मानते हैं।

इन सब का अभिप्राय (मतलब) यह है कि आदमी अपने शरीर के लिए अपने ऊपर ज़िम्मेदारी (उत्तरदायित्व) लेना नहीं चाहता। चाहे हम बहुत ज्यादा खा लिया करें, चाहे हम देर से पचने वाली चीजें खा लिया करें, भूख न रहने पर भी पेट भरकर खाया करें, कुछ भी कसरत न करें, गन्दे स्थानों में रहा करें, पर यदि इन कारणों से बीमारी हो तो ज़िम्मेदार होगा मौसम या भूत या कृमि या और कोई, लेकिन हम नहीं। इसे ही कहते हैं समझ की कमी। इसी कमी के कारण हम दुख भोग रहे हैं।

आजकल शायद ही कोई ऐसा माई का लाल होगा, जिसे कोई भी बीमारी न सताती हो। कब्ज तो साधारण बात है। क्या छोटा क्या बड़ा, क्या जवान क्या बुड्ढा, क्या अंगरेज क्या हिन्दुस्तानी, सभी इस कब्ज के शिकार हैं। फिर जुकाम-खाँसी का हो जाना तो मामूली सी बात है। हर तीसरे-चौथे महीने जुकाम-रूपी मेहमान का स्वागत करना पड़ता है। साल में एक दो बार बुखार होना ही चाहिए। और इन सब रोगों के अलावा बवासीर, गठिया, बहुमूत्र, दमा, आदि जीर्ण (पुराने) रोगों की भी भरमार हो रही है। चालीस साल लगते लगते, कभी-कभी पहिले ही, एक न एक जीर्ण रोग आ दबोचता है, जिससे मरने तक छुटकारा नहीं मिलता।
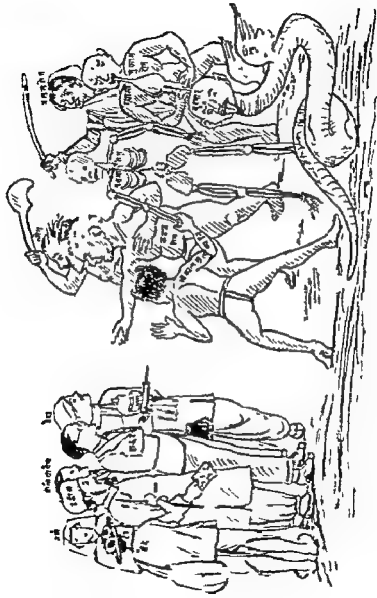
उधर तो रोग-रूपी शत्रु कतार बांधे खड़े हैं और इधर चिकित्सकों की सेना में बे-तरह वृद्धि हो रही है। फिर भी रोग

एक मजेदार बात यह है कि उधर तो रोग-रूपी शत्रु कतार बाँधे खड़े हैं और इधर चिकित्सकों (इलाज करने वालों) की भी संख्या बढ़ती जा रही है। चिकित्सकों की सेना में बेतरह वृद्धि हो रही है। फिर भी रोग दम नहीं लेने देता। यह कहना कठिन है कि आज दिन संसार में रोग अधिक हैं या चिकित्सक। चिकित्सकों के तो दल के दल और वह भी तरह-तरह के उमड़ पड़े हैं। आयुर्वेदीय वैद्य, यूनानी हकीम, एलोपैथिक डाक्टर, होमियोपैथिक डाक्टर इत्यादि इत्यादि सभी अपने अस्त्र-शस्त्र, तीर-तरकस लगाये खड़े हैं, तो भी न तो कब्ज मरता है न जुकाम, न दमा भागता है न गठिया। लोग उसी तरह बीमार होते हैं और मरते हैं जिस तरह पहिले। शायद पहले के बनिस्बत(अपेक्षा)अब ज्यादा ही बीमार होते हैं। प्राय ऐसा देखा जाता है कि अच्छे से अच्छे वैद्य और डाक्टर लगे रहते हैं, तो भी जाड़ा बुखार हर रोज आ जाता है। अच्छी से अच्छी दवाएँ दी जाती हैं, तो भी कब्ज बना ही रहता है और यदि दो-चार दिनों के लिए जाता है तो फिर आ जाता है। बहुत से रोग तो ऐसा आ घेरते हैं कि वैद्य के बाद हकीम और हकीम के बाद डाक्टर और एक डाक्टर के बाद दूसरा डाक्टर, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ डाक्टर सभी अपनी अपनी युक्तियाँ लगाते हैं, फिर भी बीमारी टस-से-मस नहीं होती। हो तो कैसे ? हम तो अपनी जिम्मेदारी समझते ही नहीं। हम शरीर के चलाने वाले अचूक नियमों को नहीं मानते। डाक्टर भी हमें हमारी जिम्मेदारी नहीं समझाते और न शरीर

के नियमों को ही समझने देते हैं। जभी हम मौसम या किसी बाहरी वस्तु (चीज) को दोषी बताते हैं और अपनी तकलीफ़ से छुटकारा पाने के लिए डाक्टर और दवा (औषधि) का सहारा लेते हैं तभी हम अपनी जिम्मेदारी दूसरे के सर पटक देते हैं। नतीजा यह होता है कि हम बीमार के बीमार बने रहते हैं और लाचार होकर अपने दिन बिताते हैं। सारा इलज़ाम (दोष) भाग्य के मत्थे मढ़ा जाता है, क्योंकि और हो ही क्या सकता है? अपने को दोषी नहीं समझते और न डाक्टर-वैद्य को ही दोषी समझते हैं। भला, आयुर्वेद या हिकमत पढ़ा हुआ वैद्य या हकीम, या पाँच-छः साल जान देकर एम० बी० बी० एस० की डिग्री (उपाधि) पाया हुआ विद्वान डाक्टर क्यों कर दोषी ठहराया जा सकता है। इसलिए बेचारा भाग्य ही कोसा जाता है।

तनदुरुस्त रहना आसान है—

तो क्या रोगी बना रहना या बार-बार बीमार होना मनुष्य-शरीर की मामूली हालत है? नहीं। जैसा हम ऊपर कह आये हैं हम अपनी ना-समझी के कारण दुख भोगते हैं। सच पूछिए तो तनदुरुस्त रहना, बीमार न होना, तगड़ा बना रहना, आसान है और यही हमारे शरीर की स्वाभाविक अवस्था है। जिस तरह और बहुत सी बातें उल्टी-सीधी हो गई हैं उसी तरह तनदुरुस्ती के सम्बन्ध में हमारे विचार उल्टे हो गये हैं। इसलिए तनदुरुस्त बनने और रहने के लिए सब से पहले यह अच्छी

तरह जान और समझ लेना चाहिए कि तनदुरुस्त रहना ही आसान और स्वाभाविक है और रोगी बनना कठिन और अस्वाभाविक। यह हमारा ही दोष है कि हम तनदुरुस्ती के सच्चे नियमों को जानने की कोशिश नहीं करते और अगर उन्हें जानते भी हैं तो उनको न मानकर हम बीमार होते हैं।

सोचिए तो सही—

सोचिए तो सही, क्या जानवर भी उतना बीमार होता है जितना मनुष्य ? पालतू जानवर तो मनुष्य के संग-साथ रहने के कारण दो-तीन बार बीमार भी होता है, और उसके लिए अब अस्पताल भी खुलने लगे हैं, पर जंगली जानवर तो अपने जीवन में सिर्फ एक बार बीमार होता है और उसी समय अपने शरीर को छोड़ देता है। मनुष्य की तरह वह बार-बार और हर साल बीमार नहीं होता और न रट-रट कर, दुख भुगतकर अपने प्राण देता है। फिर यह तो सोचिए कि जीवधारियों में सिर्फ आदमी ही क्यों चश्मा (ऐनक) लगाता है! गधे, घोड़े, बैल, कुत्ते इत्यादि जानवरों की आँखें उस तरह क्यों खराब नहीं होतीं जिस तरह आदमियों की होती हैं ? क्या आदमी की आँखें कमजोर बनी हैं या उसकी आँखें उसकी अपनी ही करनी से खराब हो जाती है ? यह भी सोचिए कि क्या आप की गाय के बच्चा जनने के समय किसी लेडी डाक्टर की जरूरत पड़ती है ? लेडी डाक्टर द्वारा बच्चा जनने के बाद भी हमारी स्त्रियाँ अक्सर बुरी तरह बीमार होतीं और मरती हैं। ऐसा क्यों

होता है ? क्या ऐसी ऐसी घटनाओं के लिए हम मनुष्य कुछ भी जिम्मेदार नहीं हैं ?

इस सृष्टि में मनुष्य और जानवर के अलावा पेड़-पौधे और लता-गुल्म भी हैं। क्या वे भी आदमी की तरह दुख भोगते हैं ? यदि नहीं तो क्या सिर्फ मनुष्य ही इतना कमजोर है कि वह बीमार हुआ करे ? क्या उसके पढ़ने लिखने, विद्योपार्जन करने, सभ्य बनने और सभी तरह शक्तिमान बनने का यही नतीजा है कि स्वस्थ (तनदुरुस्त) और सुखी रहने के बदले वह रोगों का शिकार हुआ करे ? मनुष्यों में ही जो कम पढ़े-लिखे और सभ्यता में पीछे हैं वे पढ़े-लिखों और सभ्यों की अपेक्षा कम रोग-ग्रस्त होते हैं। इसका कारण क्या है ? यही कि हम प्रकृति से बहुत दूर हट गये हैं।

हमने तनदुरुस्ती की समस्या को टेढ़ी खीर बना दी है, हमसे स्वाभाविकता और सादगी दूर भाग गई है, हम मामूली प्रकृति के नियमों को न तो समझते हैं और न समझ कर उन्हें मानते हैं, और साथ ही, जैसा कि ऊपर कहा गया है, हम अपनी जिम्मेदारी कभी मौसम पर, कभी जल-वायु (आबो-हवा) पर, कभी चिकित्सकों पर, और कभी औषधियों पर डाल देते हैं। सीधा-सादा, पाक-साफ, प्रकृति के नियमों के अनुसार जीवन व्यतीत कर तनदुरुस्त रहना आसान है। तनदुरुस्ती मानव-शरीर की स्वाभाविक अवस्था है। मनुष्य, जैसा कि वह देखने में मालूम होता है, वैसा नहीं है। उससे कहीं ऊंचा है।

वह इस पृथ्वी पर रोगी बने रहने के लिए नहीं है। वह स्वर्गीय है, ईश्वरीय है, दिव्य है। यदि वह अपने वास्तविक बड़प्पन को समझे और उसी के अनुसार जीवन बिताये तो उसे कभी भी कोई रोग न हो। बहुत काल तक अपने शरीर को धारण करने के बाद, जिस तरह कपड़े उतार कर रखे जाते हैं, उसी तरह अपने पुराने शरीर को उतार कर वह चल बसेगा। ऐसे ही जीने को जीना कहते हैं और वैसा जीना, जिसमें हर रोज कोई न कोई रोग पीछे लगा है, मरने से भी बुरा है।

शरीर रखने के कुछ नियम हैं। बनावटी सभ्यता के इस युग में वे नियम खो से गये हैं और समझाने पर भी जल्दी समझ में नहीं आते। यदि उनके बारे में कोई कुछ कहता है तो सुनने वाले ताज्जुब करते और हँसते हैं, पर अब धीरे धीरे उन नियमों के माननेवालों की संख्या बढ़ रही है। इस छोटी सी किताब में वे नियम दुहराये जायँगे। साथ ही यह विश्वास दिलाया जाता है कि जिस तरह दिन के बाद रात और फिर रात के बाद दिन आता है उसी तरह प्राकृतिक नियमों के पालन करने के बाद तनदुरुस्ती आती है और यदि वह खराब हो गई है तो अच्छी हो जाती है। इसमें कोई सन्देह (शक) नहीं।

रोगों का कारण

पहले कहा जा चुका है कि, और बातों की तरह, रोगों के बारे में भी कारण और कार्य का संबंध देखना चाहिए। जब रोगों के सच्चे कारण का पता चल जायगा तो हम उन कारणों को दूर कर रोग को जड़-मूल से भगा सकते हैं। और यदि सच्चे कारण को न जाना, केवल इधर-उधर की या ऊपरी बातों को ही जान कर सन्तुष्ट हो गये, तो एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा रोग बना रहेगा, और, जैसा कि अब है, हकीम-वैद्य-डाक्टरों के होते हुए भी मनुष्य-जाति रोगों से पीडित रहेगी। सच्चा कारण जानने के बाद सच्चा उपचार भी सीखना चाहिए, लेकिन पहले आइये और गंभीरता-पूर्वक विचार कीजिए कि रोगों का सच्चा कारण क्या है।

एक ही कारण-*विकार*—

सच पूछिए तो सारे रोगों का एक ही कारण है—*शरीर में विकार का आ जाना*। मनुष्य शरीर, प्रकृति के नियमों के अनुसार, अपने को बराबर ही साफ-सुथरा और अच्छी हालत में रखना चाहता है। इस बात को अच्छी तरह समझना चाहिए। हर रोज हम देखते हैं कि शरीर के अन्दर वह क्रिया (कार्रवाई) बराबर ही जारी रहती है, जिसमें भीतर की गन्दगी शरीर के बाहर निकाल दी जाती है। गन्दगी दूर होने के चार ढंग या

रास्ते हैं—फेफड़े की गंदगी लेकर सांस का बाहर आना, चमड़े से पसीने का निकलना, पाखाना और पेशाब का होना। यदि इन साधारण ढंगों से शरीर के अन्दर का विकार नहीं निकल पाता तो असाधारण ढंग काम मे लाये जाते हैं। इस हालत में शरीर की शक्तियाँ तेजी के साथ दूसरे ढंगों से सफाई का काम शुरू कर देती हैं। या तो शरीर के अन्दर की गर्मी ज्वर के रूप में बढ़ कर शरीर की गंदगी को जला देती है या कुछ दस्त ज्यादा आते हैं या ऐसी ही कोई असाधारण बात होती है जिससे शरीर के अंदर की सफाई हो जाती है। याद रहे, शरीर की रक्षा के लिए विकारों का बाहर निकल जाना जरूरी है। इसी से जब जब यह असाधारण सफाई होने लगती है तभी कहा जाता है कि रोग हुआ। वैसे तो रोग का नाम ही बुरा है, लेकिन इस तरह गहराई में जाकर देखने से पता चलता है कि *शरीर की गंदगी को बाहर निकाल फेंकने के लिए, विकारों को जला देने के लिए, प्रकृति की ओर से रोग का असाधारण ढंग एक जबरदस्त साधन है।* जितने नये (तीव्र) रोग (acute diseases) होते हैं, जैसे जुकाम, जोरदार बुखार, पतले दस्तों का आना, आंव (पेचिश) गिरना, फोड़ा-फुन्सी निकलना, वे सभी गंदगी को निकाल देने के लिए शरीर की सफल चेष्टाएं (कोशिशें) हैं। शरीर बराबर ही इस कोशिश में रहता है कि वह विकारों को दूर कर अपने को फिर से अच्छा और साफ-सुथरा बना ले; और यदि वह सांस, पसीना और पेशाब-पाखाने के रूप में अपने अन्दर की गंदगी को नहीं निकाल पाता

तो रोग प्रकट कर अपनी गंदगी को जला देता है या बाहर फेंक देता है। इस लिए इन दोनों बातों पर ध्यान देना चाहिए :— (१) *विकार से रोग होते हैं* और (२) *अपने बाहर गंदगी को निकाल कर फिर से अपने को अच्छा बना लेने वाली शरीर की कोशिश को ही रोग कहते हैं।*

शरीर के विकार—

विकार उन फजूल और खराब चीजों को कहते हैं जो हमारे शरीर के लिए बेकार हैं और जो शरीर के अन्दर के खून और मांस (गोश्त) के साथ मिलकर शरीर का हिस्सा नहीं बन सकतीं। प्रकृति (कुदरत) का नियम है कि शरीर के अन्दर जो चीजें किसी भी ढंग से आ जाती हैं उन्हें या तो शरीर से मिल कर एक हो जाना चाहिए या, यदि वे शरीर के साथ नहीं मिल सकतीं तो, उन्हें शरीर के बाहर निकल जाना चाहिए। बेकार चीजों के बाहर निकल जाने में ही शरीर की भलाई है और तभी तनदुरुस्ती रह सकती है। यदि वे अन्दर ही रह जायँ तो गड़बड़ी अवश्य पैदा हो। इसी लिए शरीर कोशिश करता है कि विकार बाहर निकल जाय। यदि शरीर बेकार चीजों को सांस, पसीना और पेशाब-पाखाने के रूप में अपने मामूली तरीके से नहीं निकाल सकता तो रोग-रूपी ग़ैर-मामूली (असाधारण) तरीक़े से निकालता है।

इस संबंध में एक और बात याद रखने योग्य है। कुछ चीजें ऐसी होती हैं कि शरीर उन्हें ज़रूर बाहर निकाल देता

है। जैसे, यदि कोई मनुष्य किसी फल की सख्त गुठली खा ले, जो शरीर के साथ मिल कर एक नहीं हो सकती, या चवन्नी, दुअन्नी या पैसा निगल जाय तो शरीर उसे पाखाने के साथ बाहर निकाल देता है। लेकिन यदि बन्दूक से निकली हुई गोली खाल को छेदती हुई मांस की किसी तह में जा बैठे तो चीरा देकर उसे निकालना होता है, क्योंकि वह गोली उस रास्ते में नहीं है, जिससे शरीर अपने अन्दर की बेकार चीजों को निकालता है। जो कुछ भी हो, लेकिन यह जरूरी है कि शरीर के अन्दर वैसी चीजें नहीं रहतीं या रहने नहीं दी जातीं जो उससे मिल कर एक न हो सकें। या तो खून बनकर मांस बन जायँ और नहीं तो शरीर के बाहर निकल जायँ—यह शरीर-संबंधी प्रकृति का नियम है।

विकार की उत्पत्ति--

अब प्रश्न यह है कि शरीर के अन्दर विकार कैसे आते हैं। सुनिए। शरीर में विकार कई तरह से आ जाते हैं। (१) सांस के साथ हवा में उड़ने वाले छोटे छोटे कीडे और पदार्थ, और उसी तरह पिये गये जल के साथ भी बहुत छोटे छोटे कीड़े अन्दर जाकर शरीर की सफाई वाली शक्तियों द्वारा बाहर फेंक दिये जाते हैं। (२) शरीर के अन्दर ही हरकत और मेहनत से टूट जाने वाले रेशे (tissues) भी विकार-स्वरूप हो जाते हैं। हर रोज, हर समय, हर क्षण के काम-काज, हरकत और परिश्रम से शरीर के अन्दर बहुत ही छोटे छोटे टुकड़े, जिन्हें रेशा

कहते है, टूटते और नष्ट होते रहते हैं। ये रेशे या तो पसीने के रूप में बाहर निकाल दिये जाते हैं या खून के दौरान (सचार-क्रिया) में पड कर फेफड़े में आते हैं और वहाँ साँस के साथ ली हुई आक्सीजन से जलाये जाने के बाद साँस के ही साथ बाहर फेंक दिये जाते हैं। इन टूटे हुए रेशों का बाहर निकल जाना जरूरी है, नहीं तो ये बहुत तरह के विकार और जहर पैदा करते हैं। (३) खाये हुए पदार्थों का जो भाग पचने के बाद रस और खून बन कर शरीर का हिस्सा नहीं हो जाता उसे शरीर के बाहर पाखाना और पेशाब के रूप में बिलकुल निकल जाना चाहिए। यदि उसका कुछ अंश अन्दर ही रह जाता है तो वह विकार कहा जाता है और शरीर के अन्दर तरह तरह के जहर पैदा करता है। उसी से खून भी विकार-युक्त हो जाता है और चूंकि खून शरीर के सब हिस्सों में पहुँचकर उन्हें उनकी खुराक दे आता है शरीर के सभी हिस्सों में खून के साथ जहर भी पहुँच जाता है। पर क्या शरीर उस जहर को अपने अन्दर रहने देता है ? नहीं, यदि जहर रह जाय तो शरीर का नाश हो जाय। इसलिए शरीर रोग के रूप में झटपट उस जहर को निकाल देने का प्रबन्ध करता है। इस प्रकार हमने देख लिया कि शरीर के अन्दर विकार किस तरह आते हैं और यह भी समझ लिया कि शरीर उस विकार को या तो अपने मामूली रास्तों (साँस, पसीना, पाखाना, पेशाब) से निकाल देता है या रोग-रूपी असाधारण ढगों से निकाल कर अपने को फिर से साफ-सुथरा बना लेता है।

विकार का निकलना—

ऊपर कहा जा चुका है कि शरीर से विकार का निकल जाना बहुत जरूरी है और यह भी कि उसके बाहर निकल जाने के लिए शरीर के मामूली रास्ते साँस, पसीना, पाखाना और पेशाब हैं। अक्सर यह देखा जाता है कि शरीर इन रास्तों से अपने अन्दर के विकार को निकालने में समर्थ नहीं होता। इसका मुख्य कारण यह है कि हमारे जीवन में बहुत बनावटीपन आ गया है, जिससे अपने बाहर विकार निकालने की शरीर की शक्ति बहुत कुछ कमजोर पड़ गई है। इन दिनों हालत यह है कि साँस बाहर आती है पर पूरी पूरी और बिलकुल फेफड़े के अंदर से नहीं आती, और इससे उस रास्ते से आने वाला पूरा पूरा विकार निकल नहीं पाता। पसीना बहुतों के शरीर पर होता ही नहीं। जो हल्के कपड़े नहीं पहनते, खाल में धूप लगने नहीं देते, कसरत और परिश्रम के काम नहीं करते उन्हें पसीना नहीं आता। कहने की जरूरत नहीं कि हिन्दुस्तान में ऐसों की संख्या (तादाद) अधिक है। फिर पाखाना न होना या बिलकुल साफ न होना तो एक मामूली बात है। पेशाब वैसे तो सभी के आता है, पर यदि अच्छी तरह देखा जाय तो मालूम होगा कि सभी के पेशाब से उस रास्ते से आने वाला विकार पूरी मात्रा में नहीं निकल पाता। इस तरह ज्यादातर आदमियों के शरीर अपने सफाई के काम में पूरा पूरा समर्थ नहीं होते। प्रकृति (कुदरत) ने शरीर को सफाई के रास्ते दिये हैं और उसे शक्ति भी दी है, लेकिन प्रकृति के रास्ते

से बहुत दूर हट जाने से शरीर की यह ताकत कमजोर पड़ जाती है। इसी से सारा बखेड़ा पैदा होता है।

विकार निकालने में शरीर की शक्ति-हीनता क्यों--

अब यह देखना है कि शरीर की वह ताक्त, जिससे वह अपने को साफ करता है, क्यों कर कमजोर हो जाती है। यह एक पुराना क़िस्सा है और उसका सच्चा कारण बहुधा मनुष्य के जन्म के पहले से ही शुरू हो जाता है। यह कहानी करुण भी है। सुनिये—

कमजोर माता-पिता के बच्चे भी कमजोर होते हैं। इसलिए ऐसे बच्चों के शरीर में सफाई की ताक़त भी कमजोर होती है। यदि ये बच्चे अच्छी तरह रखे और नियम-पूर्वक खिलायें-पिलाये जायँ तो उनकी सफ़ाई की ताक़त जोरदार हो सकती है। पर ऐसा नहीं होता। हमारे देश के प्रायः सभी बच्चे, चाहे वे कमजोर माता-पिता के हों या मजबूत के, बड़े बुरे ढंग से रखे जाते हैं। उनके बदन में धूप और हवा लगने नहीं पाती, वे ठीक ठीक नह-लाये नहीं जाते, उनके कपड़े साफ़ नहीं किये जाते, वे दिन-रात किसी न किसी की गोद में पड़े या बैठे रहते हैं, और, जो इन सब से ज्यादा खराब और खतरनाक (आपत्तिजनक) है वह यह है कि, उनके खाने-पीने का समय बंधा नहीं होता। बच्चा जभी रोया माता ने उसे दूध पिलाया। इस तरह हमारे यहाँ के बच्चों को १५-१५ मिनट और आध-आध घंटे पर दूध पिलाया जाता है। कहने की जरूरत नहीं कि इस तरह जन्म के बाद से ही उनका हाजमा

स्नायु-संस्थान
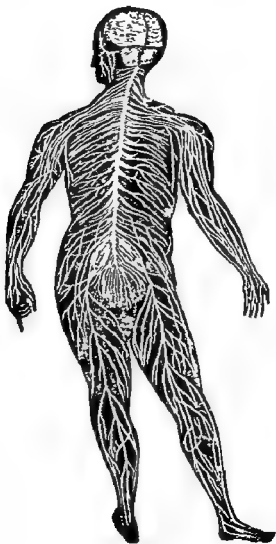
स्नायु दिमाग से निकलकर रीढ़ से होता हुआ सारे शरीर को ढके हुए हैं। इसी के प्रभाव से शरीर के सब [illegible] हैं

(पाचन-शक्ति) खराब होने लगता है। खराब पेट और खराब हाजमे के कारण उनका खून विकार-युक्त हो जाता है। अगर सिर्फ खून ही खराब होकर रह जाय तो कुछ ज्यादा बात नहीं। लेकिन खराब खून का प्रभाव (असर) शरीर के स्नायु-संस्थान❀ (nervous system) पर पड़ता है। शरीर के सब अंगों और यन्त्रों को खून से पुष्टि और खूराक मिलती है। स्नायु-संस्थान भी खून से ही पालित-पोषित होता है। जैसा खून रहता है वैसा ही स्नायु-संस्थान भी होता है। इसलिए यदि पेट और हाजमे की खराबी से खून विकार-युक्त हुआ तो स्नायु-संस्थान भी विकार-युक्त और क्षीण-शक्ति (कमजोर) होगा। स्नायु की कमजोरी से पाचन-शक्ति और पेशाब-पाखाना द्वारा सफाई की शक्ति कमजोर पड़ेगी, जिसका असर हाजमे पर खराब पड़ेगा और फिर खराब हाजमे से खून खराब होगा और खराब खून से स्नायु की दुर्बलता और भी बढ़ेगी। इस तरह बे-ढंगा खाने-पीने से खराब खून, खराब हाजमा और खराब स्नायु-संस्थान का एक अटूट चक्कर सा जारी रहता है, जो शरीर

❀ स्नायु-संस्थान शरीर के अन्दर एक बहुत जरूरी चीज है। स्नायु दिमाग से निकल कर (चित्र देखो) रीढ़ से होता हुआ सारे शरीर को ढके हुए है। इसकी शाखा-प्रशाखाएँ शरीर के हर भाग में फैली हैं। स्नायु के ही प्रभाव और संचालन से शरीर के सब काम (भोजन का पचना, पाखाना होना, नींद आना इत्यादि) होते हैं। स्नायु के कमजोर पड़ जाने से शरीर दुर्बल और रोग-ग्रस्त हो जाता है। बे-ढंगे भोजन के साथ-साथ ब्रह्मचर्य का तोड़ना, उचित कसरत न करना और उचित आराम न लेना स्नायु के कमजोर पड़ने के कारण हैं।

को बिल्कुल निकम्मा बना देता है। इसके साथ साथ और भी बहुत सी खराबियाँ चलती हैं, जैसे नशीली चीजों का इस्तेमाल, बहुत परिश्रम (मेहनत) करना, ब्रह्मचर्य का पालन न करना, और इन सबों का नतीजा यह होता है कि १०० साल तक अच्छी तरह चलने वाला शरीर ३०-४० साल में ही बुड्ढा और जर्जर हो जाता है। बहुत तो इसके पहले ही चल बसते हैं। फिर ऐसे कमजोर शरीर वालों की सन्तान (औलाद) भी कमजोर होती हैं और यह किस्सा पुश्त-दर-पुश्त जारी रहता है।

ऊपर कहा गया है कि बच्चों को जरा जरा सी देर पर दूध पिलाया जाता है, जिससे उनका हाजमा खराब हो जाता है। लेकिन यह जुल्म सिर्फ बचपन में ही नहीं होता। बच्चे ज्यों-ज्यों बड़े होते हैं यह जुल्म भी बढ़ता जाता है। ज्योंही लड़का अनाज खाने लगता है बाबूजी (पिताजी) के साथ बैठकर उसका खाना जरूरी हो जाता है। बहुत से परिवारों में पिताजी और माताजी एक साथ खाना नहीं खाते। इसलिए लड़का पहले पिता जी के साथ और फिर घंटे आध घंटे बाद माताजी के साथ बैठ कर खाता है। पहले का खाया हुआ भोजन पचने नहीं पाता और इसी हालत में ऊपर से कुछ और डाल दिया जाता है। इतना ही नहीं, मकान के अन्दर घंटे दो घंटे बाद अगर खोन्चे वाला कुछ बेचने आया तो माताजी कुछ मिठाई-नमकीन खरीद कर बड़े प्यार के साथ लड़के को दे देती हैं। इसका कुछ विचार नहीं किया जाता कि हल्के भोजन के पचने के लिए भी कम से कम चार-पाँच घंटे का समय चाहिए। फिर लड़का जैसे-जैसे

सयाना होता है यह जुल्म वह अपने ऊपर आप ही करता है, और इस तरह खराब खून, खराब स्नायु-संस्थान और खराब स्वास्थ्य का चक्कर मरते दम तक चला जाता है। शरीर में सफाई की ताकत के कमजोर पड़ने का मुख्य कारण यही है। जिसका स्नायु-बल (nerve tone) दुर्बल होगा उसकी विकारों के निकालने की शक्ति भी दुर्बल होगी। जैसा कि ऊपर बताया गया है, स्नायु-बल का ह्रास और कई कारणों से होता है। जरूरत से ज्यादा खा लेना भी इस ह्रास का एक कारण है, क्योंकि अधिक भोजन के पचाने में अधिक स्नायु-बल लगता है।

विकार निकालने के लिए प्रकृति का प्रबन्ध—रोग—

शरीर अपने को बराबर साफ रखना चाहता है, यह प्राकृतिक नियम है। वह अपने अन्दर किसी तरह की गंदगी नहीं रहने दे सकता, क्योंकि अगर गंदगी रह जाय तो उसके कल-पुर्जों का काम ठीक ठीक नहीं चल सकता। इसलिए प्रकृति का इन्तजाम रहता है कि अगर शरीर अपने साधारण ढंगों से (साँस, पसीना, पेशाब-पाखाना के साथ) अपने अन्दर का विकार नहीं निकाल सकता तो रोग के रूप में असाधारण प्रबंध करके वह अपने विकारों को निकाल देता है। रोग शरीर की ओर से सफाई की असाधारण चेष्टा (ग़ैर-मामूली कोशिश) है, जिससे वह फिर से स्वच्छ और अच्छी तरह काम करने वाला हो जाय।

असाधारण प्रबन्ध आवश्यक नहीं है—

सच पूछिए तो यदि शरीर अच्छी तरह रखा जाय, उसको

उचित खान-पान दिया जाय, उससे उचित मेहनत ली जाय और उचित आराम दिया जाय और साथ ही साथ उसे उचित मात्रा में धूप और हवा मिलती रहे तो उसे अपनी सफाई के लिए रोग के रूप में किसी असाधारण प्रबन्ध की जरूरत न पड़े। हमारी पहली चेष्टा होनी चाहिए कि रोग हो ही नहीं। अब की हालत यह है कि रोग के सच्चे कारण को न जानने के कारण लोग पहले से डरते रहते हैं कि कहीं कोई रोग हो न जाय और जब रोग हो जाता है तो उससे लड़ाई ठानते हैं। पर जब हम कारण और कार्य का, रोग के कारण और रोग का, संबंध ठीक ठीक समझ लेंगे तो हम अपने शरीर को प्रकृति के नियमों के अनुसार रखेंगे, जिससे रोग-रूपी असाधारण प्रबन्ध की आवश्यकता ही न होगी और यदि रोग हो जायगा तो उसे हम दुश्मन (शत्रु) न समझकर ऐसी विधियों को काम में लायेंगे कि रोग-द्वारा शरीर के विकारों की पूरी पूरी सफ़ाई हो जायगी और रोग के बाद शरीर फिर से स्वच्छ और निर्मल हो जायगा। इसलिए हमारा पहला लक्ष्य इस तरह जीवन व्यतीत करना होना चाहिए कि हम बीमार हों न हों।

रोग बढ़ता क्यों है —

अब यह देखना चाहिए कि अच्छे अच्छे डाक्टर या वैद्य-हकीमों का इलाज रहते हुए भी बहुत से रोगियों के रोग क्यों कर बढ़ जाते हैं। होना तो यह चाहिए कि चिकित्सक (इलाज करने वाला) के लगते ही रोग कम हो जाय, पर बहुत बार ऐसा देखा

गया है कि मर्ज़ (रोग) खराब और उससे भी अधिक खराब होता जाता है। डाक्टर लोग मिल मिल कर रोग के नाम धरते हैं, यह पता लगाते हैं कि रोग कैसे हुआ, कई तरह के जर्म्स (कीड़ों) को दोषी ठहराते हैं, फिर रोग दूर करने के लिए अनेकों प्रकार की दवाएँ झोंकते हैं, इन्जेकशन (सुई) देते हैं, सब कुछ करते हैं, पर फिर भी रोगी की अवस्था खराब होती जाती है और अन्त मे यही कहना होता है कि सब कुछ किया पर किस्मत ही अच्छी न थी। ऐसा क्यों ?

इस प्रश्न का उत्तर कठिन नहीं है। इस बात में भी वही कारण और कार्य के सच्चे संबंध की ना-समझी काम करती है, जैसा कि ऊपर बताया गया है। रोग प्रकृति की ओर से शरीर के विकारों को दूर करने के लिए एक असाधारण प्रबन्ध है। ऐसी अवस्था में हमारा कर्त्तव्य है प्रकृति का साथ देना, और सफ़ाई के काम में किसी तरह की अड़चन न डालना। यदि रोग मे हम कुछ भी खा लेते हैं, चाहे वह साबूदाना, बार्ली या आरारोट की तरह हल्का पदार्थ ही क्यों न हो, तो शरीर के अन्दर पाचन-क्रिया शुरू हो जाती है, जिसमें स्नायु-बल लगता है और जिससे सफ़ाई के काम में बाधा पड़ती है। इसी तरह बुखार की हालत मे दूध पीना भी गलत है। दूध और चीजों से हल्का जरूर है पर है वह पूरा खाना। उससे भी सफ़ाई के काम में रुकावट पड़ती है। इसके अलावा यदि हम दवाओं का सेवन करते हैं, खासकर ऐसी दवाएँ जो विषैली हैं, तो रोग अन्दर ही अन्दर दब जाता है और

सफाई का काम पूरा नहीं हो पाता। विषैली दवाओं* से छोटे मोटे लक्षण तो दब जाते हैं पर दबने का अर्थ यह नहीं है कि रोग का शमन हो गया। थोड़े ही दिनों के बाद वे लक्षण या तो पहले की तरह या दूसरे रूप धारण कर फिर प्रकट होते हैं, क्योंकि प्रकृति सफाई चाहती है। यही कारण है कि आज पतले दस्तों का आना बन्द किया तो कल ज़ुकाम (सर्दी) हो जाता है, कल ज़ुकाम दबाया तो परसों बुखार हो आता है, परसों बुखार को रोका तो नरसों खुजली और खारिश हो जाती है। इस तरह तकलीफें जारी रहती हैं और एक के बाद दूसरी बीमारी का आना लोग स्वाभाविक समझते हैं। बीमारी का तांता तो तब टूटे जब कि एक बीमारी के आने पर उसका सच्चा उपचार किया जाय और उसके बाद ठीक आहार-विहार से शरीर में गंदगी आने न दी जाय। लेकिन हम तो रोग होते ही उसके असली कारण को दूर न कर सिर्फ ऊपरी लक्षणों के दबाने में लग जाते हैं। ऐसी हालत में भी कभी कभी प्रकृति सफाई पर तुल जाती है और लाखों दवाओं के झोंकने पर भी लक्षण उभड़े पड़ते हैं। चिकित्सक उन लक्षणों को जितना दबाना चाहता है उतना ही वे बढ़ते हैं और बहुत बार मरीज़ की जान पर आ बीतती है। रोगों के बढ़ने का

---

* कहने की ज़रूरत नहीं कि सभी एलोपैथिक दवाएँ विषैली हैं। वैद्य और हकीम की बहुत सी दवाएँ जड़ी-बूटी की होती हैं, पर भस्म और कुश्ती के बहुत से पदार्थ विषैले और हानिकारक होते हैं। सच पूछिए तो शरीर को इनमें से किसी एक की भी आवश्यकता नहीं। इसके बारे में आगे और भी बताया जायगा।

सच्चा कारण यही है—प्रकृति के सफाई के काम में बे-जरूरी पथ्य और जहरीली दवाओं से अड़चन डालना।

रोगों के कारण-कीड़े—

इस सम्बन्ध में एक प्रश्न यह उठता है कि यदि रोग शरीर के अन्दर के विकारों के ही कारण पैदा होते हैं तो क्या रोगों की उत्पत्ति में कीड़ों का, जिन्हें अंगरेजी में जर्म्स (germs) कहते हैं, कुछ हाथ नहीं है ? बीसवीं सदी में इस सभ्य संसार का पढ़ा-लिखा डाक्टर-समुदाय गला फाड़ फाड़ कर जर्म्स (कीड़ों) की महिमा और रोगोत्पादक शक्ति (रोग पैदा करने वाली ताकत) का बखान करता है, प्रायः सभी रोगों की जड़ में किसी न किसी कीड़े की ही करतूत बताता है, फिर भी इस किताब में सारा दोष विकारों पर ही क्यों छोड़ा जाता है ? क्या ये पढ़े-लिखे डाक्टर भ्रम में पड़े हुए हैं या झूठ बोलते हैं ? झूठ तो नहीं बोलते पर भ्रम में जरूर हैं। विशेष रोगों से सम्बन्ध रखने वाले जर्म्स-विशेष हो सकते हैं, पर वे वहीं जमते और जा बसते हैं जहाँ उनके टिकने लायक गन्दे विकार मौजूद हैं। यदि शरीर के अन्दर विकार नहीं है तो किसी प्रकार का बाहर से आया हुआ कीड़ा वहाँ टिक नहीं सकता। यदि शरीर के विकारों की सफाई कर दी जाय तो पहले से बसे हुए कीड़े खुद-ब-खुद (स्वयं) गायब हो जाते हैं। बहुत से आचार्यों का यह मत है कि ये कीड़े विकार से ही पैदा होकर फिर मेहतर का काम करते हैं। विकारों को खा-पीकर खुद ही नष्ट हो

सफाई का काम पूरा नहीं हो पाता। विषैली दवाओं* से छोटे मोटे लक्षण तो दब जाते हैं पर दबने का अर्थ यह नहीं है कि रोग का शमन हो गया। थोड़े ही दिनों के बाद वे लक्षण या तो पहले की तरह या दूसरे रूप धारण कर फिर प्रकट होते हैं, क्योंकि प्रकृति सफाई चाहती है। यही कारण है कि आज पतले दस्तों का आना बन्द किया तो कल जुकाम (सर्दी) हो जाता है, कल जुकाम दबाया तो परसों बुखार हो आता है, परसों बुखार को रोका तो नरसों खुजली और खारिश हो जाती है। इस तरह तकलीफें जारी रहती हैं और एक के बाद दूसरी बीमारी का आना लोग स्वाभाविक समझते हैं। बीमारी का तांता तो तब टूटे जब कि एक बीमारी के आने पर उसका सच्चा उपचार किया जाय और उसके बाद ठीक आहार-विहार से शरीर में गंदगी आने न दी जाय। लेकिन हम तो रोग होते ही उसके असली कारण को दूर न कर सिर्फ ऊपरी लक्षणों के दबाने में लग जाते हैं। ऐसी हालत में भी कभी कभी प्रकृति सफाई पर तुल जाती है और लाखों दवाओं के झोंकने पर भी लक्षण उभड़े पड़ते हैं। चिकित्सक उन लक्षणों को जितना दबाना चाहता है उतना ही वे बढ़ते हैं और बहुत बार मरीज की जान पर आ बीतती है। रोगों के बढ़ने का

---

* कहने की जरूरत नहीं कि सभी एलोपैथिक दवाएँ विषैली हैं। वैद्य और हकीम की बहुत सी दवाएँ जड़ी-बूटी की होती हैं, पर भस्म और कुश्तों में बहुत से पदार्थ विषैले और हानिकारक होते हैं। सच पूछिए तो शरीर को इनमें से किसी एक की भी आवश्यकता नहीं। इसके बारे में आगे और भी बताया जायगा।

सच्चा कारण यही है—प्रकृति के सफाई के काम मे बे-जरूरी पथ्य और जहरीली दवाओं से अड़चन डालना।

रोगों के कारण-कीड़े—

इस सम्बन्ध में एक प्रश्न यह उठता है कि यदि रोग शरीर के अन्दर के विकारो के ही कारण पैदा होते हैं तो क्या रोगों की उत्पत्ति मे कीड़ों का, जिन्हे अंगरेजी मे जर्म्स (germs) कहते हैं, कुछ हाथ नहीं है ? बीसवीं सदी मे इस सभ्य संसार का पढ़ा-लिखा डाक्टर-समुदाय गला फाड़ फाड़ कर जर्म्स (कीड़ों) की महिमा और रोगोत्पादक शक्ति (रोग पैदा करने वाली ताकत) का बखान करता है, प्रायः सभी रोगो की जड मे किसी न किसी कीडे की ही करतूत बताता है, फिर भी इस किताब में सारा दोष विकारो पर ही क्यों छोड़ा जाता है ? क्या ये पढ़े-लिखे डाक्टर भ्रम मे पड़े हुए हैं या झूठ बोलते हैं ? झूठ तो नहीं बोलते पर भ्रम मे जरूर हैं। विशेष रोगों से सम्बन्ध रखने वाले जर्म्स-विशेष हो सकते हैं, पर वे वहीं जमते और जा बसते हैं जहाँ उनके टिकने लायक गन्दे विकार मौजूद हैं। यदि शरीर के अन्दर विकार नहीं है तो किसी प्रकार का बाहर से आया हुआ कीड़ा वहाँ टिक नहीं सकता। यदि शरीर के विकारो की सफाई कर दी जाय तो पहले से बसे हुए कीडे खुद-ब-खुद (स्वय) गायब हो जाते हैं। बहुत से आचार्यों का यह मत है कि ये कीड़े विकार से ही पैदा होकर फिर मेहतर का काम करते हैं। विकारो को खा-पीकर खुद ही नष्ट हो

जाते हैं, पर ये होते वहीं हैं जहाँ विकार हैं। देखिए न, मकानों में जहाँ पर गंदगी होती है वहाँ झुंड की झुंड मक्खियाँ आ बैठती हैं और गंदगी को चाट-खाकर उड़ जाती हैं। जहाँ गंदगी नहीं रहती वहाँ मक्खियाँ आती ही नहीं। जिस शरीर मे विकार है वह तो कीड़ों का खास अड्डा बनेगा ही, पर जिसका शरीर अन्दर-बाहर से साफ है, उसके खून में वह शक्ति है कि न तो उसके अन्दर कीड़े पैदा होंगे और न बाहर से आने वाले कीड़े उसमें जी सकेंगे।

इस युग में जो भी इलाज जारी है उसमें बहुत बड़ा स्थान विषैली दवाओं और इन्जेकशन (सुई लगाना) की मदद से बीमारियों के जर्म्स को मारने और दूर करने का है। इन ढंगों से जर्म्स मरते तो जरूर हैं पर शरीर के अन्दर विकार बने रहने के कारण फिर से वहाँ हो जाते हैं। यह वैसा ही है जैसा कि कमरे के अन्दर की गन्दगी के कारण वहाँ रहने वाले चूहों और छछून्दरों को बार बार मारना। अगर कमरे मे गन्दगी है तो चूहे और छछून्दर फिर से आ जाते हैं, पर अगर कमरा साफ है तो वे वहाँ आते ही नहीं। आज कल हमारे विद्वान डाक्टरों की जर्म्स से लड़ाई, मकान को बिना साफ किये हुए बार-बार छछून्दरों को मारते रहने की तरह है। असल काम है शरीर-रूपी मकान को साफ रखना, जिससे छछून्दर-रूपी जर्म्स वहाँ आवें ही नहीं, न कि शरीर-रूपी मकान की अन्दरूनी गदगी को भूल कर छछून्दर-रूपी जर्म्स को मारने मे ही अपनी योग्यता और समय को लगाना। इसलिए जर्म्स के भ्रम में न पड़कर शरीर को विकार-रहित

रखना हमारा परम कर्त्तव्य है, और यह तभी हो सकता है जब कि हम प्रकृति के नियमों के अनुसार खायें और रहें। भोजन से इस विषय का बहुत बड़ा संबंध है, क्योंकि भोजन से ही खून बनता है और खून पर ही शरीर की तनदुरुस्ती निर्भर है, पर इस विषय पर आगे रोशनी डाली जायगी।

प्रायः (अक्सर) ऐसा देखा गया है कि उन जगहों में, जहाँ कोई ऐसा रोग फैल गया है जिससे सभी बीमार हों, यदि एक या दो अन्दर और बाहर से साफ़-सुथरे शरीर वाले लोग भी रहते हैं तो वे बिना किसी बचाव के ही बीमार नहीं होते। एक बार मेरे एक मित्र इंगलैंड के एक अस्पताल में काम कर रहे थे। उन दिनों वहाँ इनफ्लुएंजा (एक प्रकार का बुखार) का प्रकोप था। अस्पताल के सभी मरीज़ इस बुखार से पीड़ित हुए। धीरे धीरे कम्पाउन्डर और डाक्टर भी बीमार होने लगे और कुछ ही दिनों में सब के सब बीमार हो गये। केवल मेरे मित्र ऐसे थे, जो बीमार नहीं हुए। कारण इसका यह था कि उचित खान-पान, कसरत, आराम इत्यादि से उन्होंने अपने शरीर को बिल्कुल साफ़-सुथरा रखा था।

यह भी पूछा जा सकता है कि महामारी के दिनों में गाँव के गाँव और शहर के शहर हैजा या प्लेग से क्योंकर आक्रान्त हो जाते हैं। उत्तर यही है कि ९५ फी सदी से भी अधिक लोग अपने शरीरों को ठीक हालत में नहीं रखते। आस-पास के रहने वाले बहुत से लोग एक ही तरह की कुरीतियों

के कारण एक तरह के विकारों को अपने शरीर के अन्दर छिपाये रखते हैं, जिसका यह नतीजा होता है कि सब के सब एक तरह की महामारी के शिकार बनते हैं।

इन सब बातों को देखते हुए फिर यही दुहराना पड़ता है कि रोगों का असली कारण शरीर के अन्दर अपनी करनी से आया हुआ विकार है, और यह भी कि विकार के बाहर निकल जाने में ही भलाई है।

हमारा कर्त्तव्य—

जब हम ने यह जान लिया कि रोग का सच्चा कारण शरीर के अन्दर का विकार है, जिन्हें प्रकृति रोग के रूप में बाहर निकालना चाहती है, तो रोगों को दूर करने में हमारा एकमात्र कर्त्तव्य है प्रकृति के साथ मिल जुलकर काम करना, न कि उसके मार्ग में रोड़े अटकाना। प्रकृति से सहयोग में पहला काम भोजन बन्द कर देना है, जिससे शरीर के अन्दर पाचन की क्रिया बंद हो जाय और सिर्फ एक ही क्रिया—सफाई की क्रिया—जारी रहे। इसके साथ साथ उन तत्वों का भी समझदारी के साथ प्रयोग करना चाहिए जिनसे हमारा शरीर बना है। 'छिति जल पावक गगन समीरा, पंच रचित यह अधम शरीरा।' इस शरीर के बनने में मिट्टी, पानी, आग, हवा और आकाश-तत्व लगे हैं। इन्हीं के प्रयोग से हम सारे रोगों को भगा सकते हैं। इस विषय की और बातें अगले अध्यायों में बताई जायँगी।

रोगों के प्रकार

नामों की भरमार--

संसार में इतने प्रकार के रोग देखने को मिलते हैं कि बुद्धि (अक्ल) चकरा जाती है और ऐसा मालूम होता है कि ये सब रोग एक दूसरे से अलग हैं। चिकित्सा (इलाज) करने वाले इन रोगों की चिकित्सा भी अलग अलग दवाओं और ढंगों से करते हैं। वैसे तो मोटा-मोटी रोगों के कई प्रकार हैं ही--जैसे, जुकाम (सर्दी), खाँसी, दमा, बुखार, अपच, सूजन (वर्म), फोड़ा-फुन्सी निकलना, गठिया, बवासीर इत्यादि--लेकिन एक एक रोग के अन्दर भी लक्षण-भेद (अलग अलग हालतों) से अनेकों प्रकार के रोग बताये जाते हैं। खाँसी के दर्जे में सूखी खाँसी, गीली खाँसी, रात को उभरने वाली खाँसी और सुबह को तकलीफ देनेवाली खाँसी सम्मिलित हैं। बुखार (ज्वर) के तो अनेकों बच्चे हैं--मामूली बुखार, जाड़ा-बुखार, मियादी बुखार, गर्दन-तोड़ बुखार, प्लेग का बुखार इत्यादि। वैसे ही अपच (बदहजमी) का परिवार बहुत बड़ा है--पेट का फूला रहना, दस्त नहीं आना, बहुत दस्त आना, पतले दस्त आना, पेचिश होना, संग्रहणी इत्यादि। इन बीमारियों के बड़े बड़े नाम भी रखे गये हैं। हमारे देश में कुछ देशी नाम और कुछ अंगरेजी नाम प्रचलित हैं। देशी नामों में फारसी और संस्कृत के शब्द

भी सुनने को मिलते हैं। इन दिनों अंगरेजी नामों का इस तरह प्रचार हो गया है कि जिससे सुनिए चार-छः बीमारियों के अंगरेजी नाम बता देगा। मैलेरिया (जाड़ा-बुखार), थाइसिस (यक्ष्मा), प्लेग, टाइफॉयड (बहुत-दिनों तक चलने वाला मियादी बुखार), डाइरिया (पतले दस्तों का आना) इत्यादि कुछ ऐसे नाम हैं, जो दिहाती आदमियों के मुँह पर भी बने रहते हैं। सचमुच अंगरेजी में रोगों की बड़ी लम्बी-चौड़ी लिस्ट (सूची) बन गई है, पर इन नामों में से अधिकतर नामों के देखने से पता चलता कि वे किसी अंग-विशेष की सूजन, जलन या उसके विकारमय होने को बताते हैं। सूजन या जलन या किसी और तरह की तकलीफ सबों में एक सी रहती है, लेकिन अलग अलग अंग में रहने के कारण उन तकलीफों के नाम अलग अलग रखे गये हैं। पर इन अलग नामों के होते हुए भी ध्यान देने की बात यह है कि सभी रोगों में असली तकलीफ एक ही है। अंगरेजी के बहुत से नामों के अन्त में 'आइटीस' (itis) लगा होता है, जैसे ब्रॉंकाइटीस (bronchitis), टॉन्सिलाइटीस (tonsilitis) कोलाइटीस (colitis) इत्यादि। 'आइटीस' (itis) का अर्थ है दाह या जलन या ज्वर की अवस्था। जिस अंग में दाह या जलन या सूजन होती है उस अग के नाम के साथ 'आइटीस' (itis) लगा देने से उस रोग-विशेष का नाम तैयार हो जाता है। ब्रॉंकाइटीस (bronchitis) का अर्थ है वायु-नाली की सूजन और ज्वरावस्था। लेकिन अंगरेजी का नाम सुनकर जरूरत से ज्यादा डर मालूम होता है। इसी तरह टॉन्सिलाइटीस (tonsil-

itis) का अर्थ है गले की कौड़ियों की सूजन और कोलाइटीस (colitis) का बड़ी आँतों के अन्दर का दाह और पीड़ा। संस्कृत और उर्दू-फारसी भाषाओं में भी जो रोगों के नाम प्रचलित हैं उनसे भी अग विशेष की पीड़ाएँ या उन पीड़ाओं के लक्षण मालूम होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि एक ही प्रकार की तकलीफ होते हुए भी अलग अगल अंगों के कारण रोगों के नाम अलग अलग रखे गये हैं, जिससे रोगों के प्रकार के संबंध में बड़ा भारी भ्रम (गलत-फहमी) हो जाता है और अगल अलग रोगों के लिए अलग अलग इलाज की जरूरत मालूम पड़ती है। पर सच पूछिए तो रोग केवल एक है—शरीर के अंदर के विकार के कारण कभी इस अग मे और कभी उस अग में और कभी कभी एक ही साथ कई अगों में उठने वाली पीड़ा।

तीन मुख्य प्रकार—

वास्तव में एक ही रोग रहते हुए भी रोगों के तीन मुख्य प्रकार कहे जा सकते हैं। वे इस तरह हैं —

(१) *तीव्र (नये) रोग*—ऐसे रोग जो तेजी के साथ उठते हैं, जिनमें बहुत जलन या पीड़ा होती है और जो दो-चार दिन या दो-चार हफ्ते या कुछ ऐसे ही निश्चित समय तक रहकर चले जाते हैं और फिर शरीर भला-चगा और निरोग हो जाता है। ऐसे रोग बच्चों, जवान, हृष्ट-पुष्ट (तगड़े) और काफी मात्रा में जीवन शक्ति रखने वालों के ही होते हैं। जैसे-जैसे जीवन शक्ति क्षीण पड़ती जाती है, तेज रोगों के बदले कोई जीवन के साथ-साथ चलने वाला रोग,

जैसे बवासीर, दमा, गठिया इत्यादि आ घेरता है। तेज रोगों में लेटे रहना या कम से कम आराम करना रोगियों (मरीजों) के लिए जरूरी हो जाता है। इसी दर्जे में सब तरह के बुखार, पतले दस्तों का आना, पेचिश (आँव गिरना), जुकाम, नई खाँसी, चेचक, खुजली (खारिश), हैजा, प्लेग इत्यादि सम्मिलित किये जा सकते हैं।

ऐसे रोगों को हम 'तीव्र या नया रोग' कह सकते हैं। अंगरेजी में इन्हें 'एक्यूट' (acute) कहते हैं। ये शरीर की वे असाधारण चेष्टाएँ (गैर-मामूली कोशिशें) हैं, जिनसे अपने अन्दर के विकारों को दूर कर शरीर अपने को फिर से भला-चगा बना लेता है। अगर इन तीव्र रोगों की राह में दवा और भोजन की अड़चनें न डाली जायँ तो ये जल्दी ही दूर हो जाते हैं और अपने साथ शरीर के विकारों को ले जाते हैं। छेड़-छाड़ करने से या तो ये भयकर (खतरनाक) रूप धारण करते हैं या देर से जाते हैं। जाने पर भी शरीर हल्का और ताजा नहीं मालूम होता। विषैली दवाओं के सेवन करने वाले ज्वर के रोगी बाहरी तौर से ज्वर के चले जाने पर भी अन्दर से सची तनदुरस्ती का आनन्द नहीं उठाते। बुखार नहीं रहने पर भी बहुतों के भूख नहीं लगती, बहुतों के अरूच (कोष्ठबद्ध) बना रहता है, कुछ के कंठो में खुश्की रहती है और ऐसी ही बहुत सी गड़बड़ी मालूम होती है। होना यह चाहिए कि ज्वर जैसे तेज राग के चले जाने के बाद तबीयत हरी-भरी हो जाय और शरीर के अन्दर के मामूली काम (भूख लगना, पाखाना साफ होना इत्यादि) अच्छी तरह होने लगें।

कुछ दिनों तक कमजोरी तो जरूर मालूम होगी, पर यह कमजोरी जल्द दूर होगी और बीमारी के जाते ही शरीर की हालत नई हो जायगी। लेकिन अनुभव (तजुर्बा) बताता है कि औषधि सेवन करने वाले और बीमारी की ही हालत में पथ्य (गिज़ा) खाने वाले, चाहे वह पथ्य हलका ही क्यों न हो, रोगियों की हालत ऊपर से अच्छी दिखती हुई भी अन्दर से अच्छी नहीं रहती। कारण इसका यही है कि शरीर के अन्दर की सफाई अच्छी तरह न हो पाई। दवा इत्यादि से रोग अन्दर ही दबा दिया गया और शरीर के अन्दर का विकार अन्दर ही बना रहा। पर क्या इस विकार को शरीर अपने अन्दर रख लेगा ? नहीं, वह दूसरी, तीसरी और चौथी कोशिश करेगा और किसी न किसी रोग के बहाने विकार को निकालना चाहेगा। यदि शरीर की कोशिशें दवा इत्यादि से बार-बार असफल कर दी जायंगी तो भी वह कोशिश करता रहेगा पर उससे कोई खास लाभ (फायदा) न होगा और तब कोई जीर्ण रोग खड़ा हो जायगा।

याद रहे, तीव्र रोग उन्हीं के होते है जिनकी जीवन-शक्ति अच्छी है या जिनके शरीर अन्दर से इतने सबल और योग्य (लायक) हैं कि वे अन्दर से विकारों को रोग के सहारे निकाल देते हैं।

(२) *जीर्ण (पुराने) रोग*—जो रोग बहुत दिनों तक बने रहते हैं, जिनमें किसी प्रकार की हल्की हल्की लेकिन बराबर ही बनी रहने वाली तकलीफ जारी रहती है, जिनसे आदमी चलने-

फिरते और साधारण तौर से काम करते हुए भी दुखी और लाचार से बने रहते हैं, जिनके कारण जीवन भार सा मालूम होता है, उन रोगों को 'जीर्ण या पुराना रोग' कहते हैं। गठिया में शरीर की जोड़ों का सख्त पड़ जाना, बवासीर, दमा, हल्के हल्के बुखार का बना रहना, किसी न किसी जख्म का बना रहना, संग्रहणी, बहुमूत्र रोग इत्यादि जीर्ण रोगों की श्रेणी (दर्जे) में सम्मिलित हैं। उदाहरण के लिए दमा या बवासीर का रोगी चलता-फिरता और सभी साधारण काम करता है, पर उसके जीने से न जीना ही अच्छा है। ऐसे रोग अक्सर (प्रायः) अधेड़ अवस्था में (लगभग चालीस साल की उम्र होने पर, कभी कभी इससे पहले ही) और जीवन-शक्ति के कमजोर पड़ जाने के कारण होते हैं, लेकिन इनका मुख्य कारण एक है—तीव्र रोगों के साथ अनुचित छेड़-छाड़ कर विकारों का शरीर के अन्दर ही बार-बार दबाया जाना। जब अनुचित (ग़ैर-मुनासिब) दवा और अनावश्यक (बे-जरूरी) पथ्य के कारण तीव्र रोग अपना काम अच्छी तरह नहीं कर पाता और शरीर की कोशिश विफल हो जाती है तो विकार अन्दर ही बना रहता है। इससे शरीर की जीवन-शक्ति भी क्षीण पड़ती जाती है। फिर भी उस विकार को निकालने की कोशिश शरीर करता है, पर क्षीण शक्ति के कारण वह सफल नहीं हो पाता। नतीजा यह होता है कि किसी न किसी अंग से संबंध रखने वाला कोई जीर्ण रोग खड़ा हो जाता है। बहुत बार तो कई अंग से संबंध रखने वाले कई जीर्ण रोग एक

ही साथ खड़े हो जाते हैं। इसलिए याद रहे कि जिस तरह तीव्र रोग अपने अन्दर के विकार को बाहर निकालने के लिए शरीर की कामियाब कोशिशें (सफल चेष्टाएँ) हैं, उसी तरह जीर्ण रोग विकार को दूर करने के लिए शरीर की असफल चेष्टाएँ हैं। जैसा कि ऊपर बताया गया है, ये रोग लगभग चालीस वर्ष की अवस्था में, जब कि शरीर और दिमाग़ कमज़ोर पड़ते जाते हैं, होते हैं, पर ऐसे रोगों का कम उम्र में ही हो जाना असंभव नहीं है। देखा गया है कि १८-२० वर्ष वाले नौजवानों (नवयुवकों) को भी दमा हो जाता है और २०-२५ वर्ष वाले आदमियों को या १४-१५ वर्ष वाले लड़कों को बवासीर के कारण दुख भोगना पड़ता है। इसका कारण कुछ तो रोगी और कमज़ोर माता-पिताओं से आया हुआ रोगी के शरीर में रोग और कमज़ोरी, कुछ रोगी की जीवन-चर्या (रोज़ के रहने का ढंग) की गड़बड़ी और कुछ तीव्र रोग में विकारों को शरीर के अन्दर ही बार-बार दबा देने वाली दवाओं की करतूत है। कुछ भी हो, एक बात जो पक्की है वह यह है कि जिनकी जीवन-शक्ति काफ़ी कमज़ोर होती है उन्हीं के शरीर में जीर्ण रोग पाये जाते हैं, क्योंकि यदि जीवन-शक्ति अच्छी होती तो वह विकारों को तीव्र रोगों के रूप में बाहर फेंक देती।

कोई भी जीर्ण रोग, जिसमें शरीर का कोई जरूरी कल-पुर्जा—दिल, फेफड़ा, जिगर (यकृत), तिल्ली—ख़राब नहीं हुआ है, अचूक चिकित्सा-विधि से अच्छा किया जा सकता है।

(३) *घातक रोग*—जो रोग किसी भी उपचार से अच्छे नहीं होते, जैसे पुरानी (शुरू-शुरू की नहीं) यक्ष्मा (थाइसिस, क्षयी रोग), पुराना बिगड़ा हुआ कोढ़ इत्यादि, उन्हें 'घातक या विनाशकारी' रोग कहते हैं। इन रोगों के रोगियों की जीवन-शक्ति इतनी कमजोर पड जाती है कि वह 'नहीं' के बराबर रहती है और उस पर किसी तरह के इलाज का कोई असर (प्रभाव) नहीं पड़ सकता। ऐसे रोगियों के शरीर को मौत (मृत्यु) से ही छुटकारा मिलता है।

इस तरह रोगों के तीन मुख्य और सच्चे विभाग ऊपर बताये गये। अब इनके संबंध में कुछ और बातें, जो जानने योग्य हैं, नीचे दी जाती हैं :—

(१) तीव्रता रोगों की पहली अवस्था, जीर्णता दूसरी अवस्था और घातकता तीसरी अवस्था है।

(२) इसलिए रोगों के तीन प्रकार होते हुए भी एक ही रोग तीव्र से जीर्ण और जीर्ण से घातक हो सकता है। जैसे ज्वर पहली अवस्था में तीव्र है, पर छेड़-छाड किये जाने के कारण वह जीर्ण हो सकता है और उसके बहुत दिनों तक बने रहने के कारण और कई और कारणों के मिल जाने से वही यक्ष्मा के साथ रहने वाले ज्वर के रूप में घातक बन आ सकता है। फिर से यह बताने की आवश्यकता नहीं कि यदि ज्वर या किसी और रोग के साथ उसकी पहली अवस्था में इलाज के गलत तरीकों से छेड़खानी न की जाय तो वह जीर्ण या घातक नहीं बनता बल्कि

शरीर के अन्दर की सफाई करके खुद-ब-खुद (स्वयं ही) दूर हो जाता है।

(३) इसी बात को ध्यान में रखते हुए यदि जीर्ण रोगों की हालत में शरीर को सबल बना दिया जाय, उसकी जीवन-शक्ति को उचित भोजन और रहन-सहन से पुष्ट कर दिया जाय, तो शरीर इस योग्य (लायक) हो जाता है कि वह तीव्र रोगों के रूप में अपने अन्दर के विकारों को बाहर निकालकर फिर से भला-चंगा हो जाय।

(४) इसी तरह जो जीर्ण रोग जीर्णता की अवस्था से बढकर अभी हाल में ही घातक बने हैं वे उचित उपायों से घातकता की अवस्था से जीर्णता की अवस्था में लौटाये जा सकते हैं और फिर जीर्णता तीव्रता में बदली जाकर वे रोग बिल्कुल दूर किये जा सकते हैं।

(५) कोई कोई रोग एक ही साथ जीर्ण और तीव्र दोनों ही रहते हैं। जैसे, किसी किसी के महीनों और वर्षों खाँसी चलती है। पुरानी हो जाने पर खाँसी दबी सी रहती है, लेकिन बीच बीच में उभड कर तीव्र रूप धारण कर लेती है। ऐसे रोगों को भी पूरी तीव्रावस्था में लाकर दूर किया जा सकता है।

हमें क्या सीखना चाहिए—

मनुष्य को (१) पहले तो यह सीखना चाहिए कि वह इस तरह रहे कि उसके शरीर के अन्दर विकार जमा ही न हो और (२) इसके बाद यह कि विकार अगर जमा हो जाय तो किस

तरह उन्हें बाहर निकालना चाहिए। (३) यह भी सीखना चाहिए कि जब प्रकृति के प्रबन्ध (इन्तजाम) के अनुसार (मुताबिक़) शरीर की अन्दरूनी (आन्तरिक) सफाई के लिए तीव्र रोग हों तो क्या उपचार किया जाय, जिससे सफाई काम का न रुके। (४) साथ ही साथ यह भी जानने की जरूरत है कि अगर सफाई का काम बराबर रोके जाने के कारण और शरीर की जीवन-शक्ति कमजोर हो जाने के कारण जीर्ण रोग पैदा हो गये हैं तो किस तरह वह जीवन शक्ति फिर से जगाई और पुष्ट की जा सकती है और किस तरह रोग दूर किया जा सकता है। पर ये विषय अगले अध्यायों मे दिये गये हैं।

—

चिकित्सा-सिद्धान्त

शरीर की विचित्रता—

रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा करने वाले को शरीर की एक विचित्रता (खासियत) अच्छी तरह समझनी और जाननी चाहिए। जो इस विचित्रता को नहीं जानता और उसमें पूरा पूरा विश्वास नहीं रखता वह शरीर के सम्बन्ध में सब बातों को जानता हुआ भी कुछ नहीं जानता और न उसे चिकित्सा का ही अधिकार (हक़) है। वह विचित्रता है—*मनुष्य का शरीर इस तरह बना हुआ है और उसके अन्दर ऐसे ऐसे कल-पुर्जे हैं कि वह सभी गड़बड़ी को दूर कर अपने अन्दर की सफाई आप ही कर लेता है* या, बिना किसी बाहरी सहारे के शरीर अपने आपको ठीक कर लेने में समर्थ है। इस विचित्रता को समझना प्रकृति की जोरदार शक्ति को मानना और उसमें विश्वास रखना है। जो प्रकृति की शक्ति मे—शरीर की आप ही आप अपने को साफ कर लेने की शक्ति में—विश्वास रखता है वही सच्चा प्राकृतिक चिकित्सक हो सकता है।

शरीर के संबंध में यह एक बड़ी बात है, जिससे यह निष्कर्ष (नतीजा) निकलता है कि शरीर को तनदुरुस्ती की हालत में लाने के लिए औषधि जैसी बाहरी वस्तु की जरूरत नहीं

है। पूछा जा सकता है कि इसका पता कैसे चला। इसका पता ऐसे चलता है कि जब गिरने-पड़ने से किसी अंग की हड्डी टूट जाती है तो डाक्टर सिर्फ ऊपर से पट्टी इत्यादि बाँधकर छोड़ देता है। हड्डी के टूटे टुकड़ों को जोड़ने के लिए खाल और मांस की तह को काटकर हड्डी पर कोई दवा नहीं लगाता। यह शरीर की प्राकृतिक विचित्रता (कुदरती खासियत) है कि हड्डी स्वयं जुट जाती है और फिर वह अंग ज्यों का त्यों हो जाता है। इसी तरह लड़कों के या बड़े लोगों के भी छोटे-मोटे जख्म खुद-ब-खुद भर जाते हैं। बड़े जख्मों में दवाओं का प्रयोग जरूर किया जाता है, लेकिन इसका भी रिवाज अब कम हो रहा है और यदि उन जख्मों को सिर्फ अच्छे पानी से धोकर साफ रखा जाय तो वे बिना औषधि के ही जल्द अच्छे हो जाँय। फिर जानवरों को भी देख कर पता चलता है कि शरीर को दवा की जरूरत नहीं है। पालतू जानवर तो आदमियों के संग-साथ से कुछ बिगड़ गये हैं, लेकिन अक्सर यह देखने में आता है कि घर में कुत्ता बीमार हुआ और वह आप ही आप अच्छा हो गया। जब तक वह बीमार रहता है भोजन देने पर भी नहीं खाता। जंगल के जानवर न तो बीमार होते हैं और न उनको दवा ही मिल सकती है। इसलिए, ऐसी बातों से साफ जाहिर है कि प्रकृति की ओर से शरीर के अन्दर वह गुण मौजूद है, जिससे वह अपने अन्दर की गड़बड़ी को आप ही ठीक कर लेता है। शरीर की इस विचित्रता पर जितना भी जोर दिया जाय ज्यादा न होगा, और

न्फल चिकित्सक को शरीर की इस विशेषता का पूरा पूरा ख़याल रखना होगा। जैसा पहले बताया गया है, अगर शरीर नियम-पूर्वक रखा जाय तो उसमें रोग हो ही नहीं और अगर नियमों के तोड़ने से रोग हो जाय तो उसके साथ बेजा (अनुचित) छेड़-छाड़ न की जाय। दो-चार बार इसे करके देखने से ही पता चल जायगा कि बिना छेड़-छाड़ के शरीर रोगों को दूर करने मे किस आसानी मे और कितना जल्द समर्थ होता है।

औषधि का प्रयोग

औषधि का प्रयोग, दवाओं का इस्तेमाल, करना चाहिए या नहीं? ऊपर जो शरीर की विशेषता बताई गई है उससे तो यही सिद्ध होता है कि रोग को दूर करने के लिए दवाओं की कुछ भी जरूरत नहीं। देखने में भी आता है कि यदि दवाओं से कुछ रोग अच्छे होते (अच्छे क्या, थोड़े दिनों के लिए दबते हैं) तो बहुत से रोग दवाओं के दिये जाने की हालत में भी बढ़ते जाते हैं। टाइफॉयड मे यही होता है। कई दिन तक दवा देने से जब बुखार नहीं जाता तो कहा जाता है कि टाइफॉयड हो गया। इन सब बातों को देखते हुए कहना पड़ता है कि ऐसी चीज का भरोसा ही क्या, जो कि हर हालत में अचूक न हो? हमें तो ऐसी चीज, ऐसा ढग चाहिए, जो हर हालत में काम कर जाय।

औषधियो मे बहुत-सी ऐसी हैं, जो विषैली हैं। अंगरेजी एलोपैथिक दवाएं तो प्रायः सभी विष की ही बनी हैं। जब हम

तनदुरुस्ती की हालत में विष नहीं खाते तो बीमार की हालत में विषमयी दवाओं के सेवन के लिए क्यों विवश किये जाते हैं, यह बात समझ में नहीं आती। विदेशी या देशी, किसी भी प्रकार की औषधि में यदि विष की थोड़ी सी मात्रा भी हो तो वह ग्रहण करने के योग नहीं है।

ऐसी जड़ी-बूटी और औषधियाँ भी हैं, जिनमें विष नहीं है। ऐसी ही बहुत सी आयुर्वेदीय और यूनानी दवाएँ हैं। उनके इस्तेमाल करने में कोई हर्ज नहीं। लेकिन उनका इस्तेमाल भी बहुत सी हालतों में फजूल (व्यर्थ) जाता है। यह भी तजुर्बे (अनुभव) की बात है कि बहुत से रोगी आयुर्वेदीय या यूनानी इलाज में होते हुए भी अच्छे नहीं होते और तब वे अंगरेजी एलोपैथिक डाक्टर के सुपुर्द किये जाते हैं। डाक्टर साहब अगर रोग को दबा पायें (निर्मूल करना तो दूर रहा) तो ठीक, नहीं तो रोगी बिचारे किसी होमियोपैथिक डाक्टर के हाथ में दिये जाते हैं या फिर वैद्य जी या हकीम साहब के ही पास लौट आते हैं। इसलिए सच्ची बात यह है कि शरीर को बिना विष वाली औषधियों की भी जरूरत नहीं।

जीर्ण रोगों में, तीव्र में नहीं, औषधियों की जरूरत जरूर पड़ती है, क्योंकि जीर्ण रोगों से उद्धार (छुटकारा पाना) तभी होता है, जब कि शरीर की क्षीण जीवन-शक्ति फिर से पुष्ट होकर रोग की जीर्णता को तीव्रता में बदल शरीर के विकार को पूरा पूरा बाहर निकाल देती है। लेकिन ये औषधियाँ उचित भोजन में

ही मिल जाती हैं। इस बात को भी अच्छी तरह समझने की जरूरत है। भोजन इसलिए किया जाता है कि उससे शरीर की सभी जरूरतें पूरी हों, अंग-प्रत्यंग के लिए जो जो पदार्थ जरूरी हैं, वे सब के सब खून के अन्दर आ जायँ, न कि सिर्फ इसलिए कि पेट का सन्दूक (गड्ढा) भर जाय और जीभ की साध पूरी हो जाय। यदि यह बात अच्छी तरह समझ में आ जाय तो भोजन इस प्रकार किया जाने लगेगा कि उससे बढ़िया, सर्व-गुण-सम्पन्न (सब गुणों को रखने वाला) खून तैयार होगा। तब रोग होगा ही नहीं, और यदि किसी तरह खून के विकार-युक्त होने के कारण जीर्ण रोग हो जांय तो फिर भोजन को ही दुरुस्त कर खून साफ़ कर लिया जायगा, जिससे रोग भी दूर हो जायगा। जीर्ण रोगों में दवा की जरूरत पड़ती है पर यह दवा उचित आहार से ही मिल जाती है। जो दवा खाई जाती है वह भी तो पाचन-क्रिया में पड़कर भोजन की तरह पचती है और खून के अन्दर कुछ तबदीली (परिवर्त्तन) पैदा करती है। इसी से रोगी को लाभ होता है। पर यदि यह काम भोजन से ही हो जाय—पेट भरने और खून में तबदीली पैदा करने के काम दोनों ही यदि भोजन से हो जायँ—तो फिर अलग अलग भोजन और दवा खाने की क्या जरूरत? अब सवाल यह है कि जीर्ण रोग की हालत में क्या खाया जाय कि पेट भी भरे और खून साफ़ होकर रोग भी दूर हो जाय। भोजन के विषय पर प्रकाश तो किसी अगले अध्याय में डाला जायगा, पर यहाँ इतना ही समझना

काफ़ी है कि किसी भी हालत में वैसी दवा की जरूरत नहीं, जैसी कि आज कल प्रचलित है।

दवा पर भरोसा करना एक और दृष्टि से ख़राब है। दवा सेवन करने वाला मनुष्य रोगी होने का जिम्मेदार अपने को नहीं समझता। वह यह नहीं समझता कि अनियमित जीवन से रोग होता है और न यही समझता है कि नियमित और प्राकृतिक जीवन के बिना आदमी तनदुरुस्त नहीं रह सकता। जो तनदुरुस्त होना और रहना चाहता है उसे अपनी जिम्मेदारी अच्छी तरह समझनी चाहिए। अपने आपको ठीक रखना तभी हो सकता है जब आदमी अपनी जिम्मेदारी समझे और दवा जैसी किसी भी चीज़ों का भरोसा न रखे।

यह हमने जान लिया कि जीर्ण रोगों में उचित भोजन से मिलने वाली दवा से ही फायदा होता है और यह भी कि ऐसी दवा रोगों को दूर करने के लिए किसी हद तक जरूरी है। अब यह समझना चाहिए कि तीव्र रोगों में भोजन से प्राप्त दवा की भी जरूरत नहीं। या यों कहिये कि तीव्र रोगों में न भोजन की जरूरत है न दवा की।

औषधि-प्रयोग के बारे में सब कुछ कहने के बाद यह बताना जरूरी नहीं है कि इन्जेकशन देना चिकित्सा के सही ढंगों में नहीं है। इन्जेकशन से औषधि मुँह में न डाली जाकर और अंगों द्वारा शरीर में पहुँचाई जाती है। ये औषधियाँ प्रायः जहरीली होती हैं। इसलिए इन्जेकशन देना वैसा ही है जैसा कि विषधर

विन्सेंज प्रीस्नीज

साइलेसिया निवासी किसान। आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा के जन्म-दाता

काले नाग से अपने को डसवाना। ज्यादातर इन्जेक्शन से शुरू में कुछ फायदा मालूम होता है, पर सच्चा और स्थाई लाभ किसी रोग में नहीं होता।

तीव्र रोग—अपना चिकित्सक आप ही—

तीव्र रोग के सम्बन्ध में एक विशेष बात यह है कि वह आप ही अपना चिकित्सक है, वह बाहर से रोग की तरह मालूम होता हुआ अन्दर के असली रोग, विकार, को दूर करने की क्रिया है। जैसा कि पहले कई बार कहा गया है, तीव्र रोग, यदि उसके साथ छेड़-छाड़ न की जाय तो, शरीर के विकारों को दूर करने का अच्छा साधन है। तीव्र रोग इसीलिए होता है कि शरीर के अन्दर की गन्दगी जल्दी से बाहर निकल जाय और शरीर फिर से स्वस्थ हो जाय। बल्कि यह समझना चाहिए कि जब तक तीव्र रोग नहीं हुआ था तब तक शरीर खतरे में था, क्योंकि उसके अन्दर बेकार और जहरीले पदार्थ भरे थे। पर जब तीव्र रोग हो आया तो समझना चाहिए कि प्रकृति की तरफ से सफाई का काम शुरू हो गया, जिससे खतरा जाता रहा। इस दृष्टि से तीव्र रोग दुश्मन न होकर दोस्त है। हमारा काम उसकी मदद करना, उसके उद्देश्य (मकसद) को पूरा करना है, न कि उसके साथ लड़ना, उसे दबाना और उसके अच्छे काम को रोकना। इस दोस्त की सच्ची मदद तभी हो सकती है, जब कि हम शरीर के अन्दर की सफाई का काम पूरा पूरा जारी रहने दें और किसी तरह का भी पथ्य देकर सफाई के काम के साथ साथ भोजन पचाने का

बोझ शरीर को न दे दें। जब तीव्र रोग के कारण शरीर के अन्दर सफाई शुरू होती है तो सफाई के काम के अलावा (अतिरिक्त) और कोई भी काम शरीर में नहीं होना चाहिए। साथ ही शरीर के सब अंगों और कल-पुर्जों को पूरा पूरा आराम मिलना चाहिए। तभी सफाई अच्छी तरह हो सकती है। हाँ, यदि सफाई के काम में किसी तरह की ऐसी मदद पहुँचाई जाय, जिससे सफाई अच्छी तरह हो जाय और शरीर के अन्दर किसी तरह का नुकसान (हानि) न पहुँचे तो बहुत अच्छा हो। ऐसी मदद मिट्टी, पानी, धूप इत्यादि के सहारे पहुँचाई जा सकती है। इस तरह की मदद के बारे में आगे बताया जायगा।

सभी रोगों की एक ही चिकित्सा—

सची चिकित्सा के सिद्धान्तों (उसूल) के जानने वाले यह भी जानते हैं कि रोग के अनेक आकार-प्रकार होते हुए भी वास्तव में रोग एक ही है—*शरीर के अन्दर का विकार*। जुकाम हो या ज्वर, प्लेग हो या हैजा, फोड़ा हो या पेचिश, खाँसी हो या खुजली, जो कुछ भी हो, सच्चा चिकित्सक बाहरी लक्षणों से न घबराकर अन्दर के विकार की ओर अपना ध्यान देगा। वह अच्छी तरह समझता है कि *अगर रोग एक ही है तो चिकित्सा भी एक ही है*। यदि रोग विकार है तो चिकित्सा केवल उस विकार को बाहर निकाल देने का सही ढंग है। बाहरी लक्षणों को भी, जिनसे तकलीफ होती है, वह जरूर शान्त करेगा, पर अपनी चिकित्सा को यह विकार निकालने में ही लगायेगा।

चिकित्सा किसकी—शरीर की या बाहरी लक्षण की—

यह प्रश्न भी गहरा है और इसका उत्तर ऊपर की बातों से संबंध रखता है। मिसाल के लिए, अगर सिर में दर्द है तो चिकित्सा केवल सिर की न की जाकर सारे शरीर की की जायगी। सिर का दर्द तो सिर्फ बाहरी लक्षण है। सच पूछिये तो उसका असली कारण पेट की खराबी, पेट की खराबी से खून की खराबी और खून की खराबी से स्नायु-संस्थान (देखो पृष्ठ १९ का फुटनोट) का ठीक हालत में न होना है। अब अगर इलाज सिर्फ सिर का किया जाय तो रोग क्योंकर जा सकता है। यह अक्सर देखा जाता है कि गलत इलाज से थोड़ी देर के लिए सिर का दर्द चला जाता है, पर वह फिर होता है। इसी तरह खुजली (खारिश) में शरीर की खाल में खराबी दिखती है, पर सची बात तो यह है कि खून की खराबी से खाल की खराबी और पेट की खराबी से खून की खराबी हुई है। खाँसी में क्या सिर्फ कंठ और वायु-नाली की ही खराबी है? आँखों के उठने में (आँख आने में) क्या केवल आँखें ही खराब हालत में है? नहीं, इन सब बीमारियों में अन्दरूनी कारण कुछ और है और सबों में सारे शरीर में थोड़ी बहुत खराबी पैदा हो गई है, लेकिन यह खराबी किसी एक अंग से या ज्यादा अंगों से प्रकट हो रही है। इसलिए समझदार चिकित्सक सभी बीमारियों में साधारण तौर से सारे शरीर का इलाज करता हुआ लक्षण-विशेष का उपचार करता है।

चीरा या नश्तर—

इसी से मालूम होता है कि टॉन्सिलाइटीस (tonsilitis—गले की कौड़ियों की सूजन, जिससे खांसी भी आती है) में चीरा देकर कौड़ियों को निकलवा देना या बवासीर में मस्सों को कटवा देना या अपेन्डिसाइटीस (appendicitis—उदर में छोटी आँतों और बड़ी आँत के मिलने के स्थान के पास अपेंडिक्स नामक एक बहुत छोटे अंग की दाह और पीड़ा) में अपेन्डिक्स का नश्तर करा देना रोग का सच्चा इलाज नहीं है। ऐसे नश्तरों से रोग के लक्षण दबा दिये जाते हैं और रोगी और चिकित्सक दोनों ही इस भ्रम में रहते हैं कि रोग जाता रहा। पर रोग तो पेट की खराबी, खून की खराबी, स्नायु-संस्थान की खराबी या यों कहिये कि सारे अंग की खराबी से हुआ था। जब तक ये खराबियाँ बनी रहेंगी रोग भी बना रहेगा और महज ऊपरी चीर-फाड़ से सच्चा लाभ नहीं होगा।

गले की कौड़ियों का सूजना तो सिर्फ एक ऊपरी लक्षण है, लेकिन उसके पीछे सारे शरीर की खराबी और कमज़ोरी है। सिर्फ लक्षण को दूर कर—टॉन्सिल को काट कर—यह समझना कि सच्चा रोग दूर हो गया अपने आप को धोखा देना है। आजकल नश्तर देने का ऐसा रिवाज चल गया है कि जहाँ अक्ल (बुद्धि) काम नहीं करती नश्तर दे दिया जाता है। जिस अंग से रोग ज़ाहिर होता है वह सिर्फ अपनी तसल्ली के लिए, अपने को भ्रम में डालने के लिए, काटकर फेंक दिया जाता है। गले की कौड़ी,

आँतों का अपेन्डिक्स, नाकों की गिल्टियाँ, गर्भाशय इत्यादि स्थानों का नश्तर तो साधारण हो गया है। अब कान, नाक और आंखें बच गई हैं। कुछ दिनों में शायद नाक-कान भी काटे जाँयगे और आँखें भी निकाली जाँयगी! पर क्या कौड़ियों के निकलवा देने से टॉन्सिलाइटीस में सभी तकलीफ जाती रहती है? वह तो फिर किसी न किसी रूप में प्रकट हो ही जाती है। देखा गया है कि टॉन्सिल कट जाने पर सर्दी-जुकाम बराबर बना रहता है। इसी तरह मस्सों के काट देने से बवासीर का रोगी अच्छा नहीं होता। उसे या तो फिर से मस्से निकल आते हैं या बवासीर बादी से खूनी, या खूनी से बादी हो जाता है या किसी और तरह की तकलीफ हो जाती है। चिकित्सा के सच्चे ढंग के प्रचार से नश्तर का रिवाज बहुत कुछ कम हो जायगा और नश्तर उन्हीं हालतों में दिया जायगा जिनमें चोट-चपेट या दुर्घटना के कारण नश्तर देना जरूरी है। उचित चिकित्सा-प्रणाली में नश्तर का स्थान अवश्य है, पर इतना बड़ा नहीं जितना कि उसे आज दिन मिला हुआ है।

शरीर के तत्वों से काम लेना—

रोग की अवस्था में यदि किसी चीज या पदार्थ से लाभ हो सकता है तो वह है जीर्ण रोगों में उचित भोजन और तीव्र और जीर्ण दोनों ही प्रकार के रोगों में उन तत्वों से काम लेना, जिनसे यह शरीर बना है। हवा, पानी आग या धूप, मिट्टी और आकाश-तत्व के प्रयोग से तीव्र और जीर्ण दोनों ही प्रकार के

रोगों में समुचित (मुनासिब) लाभ पहुँचता है। पर जैसा कि ऊपर बताया गया है, इन सबों के साथ उचित आहार-विहार, मेहनत-आराम का ध्यान रखना होगा।

भोजन और व्यायाम (कसरत)—

सैकड़े निन्यानवे तीव्र रोगों में भोजन बन्द कर देना जरूरी है। बचे हुए एक प्रकार के रोग में बहुत हल्का भोजन करना हितकर होता है। जीर्ण रोगों में पहले ही भोजन बन्द करना बराबर जरूरी या हितकर नहीं होता। उनमें पहले ख़ास तरह के भोजन की आवश्यकता होती है और बीच बीच में उपवास करना पड़ता है।

तीव्र रोगों में कसरत की आवश्यकता नहीं होती। उनमें से बहुतों में ऐसी तकलीफ रहती है कि आराम करना जरूरी हो जाता है। जीर्ण रोगों में कसरत से बहुत लाभ होता है, पर रोग के भेद के साथ कसरत के भी भेद हैं, जो आगे बताये जायँगे।

चिकित्सा के मोटे मोटे सिद्धान्त ऊपर बताये गये। इनको अच्छी तरह समझ लेना जरूरी है, क्योंकि इन्हीं की बुनियाद (नींव) पर अचूक चिकित्सा के ढंग बताये जायँगे। अब इन सिद्धान्तों से सम्बन्ध रखने वाले विषय—भोजन, तत्वों के प्रयोग इत्यादि पर—प्रकाश डाला जायगा।

भोजन

अचूक चिकित्सा और भोजन—

शरीर के बनाये रखने, शरीर के बिगाड़ने, उसके अन्दर विकार पैदा करने और इस विकार को निकालने मे भोजन का इतना हाथ है कि अचूक चिकित्सा के ढंगों में हम उचित भोजन को पहला स्थान देते हैं। आज-कल जो प्राकृतिक चिकित्सा (कुदरती इलाज) के बहुत से तरीके निकल गये है उनमे भोजन का उचित ख़याल किया जाता है, फिर भी किसी मे पानी, किसी में भाप, किसी मे बिजली और कुछ मे पानी-भाप-बिजली तीनों को ही अधिक श्रेय दिया जाता है। आप हिन्दुस्तान के बड़े बड़े शहरों मे जगह जगह पर बड़े बड़े साइनबोर्ड लगे देखेंगे, जिनपर मोटे मोटे अक्षरों में लिखा होता है, 'पानी का इलाज,' 'बिजली का इलाज' या कहीं कहीं एकही साथ दूर से चमकता हुआ दिखाई देता है, 'पानी, भाप और बिजली का इलाज।' प्राकृतिक चिकित्सा का दम भरते हुए सिर्फ़ पानी या भाप या बिजली की दुहाई देना अपने आपको और जनसाधारण को धोखा देना है, क्योंकि यदि पानी या भाप या बिजली के प्रयोग के साथ भोजन दुरस्त न किया जाय तो कभी आरोग्य-लाभ नहीं हो सकता और यदि बिना इन चीज़ों के ख़ास प्रयोग के भी सिर्फ़ भोजन दुरस्त कर दिया जाय तो सैकड़े पंचानवे से भी ज़्यादा रोग दूर हो जायं।

स्वयं लेखक का और बहुत से भारतीय तथा यूरप और अमेरिका के प्राकृतिक चिकित्सकों का अनुभव है कि गठिया, बवासीर, दमा और एग्जिमा जैसे कठिन और हठी रोग केवल भोजन-सुधार से ही जाते रहे हैं। जर्मनी के लूई कुने के 'नया चिकित्सा-विज्ञान' (New Science of Healing) के अनुसार स्नानों के साथ भोजन की बहुत कड़ी पाबन्दी है। यदि यह पाबन्दी न की जाय तो उन स्नानों से कुछ लाभ न हो। इसलिए अचूक चिकित्सा-विधि में ठीक ठीक भोजन पर बहुत जोर दिया जाता है। दावा यह है कि यदि भोजन ठीक हो तो रोग अपने पास फटकने न पावे और यदि पहले के अनुचित भोजन इत्यादि से रोग हों भी तो उनमें से सैकड़े पंचानबे से अधिक भोजन-सुधार से ही निर्मूल हो जाय।

भोजन प्राणदाता नहीं है—

भोजन से शरीर इस हालत में रहता है कि उसके अन्दर प्राण रह सके। एक भूल जो बहुतों के दिमाग में घनी है वह यह है कि भोजन से ही शरीर जीवित रहता है। नहीं, जीवन एक अलग चीज है पर उसके धारण करने की योग्यता शरीर में उचित भोजन से आती है। जीवन, या यों कहिए कि प्राण, उसी शरीर में रहता है, जो अच्छे भोजन (और भोजन के ही साथ साथ व्यायाम, आराम, सफ़ाई इत्यादि) के कारण अच्छी हालत में है। यदि शरीर स्वस्थावस्था में नहीं रहेगा तो प्राण उसके अन्दर काम नहीं करेगा और प्राण के नहीं

रहने और नहीं काम करने को ही जीवन का अभाव (कमी) या मृत्यु (मौत) कहते हैं। इसलिए जीवन के लिए प्राण आवश्यक है न कि भोजन, लेकिन भोजन इसलिए आवश्यक है कि बिना उसके शरीर इस योग्य नहीं रहेगा कि प्राण उसके अन्दर बसेरा करे। यह बात इसलिए बताई गई कि लोग भोजन को इतना जरूरी समझने लगे हैं जितना कि यह है नहीं। इसी से यदि किसी से कहा जाय कि एक दो दिन भोजन न करो तो वह बिना कारण ही बहुत डर जाता है और समझता है कि खाना बन्द कर देने से ही प्राण निकल जायँगे। एक दो दिन का उपवास (फाका) तो हर कोई—एक बच्चा भी—हँसता-खेलता कर सकता है। जभी जरूरत हो पेट और पाचन-क्रिया को एक दो दिन की छुट्टी दी जा सकती है।

पूछा जा सकता है कि प्राण कहाँ से आता है ? इसका उत्तर देना कठिन है। कोई कहता है कि प्राण ईश्वर की ओर से मिलता है और कोई सूर्य को प्राण का भंडार बताता है। पर इतना ठीक है कि वह किसी बाहरी शक्ति से आकर दिमाग से होता हुआ सुषुम्ना नाड़ी (स्नायु-संस्थान की धड़) में आता है। वही जीवन-शक्ति देता है।

भोजन जिलाने वाला और मारने वाला, दोनों, है—

यद्यपि हर रोज देखने में आता है कि लोग ज्यादा खाने से, बिना जरूरत के खाने से, जो नहीं खाना चाहिए उसे खाने से, बीमार होते हैं और मरते हैं, बीमारी से अच्छा होते होते फिर भी

बीमार हो जाते हैं, तो भी यह बात हृदय में अंकित नहीं होती कि भोजन, यदि जिलाने वाला है तो, मारने वाला भी है। हमारी सारी शारीरिक दुर्गतियों का कारण यही एक ना-समझी है। संस्कृत के 'अन्न' (अनाज) शब्द का अर्थ इस बात पर प्रकाश (रोशनी) डालता है। 'अन्न' शब्द 'अद्' धातु से बना है। 'अद्' का अर्थ है, 'खाना', इसलिए लिखा है कि 'जो (दूसरों से) खाया जाय' और 'जो (दूसरों को) खाय' उसे 'अन्न' कहते हैं। यह बात जानकर 'अन्न' से सावधान (होशियार) रहना चाहिए, क्योंकि यदि उसे अच्छी तरह पचा पाया तो सचमुच उसे खाया और यदि पचा नहीं पाया तो वह हमें ही खा जायगा। कहने की जरूरत नहीं कि ज्यादातर ऐसा ही हो रहा है।

भोजन का पचाना—

भोजन का पचाना शरीर के लिए शायद सब से बड़ा काम है। जो लोग इसे नहीं जानते – सैकड़े निन्यानवे इस बात को नहीं जानते —वह महज स्वाद के लिए अपने पेट में तरह तरह की चीजें बहुत बहुत मात्रा में ठूंसते जाते हैं। फिर उनको पचाने के लिए चूरन, सोडा वाटर इत्यादि चीजों और दवाओं का व्यवहार करते हैं। इस तरह के अति-भोजन का बुरा परिणाम (फल) क्या होता है, सभी जानते हैं।

भोजन के पाचन के संबंध में यह याद रखना चाहिए कि

भोजन के पेट मे पहुँचते ही शरीर की सारी शक्तियाँ उसके पचाने मे लग जाती हैं। इसी से देखा जाता है कि भोजन, खास कर अति-भोजन, के थोड़ी देर बाद कुछ सुस्ती सी मालूम होने लगती है। इसका कारण यही है कि शरीर के सभी अंगो का बल खिंच खिंचकर पेट की ओर पचाने का काम जारी करने के लिए चला जाता है। बहुत ज्यादा खा लेने पर यह शक्ति-हीनता साफ-साफ मालूम होती है।

शरीर उतने ही भोजन को पचा सकता है जितनी उसे शक्ति है और यह शक्ति सब आदमियों में एक सी नहीं होती। यदि अपनी शक्ति से अधिक काम शरीर को करना पड़ा तो कुछ दिनो तक तो वह जैसे तैसे निभा लेगा, पर फिर बोल जायगा। आजकल जो थोड़ी उम्र के ही बहुत से रोगी देखे जाते हैं, जिन्हे अपच की शिकायत रहती है, चूरन खाने और जुलाब लेने से भी जिनका पेट साफ नहीं होता, जिन्हे महीनों, वर्षों, भूख नहीं लगती और खून की कमी के कारण जिनका बदन पीला पड़ जाता है, वे सब के सब अपनी शक्ति से अधिक खाने वाले भोजन-भट्ट हैं। अचूक-चिकित्सा-प्रणाली में शुरू शुरू इन महाशयों के भोजन की मात्रा कम कर दी जाती है और फिर धीरे-धीरे इन्हे सिर्फ फलों के रस पर रखा जाता है। यह रस इन्हे दिन मे तीन-चार बार दिया जाता है। हल्के पथ्य के बाद से ही उनकी तबीयत पहले से ज्यादा अच्छी मालूम होने लगती है। बीच-बीच में उन्हे पूरा उपवास भी कराया जाता है, जिससे और भी लाभ होता है।

भोजन किस लिए—

भोजन इसलिए किया जाता है कि उससे शरीर की छीजन दूर हो, शरीर के अन्दर की जरूरियात पूरी हों, न कि केवल स्वाद के लिए। इसलिए अपनी जरूरत और शक्ति को ध्यान में रखते हुए भोजन करना चाहिए, नहीं तो अति-भोजन से स्नायु-बल का ह्रास होगा। भगवान मनु कहते हैं—

अनारोग्यं अनायुष्यं अस्वर्ग्यंच्याति भोजनम्।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात् तत्परिवर्जयेत्॥

अर्थात्

अधिक भोजन रोग पैदा करने वाला, आयु को कम करने वाला, स्वर्गावस्था के विपरीत, पुण्यावस्था के विपरीत और लोक-व्यवहार के विपरीत है—इसलिए उसे छोड़ देना चाहिए। इस कथन से भी यही सिद्ध होता है कि भोजन केवल स्वाद के लिए नहीं बल्कि शरीर की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए है।

भोजन से खून बनता है और खून शरीर के अंग अंग में पहुँचकर उसकी खुराक दे आता है। यदि खून अच्छा है, खुराक की सभी सामग्री रखता है, विकार-हीन है, तो इन अंगों को उससे पुष्टि और शक्ति मिलेगी और भोजन का सब काम पूरा होता रहेगा। इसलिए भोजन के विषय में यह जानना चाहिए कि किन चीजों के खाने से खून में कौन कौन सामग्री आ जाती है।

भोजन और स्वाद—

तो क्या स्वाद का कुछ भी ख़याल करना चाहिए ? जरूर करना चाहिए। स्वाद से भोजन में आनन्द आता है और आनन्द के साथ खाया हुआ भोजन अच्छी तरह पचता और अच्छा खून बनाता है। लेकिन ऐसा भी नहीं होना चाहिए कि स्वाद के लिए पेट में इतना और ऐसा खाना ठूंस दिया जाय जिसे वह सम्हाल न सके और जिसके पचाने में जरूरत से ज्यादा स्नायु-बल लगे।

साथ ही यह भी जानने की बात है कि इन दिनों हम लोगों का स्वाद बहुत कुछ बिगड़ गया है। अमरूद अमरूद की तरह योंही न खाकर नमक और काली मिर्च के साथ हम खाते हैं। गुणकारी तरकारी और सब्जियाँ तब तक हमें नहीं भातीं, जब तक कि वे अच्छी तरह जलाई नहीं जातीं और मिर्च-मसालों से उनका प्राकृतिक स्वाद नष्ट नहीं किया जाता। तरबूज और खरबूजों को जब हम शकर के साथ खाते हैं तभी वे हमें अच्छे लगते हैं। सच पूछिए तो न हमें आटे का असल स्वाद मालूम है न आलू, लौकी इत्यादि साग-सब्जियों का। बिना मसाले की या अन्दाज से मसाले देकर अगर तरकारी बने तो हम नाक-भौं सिकोड़ते हैं, कहते हैं कि यह तो गाय-बैल का खाना है। इसका कारण यही है कि हमने प्राकृतिक स्वाद का मजा अप्राकृतिक भोजनों को खा खाकर खो दिया है। इसलिए सादी चीजों मे हमें कुछ स्वाद नहीं मालूम होता। पर कुछ दिन नियम-पूर्वक जीवन चलाने से हम

फिर भी अपना सच्चा स्वाद पा लेंगे और तब हमें लौकी, आलू, भिन्डी, पालक इत्यादि के सच्चे स्वाद की फिक्र रहेगी न केवल मसालों के ही। मसाले, अधिक घी या तेल और बहुत नमक डालने और तलने-भुनने से साग-सब्जियों का प्राकृतिक स्वाद और साथ ही साथ प्राकृतिक गुण जाता रहता है। इन बातों से स्वाद का आनन्द भले ही आये, लेकिन भोजन से जो लाभ होना चाहिए वह नहीं होता। इसलिए स्वाद के संबंध में यह याद रखना चाहिए कि स्वाद बहुत जरूरी है पर स्वाद के लिए (१) न तो भोजनों का गुण कम करना चाहिए और (२) न इतना खा जाना चाहिए कि उसका पचाना असंभव हो जाय और अनपच के कारण शरीर रोगों का अड्डा हो जाय।

भोजन और खून—

भोजन से रस और रस से खून बनता है, फिर खून ही शरीर की खूराक देकर उसके अंग-अंग को पुष्ट करता है। इसीलिए भोजन पर पूरा पूरा ध्यान देना चाहिए और नियमानुसार (कायदे के मुताबिक़) भोजन करना चाहिए। अगर हम अच्छी चीजें (अच्छा क्या है, यह आगे बताया जायगा) खायेंगे और उसे ठीक ठीक पचा पायेंगे तो अच्छा खून बनेगा। यदि हम अच्छी चीजें न खाकर ऐसी चीजें खायेंगे जिनसे विकार पैदा होते हैं तो खून भी विकार-युक्त बनेगा और तरह तरह की बीमारियाँ होंगी। लेकिन अगर खून खराब है, जिससे कोई बीमारी या बहुत सी बीमारियाँ हो गई हैं तो भोजन में कमी या रदोबदल करने से

खून साफ हो जायगा और रोग भी जाते रहेंगे, क्योंकि खून में वह शक्ति आ जायगी, जो रोगों को रहने नहीं दे सकती। यह एक सीधी-सादी बात है, जिसे समझने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए और इसी एक बात को समझ लेने और उस पर अमल करने से शरीर अच्छी हालत में रहेगा, रोगी न होगा और तब जीवन सुखमय होकर आनन्द के दिन कटेंगे।

—

अचूक चिकित्सा के ढंग

भोजन के नियम, हवा से फायदा उठाना, पानी को काम में लाना, धूप या भाप से काम लेना, मिट्टी को काम मे लाना, एनीमा के सहारे आँतों की सफाई

भोजन के नियम

ख़ून की सफ़ाई—

जैसा कि पहले बताया गया है, अचूक चिकित्सा के ढंगों में ठीक ठीक भोजन करने का पहला और सब से ऊँचा स्थान है। यहाँ फिर से उसी पुराने सिद्धान्त (उसूल) को दुहराने में कुछ हिचक नहीं मालूम होती कि भोजन से ही ख़ून बनता है और ख़ून के विकारों से ही रोग होते हैं। अगर मामूली सिर-दर्द भी हो तो समझना चाहिए कि ख़ून विकृत है। साधारण सिर-दर्द से लेकर डाक्टर और वैद्यों को चक्कर में डालने वाले गर्दन तोड़ बुखार या हैज़ा या प्लेग या दमा या गठिया जैसे कठिन से कठिन रोग में ख़ून का विकार-मय होना ही रोग का सच्चा कारण है। इसलिए चतुर चिकित्सक ख़ून को ही साफ़ करने की कोशिश करता है। एक तो तीव्र रोग ख़ुद ही प्रकृति की ओर से विकार को शरीर से बाहर निकाल देने और ख़ून को साफ़ करने की कोशिश है। दूसरे, चतुर चिकित्सक प्रकृति को मदद पहुँचाकर इस सफ़ाई की क्रिया (कारवाई) को और भी पूरा और पुर-असर (प्रभावशाली) कर देता है। प्राकृतिक चिकित्सक तीव्र रोग में खाना न देगा। तीव्र रोग में खाना देना, चाहे वह कितना ही हल्का क्यों न हो, प्रकृति (क़ुदरत) के रास्ते में अड़चन

डालकर रोग को बढाना है। इसी से मामूली बुखार बढकर मियादी बुखार या गर्दन-तोड बुखार या चेचक का बुखार हो जाता है और मामूली जुकाम और बुखार न्यूमोनिया के रूप में बदल जाता है।

जीर्ण रोगों में चतुर प्राकृतिक चिकित्सक भोजन को बदल कर और साथ ही साथ उपवास का सहारा लेकर खून को साफ करता है और वर्षों से बैठे हुए रोग को निकाल फेंकता है। यह सिर्फ कहने की बात नहीं है। यह हर रोज के अनुभव की बात है कि गठिया या दमा के रोगी, जिनके रोगों को विद्वान् डाक्टरों ने असाध्य (ला-इलाज) कह कर उनकी चिकित्सा करना छोड दिया था, प्राकृतिक चिकित्सक के हाथ में आने के चार छः दिन के बाद से ही अपने रोग में कमी और विशेष आराम का अनुभव करने लगते हैं। पूरा आराम तो देर से होता है लेकिन उसकी शुरुआत हो जाती है।

यह भी ध्यान देने की बात है कि खून को साफ करने के लिए किसी बाहरी तरकीब (उपाय) की कोई ज़रूरत (आवश्यकता) नहीं है। जैसा कि बताया जा चुका है, शरीर की बनावट ही ऐसी है और उसका धर्म ही यह है कि वह अपने आपको दुरुस्त और भला-चगा बना ले। उसकी राह में अडचनें नहीं होनी चाहिए, फिर तो अपने आपको वह जल्दी में ठीक कर लेगा। शरीर की इस विचित्रता को प्राकृतिक चिकित्सक कभी नहीं भूलता और वह या तो भोजन बन्द करके या उचित भोजन देकर

खून की सफ़ाई में शरीर की मदद करता है। यदि वह किसी बाहरी चीजों का प्रयोग (इस्तेमाल) करता है तो, जैसा कि पहिले कहा जा चुका, उन्हीं पदार्थों का, जिनसे कि यह शरीर बना है—पानी, मिट्टी, हवा, आग या धूप।

अचूक चिकित्सा-संबंधी भोजन के नियम—

अब अचूक चिकित्सा से संबंध रखने वाले भोजन के नियमों को एक एक करके बताया जाता है :—

(१) तीव्र (नये) रोगों में भोजन नहीं देना चाहिए—किसी तरह के बुखार, जुकाम (सर्दी), बदन के किसी हिस्से मे दर्द, बड़े फोड़े का आरम्भ, खाँसी, पेचिश, दस्त आना इत्यादि नये रोगों के लक्षण देखते ही खाना बन्द कर देना चाहिए। ऐसे रोगों में शरीर अपने अन्दर के विकारो की सफ़ाई करने पर तुला हुआ है। इस हालत में किसी प्रकार का भी भोजन देने से पाचन-क्रिया जारी हो जायगी और सफ़ाई के काम में रुकावट होगी। इससे शरीर ख़तरे में हो जायगा।

ऐसे रोगों मे भूख स्वयं ही जाती रहती है, जिसका अर्थ है कि शरीर को भोजन की ज़रूरत नहीं। फिर ज़रूरत नहीं रहने पर शरीर को भोजन देना उस पर बेकार भार लादना और अपनी मूर्खता साबित करना है। यह सोचना ही गलत है कि भोजन न देने से रोगी कमजोर हो जायगा। रोगी रोग मे कुछ कमजोर ज़रूर होता है पर उचित चिकित्सा से अच्छे होने पर शीघ्र ही पहले से भी अधिक बलवान और ताजा हो जाता है।

खास हालतों में कुछ चीज़ें नये रोगों में दी जा सकती हैं। हर प्रकार के बुख़ार में और ज़ुकाम-खाँसी में भी एक प्याला ठंढे या गुनगुने (थोड़ा गरम) पानी के साथ आधे नींबू का रस निचोड़ कर हर तीन या चार घंटे पर रोगी को पिला सकते हैं। बुख़ार इत्यादि में यदि भीतरी दाह ज्यादा हो तो या पेचिश या दस्त लगने की हालत में ठंढे पानी में नींबू का रस निचोड़ कर पिला सकते हैं। कुछ लोग ज़ुकाम-खाँसी में नींबू का रस पिलाने से डरेंगे, पर नींबू का व्यवहार प्रायः हर हालत में लाभदायक है। नींबू भीतरी विकारों को बाहर निकालने में सहायता पहुँचाता है, दस्त साफ़ लाता है और बहुत से उपद्रवों को दूर करता है। ज़ुकाम में हो सकता है कि नाक से और भी पानी निकले और छींकें अधिक आयें, पर इन बातों से तो विकार जल्द दूर हो जाते हैं। ज़ुकाम में, क़ब्ज में, पेट के दर्द में, गर्म पानी के साथ नींबू का रस पिलाने से लाभ होता है। कोई भी नींबू अच्छा है पर काग़ज़ी नींबू ज्यादा अच्छा है।

नये रोगों में बच्चे को, बहुत बुड्ढे को, कमज़ोर को और गर्भिणी स्त्री को सन्तरे (नारंगी) का रस, मीठे अनार का रस, कच्चे टमाटर का रस, जामुन का रस, तरबूज़ का सिर्फ़ पानी, अनन्नास का रस, नाशपाती का रस या सेब का रस पानी के साथ या अकेला ही, थोड़ी थोड़ी मात्रा में और हर तीन या चार घंटे के बाद, दे सकते हैं। अंगूर का रस भी दिया जा सकता है, पर उसमें चीनी की मात्रा अधिक रहती है। इसलिए

यदि उसके बदले किसी और फल का रस दिया जाय तो अच्छा हो।

अपनी चिकित्सा में मैं बच्चों को पहले दिन सिर्फ नींबू के रस और पानी पर रखने की कोशिश करता हूँ। दूसरे दिन किसी फल का रस दिन में तीन बार पिलाता हूँ। नये रोग उपवास करने और एनीमा लेने से (एनीमा के बारे में आगे बताया जायगा) दो-तीन दिन में ही चले जाते हैं। अधिक उम्र के मरीजों (रोगियों) को पहले दिन कुछ भी नहीं देते। प्यास मालूम होने पर सिर्फ पानी पीने को देते हैं। दूसरे दिन नींबू का रस पानी के साथ दिन में तीन-चार बार देते हैं। तीसरे दिन भी इसी तरह रखते हैं, पर यदि रोगी ने इच्छा प्रकट की तो तीसरे दिन से ही फल का रस देना शुरू कर देते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि बड़े लोगों के नये रोग भी दो-तीन दिनों के उपवास और एनीमा-प्रयोग से जरूर चले जाते हैं।

नये रोग में फल के रस देने से कोई हानि नहीं होती। यह रस पाचन-क्रिया पर भार नहीं पहुँचाते और इनके पीने से रोगी को तसल्ली रहती है। नींबू के रस के प्रयोग से तो फायदा ही पहुँचता है। यदि ताजे फल न मिलें तो थोड़े किशमिश या मुनक्कों को गरम पानी में एक घंटे भिगो कर और फिर उनको हल्का कुचल और पानी मिला कर निचोड़ लेते हैं। इस रस में छिलके या गूदे का अंश न होना चाहिए। इसी तरह लौकी, परवल, नेनुआ, तरोई, टमाटर, शलजम, पालक इत्यादि सभी हरी और ताजी

भाजियों में से तीन-चार को हल्की आँच पर एक डेढ़ घंटे धीरे-धीरे उबालकर और फिर उनका अर्क (सूप) निकाल कर दे सकते हैं। जी चाहे तो उस अर्क में थोड़ा सा नमक और चार छः बून्द नींबू का रस भी छोड़ सकते हैं। इस सूप (अर्क) में भाजी का अंश नहीं होना चाहिए। फल और तरकारी के रस दवा का काम भी करते हैं। उनके अन्दर बहुत से प्राकृतिक लवण (क़ुदरती नमक) रहते हैं, जो खाने में नमकीन नहीं मालूम होते पर जिनसे शरीर को बहुत लाभ पहुँचता है।

नये रोगों के चले जाने पर एक दो दिन रोगी को सिर्फ फल, तरकारी या दूध पर रखना चाहिए, फिर धीरे धीरे रोटी-भाजी पर लाना चाहिए। मान लीजिए कि एक रोगी है, जिसका बुखार आज उतर गया। कल हम उसको लगभग ८ बजे सुबह, २ बजे दिन और ७ बजे शाम को बिना पानी मिलाये फलों के रस पर रखेंगे। परसों उसे हम तीनों बार कोई एक हल्का फल (दो छोटे सन्तरे या थोड़े से अनार के दाने या १ सेब या थोड़े से अंगूर या किशमिश या आधा पपीता या एक चूसने वाला मीठा आम या थोड़ा सा तरबूज) देंगे। नरसों हम सुबह के फल के साथ आध पाव कच्चा या एक उफान का औटा दूध भी, बिना चीनी या मिश्री के, देंगे। २ बजे दिन में फिर सिर्फ फल और शाम को एक मामूली तौर पर बनी पत्तीदार भाजी (जैसे पालक, बथुआ, मर्सा, चौराई, मूली की पत्ती, करमकल्ले की पत्ती) या हरी भाजी (जैसे लौकी या भतुआ [पेठा] या नेनुआ या तरोई या परवल) देंगे। आलू, घुइयाँ जैसी

क़न्द-भाजी या गोभी-बैंगन जैसी वादी भाजी एक हफ़्ते या और ज्यादा दिनों तक नहीं दी जायगी। चौथे दिन सुबह में ८-९ के बीच में एक रोटी और ऊपर की भाजियों में से कोई एक भाजी देंगे। दो बजे पाव भर दूध, जैसा कि पहले बताया गया है, और शाम को सिर्फ भाजी देंगे। भोजन का यह क्रम (सिलसिला) नमूने के लिए बताया गया है। आशा है कि पाठक इस नमूने से सच्चा आशय (मतलब) समझ जायंगे। नये रोग के जाते ही रोटी या चावल-दाल शुरू नहीं करना चाहिए, क्योंकि शरीर उस हालत में थका और कमजोर सा रहता है। उसे एक प्रकार की लड़ाई लड़नी पड़ी थी। इसलिए धीरे धीरे उसे अन्न देना चाहिए।

ऊपर बताया गया है कि बड़े फोड़े के आरंभ होने की हालत में भी भोजन नहीं देना चाहिए। बड़े फोड़े जब उठने लगते हैं तो थोड़ी या ज्यादा हरारत भी रहती है। डाक्टर लोग तो ऐसी हालत में सभी कुछ खाने को देते हैं। वे समझते हैं कि आगे इस फोड़े को पकाकर इसमें नश्तर दिया जायगा। इसलिए भोजन रोकने से क्या लाभ। पर बड़े फोड़ों में से बहुत से (लगभग फी सदी ९९) भोजन के परहेज, एनीमा-प्रयोग और मिट्टी के लेप (यह आगे बताया जायगा) से शीघ्र हो या तो दब जाते हैं या फूट कर अच्छे हो जाते हैं।

(२) *जीर्ण रोगों में या तो उपवास कराना चाहिए या क्षार-मय (alkaline) भोजन देना चाहिए*—मान लीजिये कि मेरे पास कोई गठिया जैसे जीर्ण-रोग से ग्रस्त रोगी आया।

अगर वह साधारण तौर पर अच्छी हालत में है, बहुत कमज़ोर नहीं है, तो मैं पहले ही उसे तीन दिन का उपवास पानी या फलों के रस पर कराऊँगा और तब फल और भाजी पर बहुत दिन रखूंगा, जिससे शरीर के अन्दर का खून बदल जाय। खून के बदलने पर ही रोग का दूर होना निर्भर है, और खून का अच्छा या बुरा होना भोजन पर निर्भर है। इसलिए या तो उपवास या भोजन के बदलने से ही मैं अपनी चिकित्सा शुरू करूँगा। अगर रोगी कुछ कमज़ोर है तो पहले उसे मैं केवल ऐसी चीज़ें खाने को दूंगा जो चार-मय हैं और जिनसे खून सौ फी सदी यानी बिल्कुल चार-मय हो जाय। चार-मय भोजनों के बारे में अभी आगे बतलाया जायगा, पर उदाहरण के लिए यहाँ यह कहा जाता है कि गठिया के रोगी को मैं सिर्फ हल्के फल और पत्तीदार भाजी दिन में तीन बार खिलाकर रखूंगा। उसे १५ दिन तक हर रोज़ और आगे भी बीच बीच में एनीमा दिया जायगा, जिससे वर्षों का इकट्ठा विकार शरीर से निकल जाय। साथ ही आवश्यकतानुसार कुछ जल और भाप या धूप का सहारा भी लिया जायगा। पुराना गठिया देर से जाता है, लेकिन जाता जरूर है, इसलिए इस रोगी को १५ दिन फल और भाजी पर रख कर तीन दिन का उपवास रस पिलाकर करा दूंगा, यानी उपवास के समय उसे चार चार घंटे पर सन्तरे या टमाटर या किसी और फल का रस पीने को दूंगा। इस तरह के तीन दिन के उपवास के बाद उसे फिर फल और भाजी पर ७-८ दिन रखूंगा और तब सुबह को फल, दोपहर

में कच्ची सब्जी (सलाद, आगे देखिए) और एक चोकरदार आटे की रोटी और शाम को पकी भाजी खिलाना शुरू करूंगा। इस तरह एक-डेढ महीने चलाऊँगा। इस अर्से में रोग बहुत कुछ दूर हो जायगा, लेकिन फिर भी उपचार की जरूरत रहेगी। इसलिए मैं फिर तीन दिन का उपवास कराऊँगा। इस उपवास में उसे पानी के सिवा और कुछ नहीं दिया जायगा। इसके बाद उसे फिर एक सप्ताह फल और तरकारी पर रखा जायगा और तब रोटी-भाजी का साधारण भोजन शुरू हो जायगा। आशा है कि इतने दिनों के फलाहार, शाकाहार और बीच बीच में तीन तीन दिनों के उपवास से रोगी तनदुरुस्त हो जायगा।

अगर कोई खारिश (खुजली-कलकल), दाद या एक्जिमा (एक प्रकार का जख्म जो चमडे पर फैलता है और कभी दब जाता है और कभी उभडता है) का रोगी हुआ तो उसे तरकारी न देकर सिर्फ फलों पर रखा जायगा। तरकारी में नमक मिलाना जरूरी सा हो जाता है पर जख्म वाले रोगी को नमक से परहेज करना चाहिए। ऐसे रोगी को फलाहार और बीच बीच के उपवास के साथ साथ एनीमा-प्रयोग इत्यादि के सहारे अच्छा किया जाता है।

अगर कोई ऐसा रोगी है, जिसका रोग जीर्ण है पर बीच बीच में उभडकर तीव्र हो जाता है और जिसका शरीर बहुत दुर्बल नहीं है तो इलाज के शुरू से ही उससे उपवास कराया जायगा।

उपवास से कुछ लोग बहुत डरते हैं, पर प्राकृतिक चिकित्सकों

का अनुभव बताता है कि जिन बीमारियों में दर्द, जलन और सूजन है, चाहे उनके नाम कुछ भी हों, उपवास और एनीमा से बढ़कर उनका कोई इलाज नहीं है। एक-दो दिन की ही इस तरह के उपचार से उनकी तकलीफ या तो बिल्कुल चली जाती है या बहुत कुछ कम हो जाती है। इसी तरह दमा, बवासीर, गठिया, रक्तचाप का बढ़ना (high blood-pressure) इत्यादि जीर्ण रोगों में भी उपवास या फलों के रस पीकर रहने से ही आश्चर्य-जनक लाभ होता है। इसलिए अचूक-चिकित्सा-विधि में उपवास एक बड़ा जोरदार अस्त्र है। फिर तीन दिन के छोटे उपवास से कुछ भी हानि नहीं हो सकती। उपवास में कुछ कमजोरी जरूर मालूम होती है, पर वह ऐसी नहीं है कि कुछ हानि पहुंचाये। बहुतों को यह कमजोरी सिर्फ सोचने के कारण होती है। जो समझदार हैं वे यह सोचते ही नहीं कि मैं कमजोर होता जा रहा हूँ। उपवास के बाद उचित भोजन से पहले से भी ज्यादा बल शरीर में आ जाता है। उपवास में एनीमा-द्वारा हर रोज पेट साफ करना बहुत जरूरी है।

फलाहार के संबंध में यह याद रखना चाहिए कि जहाँ तक हो सके मीठे और हल्के फल खाये जांय। किसी भी रोग के रोगी को केला और कटहल नहीं खाने चाहिए। केला बहुत अच्छा फल है, पर केले और रोटी में बहुत कम अन्तर है। हल्कापन और लाभ के विचार से रोगियों को दिये जानेवाले फलों का क्रम इस प्रकार हो सकता है—सन्तरा (नारंगी), मीठे नींबू और चको-

तरे इत्यादि, अनार, मको (रसभरी), टमाटर, अंगूर, अनन्नास, गन्ना, शरीफ़ा, सेव, नाशपाती, पपीता, शहतूत, फालसा, तरबूज़, ख़रबूज़ा, खीरा, ककड़ी, अमरूद, आम। किसी भी रोगी को चिकित्सा-काल में केला, कटहल नहीं दिये जायँगे और दस्त लगने की बीमारी वालों को जहाँ तक हो सकेगा रसदार फल ही दिये जायंगे।

फलों के रस के संबंध में यह याद रखना चाहिए कि जहाँ तक हो वे मीठे फल के रस हों।

(३) *बराबर ही भोजन में क्षार की अधिकता (ज्यादती) होनी चाहिए*—यह नियम बहुत ही जरूरी है। अगर इस नियम की पाबन्दी की जाय तो कभी रोग न हो और अगर रोग हो भी गया है तो वह अच्छा हो जाय। इस नियम को समझने के लिए यह जानना जरूरी है कि ख़ून में खारापन (क्षारता-alkalinity) और खटाई (अम्लता-acidity) दो विशेष गुण हैं। ख़ून के अंदर बहुत से पदार्थ हैं, पर साधारण ज्ञान वाले चिकित्सक का काम इतना ही समझने से चल जायगा कि ख़ून में खारापन और खटाई हैं और यह भी कि शरीर को निरोग और तनदुरुस्त रहने के लिए यह जरूरी है कि ऐसी ही चीजें खाई जांय जिनसे ख़ून में ८० फी सदी खारापन रहे और सिर्फ २० फी सदी खटाई की मात्रा हो। अगर कोई रोग हो जाय, चाहे वह मामूली सर-दर्द हो या प्लेग या टाइफ़ॉयड या पक्षाघात (फालिज) तो यह निश्चय है कि ख़ून में खटाई की मात्रा बढ़

गई है। इसलिए अगर भोजन-क्रम को सुधार कर खून के अन्दर के खारेपन और खटाई का अन्दाज ठीक कर दिया जाय तो रोग जाता रहेगा, और इसीलिए अगर रोज के भोजन में ऐसी ही चीजें ज्यादा खाई जाएँ, जिनमें खारेपन का गुण है तो न तो खून खराब होगा और न रोग होगा।

लोगों के दिलों में खेद पैदा करने वाली बात यह है कि जितने पकवान और मिठाई और मसालेदार तरकारियाँ और स्वादिष्ट (ज़ायक़ेदार) भोजन आजकल मिलते हैं वे सभी खटाई पैदा करने वाले हैं। सच पूछिए तो ये भोजन स्वादिष्ट नहीं हैं। हमारा स्वाद कुछ ऐसा अस्वाभाविक और बनावटी हो गया है कि हम उन्हीं भोजनों को पसन्द करते हैं जिनके गुण नष्ट कर दिये गये हैं।

एक बात और भी है। एक ही चीज क्षारमय और खटाई पैदा करने वाली दोनों हो सकती है। बिना छने आटे की रोटी खारापन रखती है, पर घी की बनी पूरी, पराठे या मैदे की बनी हुई कोई भी चीज खटाई पैदा करने वाली है। ऊख (ईख) के रस से तैयार गुड़ क्षारमय है पर उसी गुड़ से बनी हुई चीनी या मिश्री अम्ल-गुण वाली है। चीनी को तो सफ़ेद ज़हर समझना चाहिए। बच्चों के रोगों का खास कारण चीनी का इस्तेमाल है।

अब नीचे एक सूची दी जाती है कि कौन कौन पदार्थ क्षारमय हैं और कौन अम्ल :—

क्षारमय पदार्थ जिन से खून में खारापन आता है

(अ) सभी मीठे फल और ऐसे फल जो पक कर मीठे हो

फादर नीप
बवेरिया निवासी। जल-चिकित्सा और गीली दूब द्वारा चिकित्सा के प्रवर्तक

जाते हैं—नीबू, नारंगी, सन्तरा, चकोतरा और अनन्नास थोड़ा या ज्यादा खट्टे होते हुए भी क्षारमय हैं। लेकिन बेर, जो पकने पर भी कुछ कुछ खट्टा रह जाता है, क्षारमय नहीं है। किशमिश, मुनक्के, अंजीर, पिन-खजूर क्षारमय हैं।

(ब) सभी पत्तीदार भाजियाँ (सभी तरह के साग, करमकल्ला इत्यादि) और ऐसी फलदार हरी भाजियाँ जो जमीन के ऊपर होती हैं, जैसे लौकी, तरोई, नेनुआ, परवल, टिन्डे, सहजन इत्यादि। ताजे सेम, लोभिया (बोडा) क्षारमय हैं लेकिन कुछ कम। सभी कन्द भाजियाँ, जैसे आलू, खटाई वाली नहीं हैं पर भारी और देर से पचने वाली होती हैं। रोगी को ये भाजी नहीं देते। छिलकेदार आलू क्षारमय है, पर देर से पचता है।

शलजम और मूली के साथ उनकी पत्तियों को मिला कर तरकारी बनानी चाहिए। फूलगोभी (कोबी) बादी है, इसलिए रोगियों को नहीं देते। लौकी, तरोई, नेनुआ, इत्यादि के छिलके को फेंकना नहीं चाहिए। इन्हीं छिलकों में प्रकृति ने बहुत सी चीजें दी हैं, जो दवाई का काम करती हैं। आलू का छिलका कभी नहीं फेंकना चाहिए। जिन तरकारियों के छिलके कडे और कडुवे हों उन्हें फेंक सकते हैं। तरकारियों के छिलके में गुण है और उनसे पेट भी साफ होता है, लेकिन इस सबंध में याद रखने लायक एक बात यह है कि जिन्हें पतले दस्त आते हैं या आँव गिरती है उनको पहले बिना छिलके की बनी भाजी देंगे। इन रोगियों को छिलके से पेट में जलन सी होगी और दस्तों की मात्रा बढ जायगी, पेट

में दर्द भी हो सकता है। जब बँधे दस्त आने लगें तो फिर छिलकेदार भाजी शुरू करनी चाहिए।

(स) दूध और दूध से बने पदार्थ, घी-मक्खन क्षारमय जरूर हैं पर भारी होने के कारण रोगियों को नहीं दिये जाते। तन्दुरुस्ती की हालत में घी-मक्खन का व्यवहार अवश्य लाभदायक है।

दही या मठा, जो खट्टा नहीं हुआ है, अच्छा क्षारमय पदार्थ है।

मठा एक बहुत उत्तम पदार्थ है। उसमें दूध के सभी गुण रह जाते हैं, पर मक्खन नहीं रहने से दूध का भारीपन उसमें नहीं रहता। इसके अलावा जब दूध का दही जमता है तो उसमें एक खटाई, लैक्टिक एसिड (lactic acid), आ जाती है, जो पेट के लिए अच्छा है। यह खटाई मठे में रहती है। सभी जीर्ण रोगों में, पुरानी खाँसी और दमे में भी मठे का इस्तेमाल कर सकते हैं। मठा बहुत खट्टा नहीं होना चाहिए। उसमें मक्खन बिल्कुल न हो और मठे दही गाय के दूध से बना हो। एक दमा के रोगी और एक दूसरे गठिया के रोगी को मैंने पहले तीन दिन का उपवास कराया, फिर उनको दिन में चार बार मठा पिला पिला कर रखा। दो महीने में दोनों के रोग जड़ से जाते रहे। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन रोगियों को पहले कुछ दिनों तक बराबर और फिर अक्सर एनीमा दिया जाता था, जिससे वर्षों का इकट्ठा पेट का विकार बाहर निकल

गया। मठा पीकर रहने से शरीर का बल भी बना रहा और पाचन-क्रिया भी ऐसी हल्की रही कि शरीर भोजन के पचाने से बची हुई अपनी बहुत-सी शक्तियों को अपनी सफ़ाई और मरम्मत मे लगा सका।

(द) ऐसा आटा, जिसका चोकर नहीं निकाला गया है, और ऐसे चावल, जिनकी ऊपर की भूसी (कन) नहीं निकाली गई है—आटे के चोकर और चावलों की लाल-पीली ऊपर वाली तह में बहुत तरह के प्राकृतिक लवण (नमक) रहते हैं, लेकिन इनको हम निकालकर आटे और चावल के गुण को खराब कर देते हैं।

अक्सर लोग आटे मे चोकर मिला देते हैं या सिर्फ़ चोकर की ही रोटी बनाते हैं। यह भी ठीक नहीं है। गेहूँ जैसा भी प्रकृति से बनाया गया है हमारे काम के लिए ठीक है। न हम उस में से कुछ निकाल सकते हैं और न ऊपर से कुछ डाल सकते हैं। सफ़ेद चावलो के कारण इन दिनों बहुत से रोग फैल रहे हैं। 'बेरी-बेरी' रोग से सभी लोग परिचित हैं। इसका ख़ास कारण सफ़ेद चावल और बिना चोकर वाले आटे का व्यवहार है।

चावल गुण में आटे से थोड़ा ही कम है, अगर चावल का पानी माड़ के रूप में न निकाला जाय। माड़ फेंकने से चावलों के सभी गुण निकल जाते हैं। चावल को उतनी आसानी से नहीं चबाया जा सकता जितनी आसानी से रोटी चबाई जाती है, और

बिना अच्छी तरह चबाया हुआ पदार्थ ठीक ठीक नहीं पचता—चावलों के साथ यही खास कठिनाई (दिक्कत) है।

(प) छिलके सहित (साबुत) दाल। दाल प्रोटीन अर्थात् मांस बढ़ाने वाला पदार्थ है। इसका इस्तेमाल तभी तक जरूरी है जब तक शरीर में मांस बनता है और बढ़ता है। तीस साल से अधिक उम्र वालों को दाल का इस्तेमाल कम कर देना चाहिए। पचास साल लगते लगते दाल बिलकुल छोड़ देनी चाहिए।

दाल छिलके के साथ और गाढ़ी बनी हो। रोटी या चावल के साथ सिर्फ उतनी ही ली जाय जितनी से दाल खाने का आनन्द और लाभ मिल जाय पर पेट में कीचड़ न इकट्ठा हो। कीचड़ पर पेट के अन्दर से निकले हुए पचाने वाले रसों का असर (प्रभाव) नहीं हो पाता।

जीर्ण (पुराने) रोगों की चिकित्सा करते समय दाल बिल्कुल नहीं दी जाती। सिर्फ रोटी-भाजी या रोटी या भाजी खिलाते हैं। मैं अक्सर अपने मरीजों को सिर्फ रोटी खाकर रहने के लिए कहता हूँ। जहाँ भाजी बिल्कुल नहीं मिलती वहाँ ऐसा करना जरूरी होता है। मरीज घबराते और पूछते हैं कि रोटी किस चीज के साथ खाऊँ। उन्हें बताना पड़ता है कि तन-दुरुस्ती हासिल करने के लिए अगर पहले कुछ दिनों तक अकेली रोटी अच्छी न लगे तो भी उसे चबा-चबा कर खा जाओ। एक-दो दिन में ही अकेली रोटी का स्वाद मिलने लगता है।

(न) गुड़ और शहद । जब गुड़ मामूली तौर से साफ

किया जाता है, यानी जब उसके गुणदायक पदार्थ उससे अलग कर दिये जाते हैं, तब देसी चीनी बनती है। और जब यह देसी चीनी और भी साफ़ की जाती है तो देखने में बढ़िया लेकिन बहुत नुक़सान करने वाली वलायती चीनी बनती है। दोनों ख़राब हैं।

शहद बहुत अच्छी चीज़ है। इसकी चीनी प्राकृतिक और तुरन्त शरीर में खप जाने वाली होती है। लेकिन शहद शुद्ध हो।

अम्ल पदार्थ, जिनमें खून में खटाई आती है

(अ) मांस, मछली, अंडे। अंडे के बारे में कुछ लोगों का कहना है कि उसकी सफेदी में खटाई है और ज़र्दी में खारापन।

इन दिनों अंडे खाने का रिवाज बहुत बढ़ गया है। मांसाहार के पदार्थों में अंडा सब से अच्छा ज़रूर है, लेकिन, जैसा कि पढ़े-लिखे समाज में समझा जाने लगा है, वह स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य (लाज़मी) नहीं है। इसमें कोई शक नहीं कि कुछ हालतों में अंडा बड़े काम का साबित होता है। कच्चे या आधे उबले अंडे की ज़र्दी बहुत जल्द पचती और ताक़त पैदा करती है। इसलिए अंडा कच्चा या आधा उबला खाना चाहिए। सख़्त हो जाने से बहुत देर में पचता है और बहुत से विकार पैदा करता है।

अगर अंडा खाना ही हो तो सबसे अच्छा ढंग यह है—कच्चे अंडे की ज़र्दी (पीले हिस्से) को नींबू या नारंगी के रस के साथ अच्छी तरह मिलाइए और फिर उसमें थोड़ा शहद

मिलाकर पी जाइए। ऊपर से थोड़ा सा कच्चा या एक उफान का दूध पी जाइए।

मांस हानिकारक इसलिए है कि जानवर के शरीर के बहुत से टूटे फूटे रग-रेशे, खून के विकार और जहरीले पदार्थ उसमें रह जाते हैं। जिस समय जानवर मारे जाते हैं उस समय मरने के डर से भी उनके खून में जहर पैदा हो जाता है। इन सब बातों से आगे चलकर मांस खाने वाले को बहुत खराबी होती है। यूरप-अमरीका में भी मांसाहार का रिवाज बहुत कम हो रहा है। यदि मांस खाना ही हो तो पहले उसे खौलते पानी में आध घंटे तक उबालकर पानी में निकले विकार को फेंक देना चाहिए और तब मांस को घी मसाले देकर तैयार करना चाहिए। मांस का सूप (रस), जिसे डाक्टर बहुत देते हैं, जहरों से भरा रहता है। इससे पहले ताक़त मिलती है, लेकिन पीछे जहरों के इकट्ठा होने से खराबी होती है। सच पूछिए तो मांस, मछली खाने की चीजें नहीं हैं।

(ब) मैदा और मैदा या आटा या बेसन के घी या तेल में बने पक्वान—पूरी, कचौरी, मालपुआ, हलवा, मिठाई, पकौड़ी इत्यादि।

(स) बिना छिलके की दाल। मटर, सेम, लोभिया (बोड़ा), सूख जाने पर।

(द) ऐसे फल जो पकने पर भी खट्टे ही रह जाते हैं। दूसरी खटाई, अचार, चटनी।

(प) बादाम, अखरोट, चिलगोजा, काजू, मूंगफली, पिस्ता।

(म) सफेद चीनी, मिश्री।

(न) शराब, चाय, कहवा (काफी) इत्यादि।

× × × ×

ऊपर की सूची से समझ में आ जायगा कि खाने की कौन कौन चीजें खारापन पैदा करती हैं और कौन कौन खटाई पैदा करती हैं, पर इसके संबंध में कुछ और बातें जाननी चाहिए और वह नीचे दी जाती हैं :—

(अ) नये (तीव्र) रोग में, जिसमें दर्द, जलन और सूजन से शरीर में कष्ट हो, किसी प्रकार का भोजन न देना चाहिए। गरम या ठंडे जल में नीबू का रस सभी हालतों में इस्तेमाल कर सकते हैं। इससे लाभ होता है। कुछ हालतों में, जैसा कि ऊपर बताया गया है, सन्तरे इत्यादि का रस भी पानी में मिलाकर या वैसे ही दे सकते हैं।*

(ब) जीर्ण रोगों में, जिनमें रोगी की पचाने की शक्ति बहुत खराब नहीं हुई है, रसदार फल और पत्तीदार भाजियों के इस्तेमाल से रोग को जल्दी निकल जाने का मौक़ा मिलता है।

ऐसे जीर्ण रोगों में, जिनमें रोगी की पचाने की ताक़त बहुत कमज़ोर पड़ गई है, सिर्फ फलों या तरकारी का रस (सूप) तीन

* उपवास के समय एनीमा-द्वारा पेट साफ़ करना जरूरी है। सौ में ६० से ज़्यादा नये रोग दो-तीन या बहुत बहुत तो चार दिन के उपवास और एनीमा से ही भाग जायँगे।

तीन चार-चार घंटे पर देना चाहिए। फलों के रस के बारे में ऊपर बताया गया है कि सन्तरा, मीठा नींबू, अनार, सेब, नाशपाती, अंगूर, अनन्नास, टमाटर इत्यादि के रस निकाले जा सकते हैं। ये फल अगर न मिलें तो गरम पानी में किशमिश भिगोकर और फिर उसका रस निचोड़कर काम में ला सकते हैं। खोपरे (नारियल की गिरी) का पानी भी बहुत लाभदायक होता है। सभी भाजी और तरकारियों के सूप (रस) तैयार किये जा सकते हैं, पर रोगियों के लिए टमाटर, करमकल्ला, परवल, नेनुआ, तरोई, भिंडी (रामतरोई), पालक, बथुआ, लौकी में से किसी दो-तीन को मिलाकर रस (सूप) तैयार करना अच्छा होता है। क़रीब-क़रीब सेर भर भाजियों को पतला पतला काटकर उसमें बहुत थोड़ा (आध पाव) पानी देकर आग पर चढ़ा दो। आँच धीमी रहे और बर्तन का मुँह ढका रहे। पानी खुद निकलेगा। घंटे भर बाद बर्तन को उतार कर चमचे से तरकारी को खूब चलाओ और साफ़ कपड़े में छानकर सूप निकाल लो। इस सूप में थोड़ा नमक और चार-छः बूँद नीबू के रस को, यदि इच्छा हो तो, मिला सकते हैं। फलों के रस और भाजियों के सूप पेट भरते हैं और साथ ही दवा का काम भी करते हैं। फल और भाजियों में प्रकृति (कुदरत) ने वह गुण रख छोड़े हैं, जिनसे खून साफ़ होता है और दूसरे बहुत से लाभ होते हैं।*

---

* फलाहार या रसाहार के समय एनीमा ज़रूर लेना चाहिए। मामूली सारे रोग तीन चार हफ़्ते के फलाहार और एनीमा-प्रयोग में ही निश्चय जाते रहते हैं।

कमजोरी की हालत में रसाहार के साथ साथ एक छोटे चमचे भर शहद भी दिन में दो-तीन बार लेना चाहिए। शहद से ताक़त बनी रहती है।

(स) उपवास या रसाहार के बाद बहुत धीरे धीरे रोटी भाजी पर आना चाहिए। उपवास के बाद एक दो दिन चार बार रस पीकर ही रहना चाहिए। फिर तीसरे दिन दो बार रस लेना चाहिए और एक बार कोई पत्तीदार भाजी या हल्का फल, थोड़ी मात्रा में। चौथे और पाँचवे दिन एक बार (लगभग आठ बजे सुबह में) रस या मठा या दूध और (लगभग २ बजे दिन और सात बजे शाम को) दो बार हल्की भाजी या हल्का फल। छटे दिन एक भोजन में बिना छने आटे की एक छोटी चपाती या बिना छटे चावलों का थोड़ा सा भात। सातवें दिन दोनों बार रोटी या चावल—इसी तरह उपवास के बाद धीरे धीरे साधारण रोटी-भाजी पर आना चाहिए। दाल का व्यवहार दसवें बारहवें दिन से शुरू करना चाहिए। दाल गाढ़ी और छिलके के साथ यानी पूरे दाने की हो और बहुत थोड़ी हो। पहले मूंग, तब दो-तीन दिनों के बाद मसूर और सात आठ दिनों के बाद उड़द या अरहर, इस क्रम से दाल खानी चाहिए।

इसी तरह फलाहार के बाद रोटी-भाजी शुरू करने में जल्दी-बाजी नहीं करनी चाहिए।

(द) तन्दुरुस्ती की हालत में, चिकित्सा के समय नहीं, प्रत्येक दिन के भोजन में क्षारमय पदार्थ की मात्रा तीन-चौथाई से

भी अधिक हो। खटाई पैदा करनेवाले पदार्थ एक-चौथाई से ः
कम हों। नमूने के लिए एक साधारण तनदुरुस्त आदमी के
जो कचहरी मे काम करता है या स्कूल-कालेज मे पढ़ने जाना
इस प्रकार खाना चाहिए—

सुबह्–नाश्ता, भरसक कुछ नहीं। रात भर पेट खा
भोजन के पचाने में लगा रहता है, इसलिए सबेरे पेट को
आराम देना चाहिए। हाँ, एक बात की जा सकती है। रात को
एक डेढ़-छटांक साफ और धुले किशमिश पाव-डेढ़ पाव पानी मे
छोड़ दिया जाय और उसी समय उसमे आधे नीबू का रस
निचोड़ दिया जाय। शीशे के बर्त्तन मे ऐसा करना ठीक होगा
सुबह मे इस पानी को एक चमचे से अच्छी तरह चलाकर और
पानी को दूसरे बर्त्तन में निकाल कर उसे पी सकते हैं। किशमिश
९ बजे खाते समय खा सकते हैं। यह रस बड़ा लाभदायक है।
यह खून साफ करता है, कब्ज को दूर करने में मदद पहुँचाता है,
पुष्टिकारक है और तबीयत में ताजगी लाता है। इस रस को हर
हालत में पी सकते हैं।

सुबह मे भरपेट नाश्ते का रिवाज बहुत बुरा और रोगों का
उत्पादक है। हाँ, अगर भोजन देर से—११ और १२ बजे दिन के
बीच—मिलता हो तो सुबह में दूध या मठा या कोई ताजा फल
या किशमिश थोड़ी मात्रा मे ले सकते हैं। लेकिन इस हालत मे
फिर तीसरे पहर नाश्ता नहीं करना चाहिए।

लगभग ९ बजे सुबह–*पहला हिस्सा–टमाटर,* गाजर,

खीरा, ककड़ी, पतली मूली, मूली की पत्ती, करमकल्ले की पत्ती, धनिया की पत्ती, लेटिस (सलाद) की पत्ती, चने का साग, प्याज और प्याज की पत्ती—इनमें से किसी तीन या चार का, जिनमें एक पत्तीदार पदार्थ हो, कच्चा साग, जिसे अंगरेजी में 'सलाद' कहते हैं। इन कच्ची भाजियों को अच्छी तरह सज कर सलाद बनाना चाहिए। इसके बारे में आगे बताया जायगा। *सारे भोजन में इस सलाद की मात्रा कम से कम एक तिहाई जरूर होनी चाहिए।* यह सलाद बहुत अच्छी चीज है। इससे खून में चार का आधिक्य होता है और पाखाना साफ होता है। सलाद में यदि इच्छा हो तो नमक और *बहुत थोड़ी मात्रा में* हरी मिर्चें, नींबू का रस या थोड़ा मक्खन या तिल्ली या जैतून या सरसों का तेल (सिर्फ चार-छः बूंद) डाल सकते हैं। उसमें खोपरे (नारियल की गिरी) के कुछ पतले टुकड़े भी ऊपर से छोड़ सकते हैं।

अगर सलाद बनाने के लिए दो-तीन चीज न मिले तो कम से कम एक प्रकार का ताजा फल या कच्ची भाजी, जैसे टमाटर या खीरा या ककड़ी या करमकल्ले की पत्ती या मूली और मूली की पत्ती या अमरूद का इस्तेमाल करना चाहिए। कुछ न मिले तो थोड़ी-सी तुलसी या बेल की पत्ती चबा कर खा जाना चाहिए। भाजी के सलाद के बदले किसी किसी दिन फलों के सलाद (जैसे अमरूद, केला, संतरा, सेब, नाशपाती, मकोइ इत्यादि में से किसी दो-तीन के टुकड़ों को मिलाकर) दही या मलाई या क्रीम के साथ ले सकते हैं।

कच्ची सब्ज़ी या ताज़े फल ज़रूर खाना चाहिए। कारण यह है कि आग पर भोजन पकाने से साग-सब्ज़ियों के बहुत से गुण नष्ट हो जाते हैं। कच्ची सब्ज़ी या ताज़े फलों से भोजन का सच्चा लाभ मिलता है। अक्सर लोग पेट भरने पर फल खाते हैं। इसका नतीजा भी बुरा होता है।

दूसरा हिस्सा—रोटी या चावल या आलू या आलू-फूल-गोभी और एक पत्तीदार भाजी या लौकी या परवल या नेनुआ या तरोई या भिंडी (राम तरोई) या सहजन (मुनगा) या पत्ती के साथ शलजम की तरकारी, जिसमें बहुत मिर्च-मसाले न हों और जो हल्की आँच पर पकाई गई हो। बहुत थोड़ी सी सावुत दाल। *भोजन के इस हिस्से की मात्रा अधिक न हो।*

पाठक ताज्जुब करते होंगे कि मैंने रोटी या चावलों के साथ आलू या आलू-गोभी का व्यवहार मना किया है। इसका कारण यह है कि इन पदार्थों में श्वेतसार (सफ़ेदी) प्रधान है। श्वेतसार की ज़्यादती से पाख़ाना साफ़ नहीं होता और बहुत सी ख़राबियाँ पैदा होती हैं।

तीसरा हिस्सा—मुँह मीठा करने के लिए दो-तीन पिन खजूर या अंजीर या कुछ मुनक्के या थोड़ा गुड़ या शहद या दही-गुड़।

लगभग १२ बजे दोपहर—पानी, मट्ठा या नींबू के रस के साथ। खाने के साथ पानी पीना ठीक नहीं है।

लगभग ३-३० बजे दिन—कच्चा या एक उफान का औटा दूध और शहद या गुड़, या एक प्रकार का कोई ताज़ा फल, या

मठा और शहद या गुड़, या तरकारी या सूप (रस) या किसी फल का रस, या फल और दूध या मठा—अपनी शक्ति के अनुसार (मुताबिक)।

लगभग ७-३० बजे रात—एक प्रकार का ताजा फल और दूध ; या एक प्रकार की पकी भाजी और एक प्रकार का फल ; या फल या भाजी और कुछ मूंगफली या बादाम या पिश्ता या नारियल की गिरी , या एक दो रोटी और एक प्रकार की पत्तीदार भाजी—इनमें से किसी एक प्रकार का भोजन खाना चाहिए। मुँह मीठा करने के लिए बहुत थोड़ा गुड़ या शहद।

लगभग ९-३० बजे रात या दूसरे दिन बड़े सवेरे या सो जाने पर रात में जब नींद खुले—पानी।

रात में सोते समय दूध पीने की प्रथा बहुत हानिकारक है। कुछ ही देर पहले खाया हुआ भोजन पचने भी नहीं पाता और ऊपर से हम लोग दूध पी लेते हैं। ऐसा करने से आगे चल कर किसी न किसी तरह का अपच जरूर होता है।

ऊपर बताये क्रम के अनुसार (मुताबिक) अगर तनदुरुस्त आदमी अन्दाज का खयाल रखता हुआ भोजन करेगा तो वह कभी बीमार न होगा—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

ऊपर के भोजन क्रम में अपनी अपनी जरूरत और अवस्था के खयाल से कुछ हेर-फेर किया जा सकता है। यदि सुबह कुछ खाना ही हो तो कुछ हल्का फल या शहद के साथ पाव भर दूध लिया जा सकता है, लेकिन इस नाश्ते और अगले खाने के बीच

कम से कम तीन घंटे का अन्तर जरूर होना चाहिए। अच्छा है कि ९ बजे तक कुछ न खाया जाय। बिना भूख के खाया हुआ अमृत भी विष का काम करता है और बहुतों को सबेरे भूख लगती ही नहीं। नाश्ते में अन्न की चीजें खाना रोगों को न्योता देना है।

तो क्या पकवान, मिठाई इत्यादि पदार्थ कभी न खाये जायँ ? सच पूछिए तो यह चीजें आदमियों के खाने की नहीं हैं। इन्हें सिर्फ देवताओं को दिखा सकते हैं। पर अगर जी न माने तो जब कभी दिन के भोजन के साथ घर की बनी एक-दो अच्छी मिठाई खाई जा सकती है। लेकिन सब मिला कर भोजन की मात्रा ज्यादा न हो। दावत के समय इन्हें अन्दाज से खा सकते हैं। इनके खाने के दूसरे दिन उपवास करना या कम से कम सिर्फ फल या साग भाजी खाकर रहना अच्छा है। इन्हीं पकवान और मिठाइयों के कारण हम बार बार बीमार होते हैं और अपनी शक्ति, समय और रुपये बर्बाद (नष्ट) करते हैं। फिर महज जीभ के क्षणिक आनन्द के लिए इनके खाने से क्या लाभ ?

कुछ लोग कहेंगे कि ऊपर बताये ढंग से भोजन करने का क्रम बता कर मैंने जीवन के सारे आनन्द छीन लिये। उनसे मैं कहूँगा कि वे खुद ही सोचें—सभी तरह के खाने खाते हुए बीमार रहना वे पसंद करेंगे या परहेज से खाते हुए बहुत दिनों तक निरोग और हट्टा-कट्टा बना रहना ? अपने देश में जो लोग सिर्फ दो समय रोटी, दाल या भाजी या सिर्फ रोटी खाते हैं वे कैसे

तगड़े बने रहते हैं ! बीमार तो वे ही होते हैं जो अपने भोजनों पर बहुत रुपये खर्च करते हैं ।

इन दिनों यूरप-अमेरिका में जो भोजन-सुधार चला है वह बड़े मार्के का है । उसके अनुसार लोग इस तरह खाते हैं :—

लगभग ८ बजे सुबह—ताजे फल और दूध ।

लगभग १२-३० बजे दिन—कच्ची सब्जियों का सलाद, काफी मात्रा में; चोकरदार आटे की डबल रोटी और मक्खन ।

लगभग ७ बजे शाम—पकी भाजी और गोश्त, मछली और अंडे में से कोई एक चीज । जो मांसाहारी नहीं हैं वे बादाम इत्यादि खाते हैं ।

इस तरह के भोजन में श्वेतसार, प्रोटीन, चर्बी, विटामीन और प्राकृतिक लवण* सभी कुछ मिलते हैं । अपने देश में काम करने के समय कुछ ऐसे ऊट-पटांग हैं कि यह क्रम नहीं चल सकता । इसलिए मैंने ९ बजे सुबह, ३-३० बजे तीसरे पहर और ७-३० बजे शाम के समय रखे हैं ।

(२) *खाना खाने और पानी पीने के समय अलग अलग होने चाहिए*—भोजन के साथ पानी या कोई भी रसदार पदार्थ पीने से पेट में कीचड़ सा बन जाता है । इस कीचड़ पर पेट के अन्दर निकलने वाले पाचक रसों का असर (प्रभाव) पूरा पूरा नहीं पड़ता, जिससे बदहज़मी (अनपच), कब्ज और बहुत सी और बीमारियाँ धीरे धीरे होती हैं । इसी नियम के अनुसार

* इन पदार्थों के बारे में आगे बताया जायगा ।

(मुताबिक) भोजन के साथ दूध, रसादार तरकारी, पतली दाल, मठा इत्यादि खाना अच्छा नहीं है। खीर भी स्वास्थ्य-प्रद भोजन नहीं है। दूध अगर किसी पदार्थ के साथ लिया जा सकता है तो केवल फलों के साथ।

भोजन के कम से कम दो घंटे बाद पानी पीना चाहिए। जानवर भी अपने खाने और पानी पीने के समय अलग अलग रखते हैं। थोड़े अभ्यास से ही आप भोजन के समय पानी पीना बंद कर सकते हैं। अगर भोजन में मिर्च-मसाले या तेल की ज्यादती नहीं है और आप उसे अच्छी तरह चबाते हैं तो आप खुद ही खाने के समय पानी पीना न चाहेंगे। जब तक आदत न पड़ जाय तसल्ली के लिए खाने के समय दो-तीन घूंट पानी चूस सकते हैं।

बहुत सबेरे कुल्ला करने के बाद पानी पीने की आदत बहुत अच्छी है। यदि पाँच बजे सुबह को चारपाई छोड़ते हों तो चार बजे पानी पीकर एक घंटे तक फिर लेटे रहना या सो जाना और भी अच्छा है। सुबह के नियमित जलपान से आदमी बहुत सी बीमारियों से बच सकता है।

पानी बिना औटा हुआ ही पीना चाहिए। हाँ, यदि जाड़ों में पानी बहुत ठंढा हो तो उसे जरा गुनगुना कर लेना चाहिए। या यदि सन्देह हो कि पानी विकार-युक्त है तो उसे अच्छी तरह उबालकर छान लो और फिर ठंढा करके पिओ।

बहुत लोग बताते हैं कि खूब पानी पिओ। यह भूल है। जिस

तरह बिना भूख के भोजन करना ठीक नहीं उसी तरह बिना प्यास के पानी पीना ठीक नहीं। पानी भी उसी तरह पचता है जिस तरह कि भोजन, पर पानी के पचने में बहुत कम समय लगता है।

(५) *खाई हुई चीज के हलक (गले) के नीचे उतारने से पहले उसे खूब चबा लेना चाहिए*—जब तक एक ग्रास (लुक़्मा) लेई की तरह न हो जाय दूसरा ग्रास न लेना चाहिए। दाँत इसीलिए दिये गये हैं कि भोजन अच्छी तरह चबाया जाय, जिससे पचाने वाले रस उस पर अच्छा काम कर सकें। पेट में दाँत नहीं है, इसलिए यदि मुँह मे भोजन न चबाया गया तो वह पेट के अन्दर लोदे की तरह पड़ा रहेगा। भोजन चबाते समय होंठों को बन्द रखना चाहिए और चबाने का काम मजबूती के साथ या धीरे धीरे करना चाहिए।

दूध, मठा और पानी को भी चूसने की तरह धीरे धीरे (बिना मुँह से आवाज निकाले) पीना चाहिए।

(६) *बिना भूख के कभी नहीं और कुछ नहीं खाना चाहिए*—भोजन शरीर की अच्छाई के लिए किया जाता है और शरीर अपनी जरूरत को भूख के रूप में प्रकट करता है। अगर भूख न लगी तो समझना चाहिए कि शरीर को भोजन की जरूरत नहीं, ऐसी हालत में यदि भोजन का समय हो भी गया हो तो न खाना चाहिए। अगले खाने के समय तक सच्ची भूख लग जायगी और तभी आप लाभ के साथ खा सकते हैं।

बहुतों को झूठी भूख लगती है। अगर पेट में कुलबुली मचे,

भूख लगकर तुरन्त बुझ जाय और भूख की हालत में कमजोरी या घबराहट या गुस्सा मालूम हो तो समझना चाहिए कि अच्छी भूख नहीं लगी है। सच्ची भूख में पेट में खाली-पन नहीं मालूम होता, लेकिन फिर भी खाने की जोरदार इच्छा होती है, तबीयत में ताजगी बनी रहती है और सच्ची भूख बहुत देर तक बनी रहती है। झूठी भूख में सिर्फ पानी (सादा या नीबू के रस के साथ) पीजिए। इससे लाभ होगा।

(७) *खाद्य-पदार्थ के विविध विभागों को जानिए और समझिए। फिर भी याद रखिए कि हर रोज के भोजन में ८० फी सदी ऐसे पदार्थ हों जो क्षारमय हैं*—खाद्य-पदार्थ के विविध विभाग यों हैं :—

(अ) <u>श्वेतसार</u>, जिससे शरीर में गर्मी और फुर्ती आती है—गेहूँ, चावल, गुड़, चीनी, फलों की मिठास और ऐसी सभी चीजें जिनके चबाने से सफेद लेई सी बनती है और स्वाद में कुछ मिठास आ जाती है। आलू, घुइयाँ, (अरवी, पेकची), कन्दा (कन्द), सूरन (ओल, जिमींकन्द) और केले की गणना भी इसी में है। इनमें कुछ चीजें क्षारमय भी हैं, पर अनियमित रूप से खाये जाने पर यह सभी खटाई पैदा करती हैं।

(ब) <u>प्रोटीन</u>, जिससे मांस बढ़ता है और फुर्ती और ताकत भी आती है—मांस, मछली, अंडा, दूध, दलहन, सेम, लोबिया और सूखे मेवों में बादाम, काजू, पिस्ता इत्यादि। इनमें

बिना उबाले दूध और छिलकेदार दालों को छोड सभी खटाई पैदा करने वाले हैं। औटे हुए दूध से भी खटाई पैदा होती है।

दूध कच्चा या बहुत हुआ तो एक उफान का पीना चाहिए। धूप में घूम घूमकर घास चरने वाली तनदुरुस्त गाय का कच्चा दूध पीने से कुछ भी हानि नहीं हो सकती। इन दिनो जो दूध मे कीड़ों (जर्म्स) का डर बताया जाता है वह योंही है। गर्मी मे भी कच्चे दूध के बर्त्तन को पतले कपड़े से छिपाकर एक बडे पानी से भरे बर्त्तन के बीच हवा मे रखने से कच्चा दूध खराब नहीं होता। दूध गाय या बकरी का ही पीना चाहिए। अगर शुद्ध दूध न मिले तो दूध न पीना अच्छा है।

(स) चिकनई, जिससे शरीर में फुर्ती और गरमी आती है और चेहरा इत्यादि गड्ढे वाले स्थान भरे-पूरे मालूम होते हैं। चिकनई से शरीर के जोड़ों को फायदा पहुँचता है और चमड़ा चिकना और सुन्दर मालूम होता है—घी, तेल, खोपरा (नारियल, गोला) बादाम और मूगफली का कुछ हिस्सा। अगर यह पदार्थ अन्दाज से खाये जायँ तो खून में खारापन (क्षार) आता है। लेकिन घी में बना हुआ आटे का पकवान खटाई पैदा करने वाला है। घी को दाल और तरकारी के साथ अन्दाज से खाना चाहिए। बुरे घी से शुद्ध तेल अच्छा है।

चिकित्सा के समय रोगियो को घी-तेल से, जितना हो सके, बचना चाहिए।

(द) विटामीन और खनिज लवण (कुदरती नमक),

जिनसे खून साफ होता है और रोगों से बचने की शक्ति मिलत है—पत्तीदार शाक-भाजी, ताजे और सूखे फल। यह सभी चा बढ़ाने वाले हैं।

विटामीन कई प्रकार के हैं। इनमें से बहुत से आग की आँच से नष्ट हो जाते हैं। इसीलिए भोजन के साथ कच्चे साग औ ताजे पके फलों का आधिक्य होना चाहिए।

साग-भाजी के पकाने में हलकी आँच से काम लेना चाहिए और बर्त्तन का मुँह ढक देना चाहिए। इकमिक (या और किसी) कुकर में पका भोजन तनदुरुस्ती के लिए अच्छा है, क्योंकि उस मे भाप से भोजन तैयार होता है और कोई भी पदार्थ नष्ट नहीं होता। उबालकर उनका पानी फेंकना नहीं चाहिए। बहुत मसालें से भी तरकारियों के प्राकृतिक गुण नष्ट हो जाते हैं। तनदुरुस्ती की हालत मे थोड़ी हल्दी, धनिया और जीरा के व्यवहार से खराबी न होगी, पर चिकित्सा के दिनों में सिर्फ जीरा ही काम में लाना चाहिए। काली मिर्च से हरी मिर्च अच्छी है। दोनों में खराबी है, पर हरी मिर्च में विटामीन और खनिज लवण की मात्राएँ अधिक हैं। स्वस्थावस्था मे बहुत थोड़ी मात्रा में हरी मिर्च ले सकते हैं। कोई भी मिर्च न लेना अच्छा है।

प्याज में बहुत गुण और कुछ अवगुण हैं। अगर कोई धार्मिक विचार न रोकता हो तो थोड़ी मात्रा मे प्याज खाना (तनदुरुस्ती की हालत में) अच्छा है। हरे प्याज की पत्तियों की भाजी, कच्ची या पक्की, बहुत लाभदायक है।

(न) जल—जल भोजन को पचाता है, शरीर से विकार निकालता है, खून को साफ रखता है और शरीर को अधिक गर्म होने से बचाता है।

ऊपर की सूची से खाद्य-पदार्थ के सभी विभाग मालूम हो जायँगे और पहले बताये गये भोजन के नियमों से यह मालूम हो जायगा कि किन किन चीजों को किस तरह खाने से खून में क्षार की मात्रा काफी रहेगी, जिससे रोग न होंगे और पहले से हुए रोग भी दूर हो जायँगे। यह क्षार और खटाई की बात अभी हाल में ही निकली है। प्रयोग से यह बहुत सच्ची साबित हो चुकी है। बहुत से पुराने आहार-शास्त्रियों को इसकी खबर नहीं है।

भोजन की मात्रा का खयाल जरूर रखना चाहिए। एक बार इतना ही भोजन करना चाहिए कि पेट कसा हुआ न मालूम हो।

(८) कुछ प्रचलित खाद्य-पदार्थों से बचना चाहिए

डबल रोटी (पाव रोटी), बिस्कुट, केक और अंगरेजी मिठाइयों और पकवानों को न खाना चाहिए। इनका रिवाज आजकल बहुत बढ़ गया है। डाक्टर और अन्य वैद्य-हकीम भी डबल रोटी और बिस्कुट अपने रोगियों को देते हैं। यह चीजें हल्की जरूर हैं, पर न मालूम कब की और किस तरह बनी होती हैं। फिर मैदे या सूजी की बनी होने के कारण पेट में चिपकती हैं और कब्ज पैदा करती है। खाद्य-पदार्थ को तो ऐसा होना चाहिए कि जल्दी पच जाय और रुखड़ापन के कारण मल-बाधक भी न

हो। फलों, साग-सब्जियों, बिना छने आटे की रोटी और छिलकेदार दालों में यह गुण मौजूद हैं। अमरूद, सेब और नाशपाती जैसे फलों को, जिनके छिलके मुलायम है, बिना छीले ही खाना चाहिए। डबल रोटी और बिस्कुट का रिवाज अब विलायत में कम हो रहा है, पर विलायत की दुम हिन्दुस्तान में वहाँ की छोड़ी हुई चीजें भी बहुत दिनों तक जारी रहती हैं।

साबूदाना (सागूदाना) और बार्ली के पथ्य में कुछ तत्व नहीं है। बार्ली तो किसी कदर अच्छी भी है, पर साबूदाना तो किसी काम का नहीं है। प्राकृतिक चिकित्सा में पहला पथ्य फलों के रस या तरकारियों के सूप से, दूसरा पथ्य हल्के रसदार फल और पत्तीदार भाजियों से और तीसरा पथ्य रोटी-भाजी या दलिया-भाजी से दिया जाता है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, फलों के रस और तरकारी के सूप पेट भी भरते हैं और साथ ही साथ दवा का भी काम करते हैं।

अगर पतले दस्तों की बीमारी हो तो बार्ली का पानी नमक या शहद के साथ ३-३ या ४-४ घंटे पर पिला सकते हैं।

आज कल टिन के डिब्बों में बन्द बहुत से बे-मौसम के फल मिलते हैं। इसी तरह शर्बतों की बोतलें भी मिलती हैं। अंगरेजी पढ़े-लिखे शौकीन साहबान इन फलों और शर्बतों को बड़े चाव से खाते-पीते हैं। इनके प्राकृतिक गुण सभी नष्ट हो जाते हैं और इनमें चीनी की मात्रा अधिक रहती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इनका इस्तेमाल नहीं करना चाहिए।

(९) भोजन पचाने के भार से कभी कभी पेट को छुट्टी देना चाहिए—कहने का तात्पर्य है कि तनदुरुस्ती बनाये रखने के लिए कभी कभी उपवास करना जरूरी है। पेट ही शरीर के अन्दर का इंजन है। उसे कभी छुट्टी नहीं मिलती। अधिकांश लोग अपने इस इंजन से, सोने के छः सात घंटों के सिवा, बराबर ही काम लेते रहते हैं। इसी से कुछ ही दिनों में यह इंजन मंद हो जाता है और आगे चलकर बुरी तरह बिगड़ जाता है। सच पूछिए तो साधारणतः अच्छे जीवन में, जिसमें मनुष्य अन्दाज से और नियमानुसार (क़ायदे के मुताबिक़) खाता है, उपवास की बिल्कुल जरूरत नहीं, पर खाने-पीने की जैसी मामूली हालत जारी है उसमें तो बिना बीच बीच के उपवास के काम नहीं चल सकता। अगर आप अपनी तबीयत से ख़ुशी ख़ुशी उपवास न करेंगे तो प्रकृति आपके शरीर में रोग पैदा करके आप से जबर्दस्ती उपवास करायेगी। अब आप तय कर लीजिए कि आप अपनी तबीयत से उपवास करेंगे या जबर्दस्ती प्रकृति के दबाव से।

बीमार न रहने पर भी महीने में दो-चार उपवास करा लेना बहुत अच्छा है। हमारे देश में एकादशी, इतवार इत्यादि दिनों को व्रत करने, या रोजा रखने, की प्रथा बहुत अच्छी है, पर अक्सर लोग दिन भर भूखे रहने के बाद शाम को पेट भरकर पकवान-मिठाई उड़ाते हैं। इससे भलाई के बदले नुक़सान होता है। मेरी राय में यदि इतवार को सिर्फ फलाहार किया जाय और दोनों एकादशी को २४ घंटे का उपवास किया जाय तो बहुत

अच्छा हो। ऐसा करने से आदमी थोड़ी बहुत बदपरहेज़ी करता हुआ भी, जो नहीं करना चाहिए, निरोग रहेगा और बहुत दिन सुख से जिएगा। एकादशी के पूरे उपवास के बाद दूसरे दिन सुबह को एनीमा लेना अच्छा है और एक दिन के भी उपवास के बाद का पहला भोजन बहुत हल्का होना चाहिए—शुद्ध फल और दूध या एक रोटी और थोड़ी पत्तीदार भाजी।

उपवास से पेट को आराम मिलता है, जिससे उसकी शक्ति फिर से नई हो जाती है। साथ ही खून साफ होता है, जिससे रोग की संभावना कम हो जाती है। जो लोग चेचक या महामारी के दिनों में टीका लगवाकर ज़हरीले पदार्थों से अपने खून को दूषित करते हैं वे यदि बीच-बीच में नियमानुसार उपवास करें तो उन्हें यह या कोई भी छूत का रोग कभी न हो। साफ खून वाले को छूत के रोग लगते ही नहीं।

साल में एक बार—होली या दशहरे के बाद—अपने पेट को लगभग एक महीने के लिए आराम देना चाहिए। पहले तीन दिन का पूरा उपवास, जिसमें सुबह-शाम दोनों समय एनीमा लिया जाय, फिर चार दिन तक दिन में तीन बार फलों के रस या तरकारियों के सूप या मठे पर रहना और दिन में एक बार एनीमा लेना, फिर एक सप्ताह तक (जिसमें भी हर रोज़ एक बार एनीमा ले सकते हैं) दिन में तीन बार सिर्फ फल या पत्तीदार सब्जी पर रहना, तीसरे सप्ताह में बिना एनीमा लिये हुए फलों के साथ-साथ थोड़ा दूध लेना और चौथे सप्ताह में रोटी और पत्ती-

दार भाजी (दाल नहीं) खाना—इस तरह की एक महीने की क्रिया से पहले तो कुछ दुबलापन आयगा लेकिन फिर लगभग दो हफ़्ते में ही शरीर तगड़ा बन जायगा। इस तरह शरीर हर साल नया हो जाया करेगा, किसी तरह के भी रोग पास नहीं फटकेंगे, बुढ़ापा दूर भागेगा, मरने के दिन दूर हो जायंगे, चेहरा सुर्ख देख पड़ेगा और इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग का आनन्द मिलेगा।

उपवास से बहुत से लोग बहुत डरते हैं। आजकल अंगरेज़ी सभ्यता के दिनों में, जब कि दिन में चार-पाँच बार डट डटकर खाना धर्म सा हो गया है, उपवास के नाम से ही लोग घबराते है। डाक्टर लोग तो रोग की हालत में भी ताकत बनाये रखने के लिए सभी तरह के भोजन देते हैं। इसी से लोगों के दिलों में उपवास के बारे में भ्रम हो गया है। पर अनुभव कहता है कि उपवास से किसी प्रकार का डर नहीं होना चाहिए। स्वयं लेखक के परिवार में, जहाँ कुछ वर्षों से औषधि का व्यवहार बिल्कुल नहीं होता, छोटे छोटे बच्चे भी हँसते हँसते उपवास कर लेते हैं। यह बताने की ज़रूरत नहीं कि लेखक के परिवार में पहले की अपेक्षा बीमारी बहुत कम हो गई है।

उपवास में पहले दिन भोजन का कुछ लालच बना रहता है। दूसरे दिन कमज़ोरी मालूम होती है और तीसरे दिन यह कमज़ोरी बढ़ जाती है। साथ ही जीभ (ज़बान) मैली हो जाती है, और मुँह और शरीर से बदबू निकलने लगती है। इसका कारण यह है कि पाचन-क्रिया के बन्द हो जाने के कारण शरीर अपनी

सारी शक्तियों को सफाई के काम में लगा देता है। शरीर के रग-रेशे, कोष और मांस-पेशियों से विकार निकल निकलकर खून में आते हैं और कुछ आंतों में पहुँचते हैं। खून फेफड़े में जाकर सांस के साथ आये हुए आक्सीजन से साफ किया जाता है। पर भोजन बन्द कर देने से पेट और आंतें कमजोर पड़ जाती हैं और पाखाना होना बन्द हो जाता है। इसीलिए जरूरी है कि उपवास की हालत में एनीमा-द्वारा पेट साफ किया जाय। यदि पहले ही दिन से सुबह-शाम दो बार एनीमा लिया जाय तो कमजोरी और घबराहट नहीं या बहुत कम मालूम होगी। उपवास के चौथे या पाँचवें दिन से फिर ताकत मालूम होने लगती है और तबीयत पहले से कहीं अच्छी और ताजी मालूम होती है। जो आदमी बहुत कमजोर नहीं है वह सात दिन का उपवास बिना भय के कर सकता है और उससे लाभ उठा सकता है। पर पहले तीन दिन के उपवास से ही शुरू करना चाहिए। फिर दो महीने के बाद सात दिन का उपवास किया जा सकता है। तीन दिन का उपवास तो हर कोई कर सकता है और इसमें किसी तरह का नुकसान नहीं है। किसी किसी रोग में बहुत लंबे उपवास की जरूरत पड़ती है, जिससे रोग बिल्कुल निर्मूल हो जाता है। लेकिन लंबा उपवास किसी अनुभवी की देख-रेख में करना चाहिए। और कोई बात नहीं है, सिर्फ कभी कभी तबीयत घबराती है। हाँ, कई छोटे छोटे उपवासों के बाद आदमी एक लंबा उपवास खुद ही कर सकता है।

उपवास के बाद, जैसा कि पहले कई बार दुहराया गया है, बहुत धीरे धीरे अपने मामूली भोजन पर आना चाहिए। तीन दिन के उपवास के बाद चौथे दिन सिर्फ तीन बार फल के रस या तरकारी का सूप, पाँचवें दिन एक बार रस या सूप और दो बार फल या भाजी, छठे दिन तीनों बार फल या भाजी, सातवें दिन एक भोजन में रोटी-सब्जी—इस तरह धीरे धीरे भोजन की मात्रा बढ़ानी चाहिए। *याद रखिए उपवास का खतरा उपवास के दिनों में नहीं बल्कि उपवास तोड़ने के दिनों में है।*

उपवास में चुप-चाप बैठे या लेटे रहना नहीं चाहिए। अगर नई (तीव्र) बीमारी में उपवास करना पड़ता है तो आराम करना जरूरी है, पर यदि तन्दुरुस्ती को तरक्की देने के लिए या किसी जीर्ण रोग में, जिसमें चलना-फिरना बन्द हुआ है, उपवास किया जाय तो अपना मामूली काम जारी रखना चाहिए और शक्ति भर कसरत करनी चाहिए या टहलना चाहिए। इसका ख्याल जरूरी रखना चाहिए कि बहुत थकान न हो।

पेट को आराम देने के लिए पूरे उपवास के अलावा और कई तरीके हैं:—

(१) तीन चार दिन या एक सप्ताह फल के रस पीकर ही रह जाना। इस हालत में भी एनीमा जरूरी है। ऐसे अर्द्ध-उपवास से भी बहुत लाभ होता है।

(२) पन्द्रह बीस दिन हल्के फल और पत्तीदार भाजी पर ही रह जाना। इसमें जब-कभी एनीमा लेने की जरूरत पड़ती है।

लेखक ने गठिया के अनेकों रोगियों को महीना डेढ़-महीना सिर्फ फल और तरकारी खिलाकर ही आराम किया है।

किसी किसी के पेट में एक-व-एक के फलाहार से गड़बड़ी होती है। इसका कारण यह है कि पहले से आंतों के अन्दर के सड़ते हुए पदार्थ फलों से और भी विकृत हो उठते हैं। ऐसे आदमियों को दो-तीन दिन के उपवास या रसाहार और एनीमा प्रयोग के बाद फलाहार शुरू करना चाहिए।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि कोई फल गुणदायक होते हुए किसी के अनुकूल (मुआफिक) नहीं होता। ऐसी हालत में कुछ दिनों के लिए उस फल को छोड़ देना चाहिए। फल जिसके अनुकूल न हो उसे सिर्फ पत्ती भाजी खाकर कुछ दिन रहना चाहिए और हर रोज एनीमा लेना चाहिए। फिर धीरे धीरे फलों पर आना चाहिए।

(३) दिन में चार-पाँच बार मठा या दूध पीकर ही रहना। इस अकेला दूध या मठा के भोजन से सभी प्रकार के पुराने रोग अच्छे होते हैं। दूध या मठे की मात्रा पर ध्यान रखना चाहिए। शुरू शुरू में एक बार पाव भर ही काफी है। दूध में शहद मिला सकते हैं, चीनी या मिस्री नहीं। अगर पतले दस्त आने की या कमजोर पाचन-शक्ति की शिकायत है तो कुछ दिन मठा पीने के बाद दूध शुरू करना ठीक होता है। निरा दूध का भोजन शुरू करने से पहले दो तीन दिन उपवास करना और उपवास के दिनों में एनीमा लेना जरूरी है। दूध अमल और कच्चा हो। मठ को

भी अच्छा, घी-रहित और मीठा (या कम खट्टा) होना चाहिए। इस तरह के डेढ़ दो महीने के भोजन से न सिर्फ रोग ही जाते हैं बल्कि मोटे आदमी कुछ दुबले और दुबले आदमी कुछ मोटे हो जाते हैं। दूध या मठा पीने के दिनों में जब-कभी एनीमा लेने की जरूरत पड़ती है।

(४) एक बार एक ही चीज खाना, जैसे आज सुबह को सिर्फ रोटी, शाम को केवल साग; कल सुबह को हरे चने, शाम को आलू-गोभी की तरकारी; परसों सुबह को अमरूद, शाम को रोटी...... । इस तरह पेट को आराम देना उसके लिए अच्छा है। जिसे कोई सख्त तकलीफ नहीं है लेकिन जो कुछ भी है उसे दूर कर स्वास्थ्य को बढ़ाने की आवश्यकता है।

× × × ×

अन्त में यह बताना मै जरूरी समझता हूँ कि मौक़ा (अवसर) के मुताबिक़ (अनुसार) भोजन होता है। चिकित्सा के दिनों के भोजन कुछ और हैं और तनदुरुस्ती के दिनों के कुछ और। चिकित्सा के दिनों के भोजन मे शरीर के विकार निकालने की शक्ति रहती है न कि शरीर को पुष्ट करने की। मिसाल के लिए, दूध पुष्टिकारक है न कि विकार निकालने वाला। फल और सब्जी (ज्यादातर कच्ची ही) विकार निकालने वाले भोजन हैं।

हवा से फ़ायदा उठाना

हवा के काम—

हवा ही जीवन की सांस है। बिना भोजन और पानी के मनुष्य कुछ दिनों तक जी सकता है, पर बिना हवा के एक क्षण भी जी नहीं सकता।

हवा बिना दाम के ही घर बैठे मिलती है, इसलिए हम उसकी कद्र नहीं करते। पर वह हमारी तनदुरुस्ती को ठीक रखने और बिगड़ी तनदुरुस्ती को सुधारने के लिए बड़े काम की चीज है।

हवा सांस के रूप में फेफड़े में जाकर अपने आक्सीजन से शरीर के अन्दर के खून को साफ करती है। यह एक बहुत जरूरी बात है, जिसे अच्छी तरह समझना चाहिए। हम जानते हैं कि शरीर को अच्छी हालत में रखने या बीमारी पैदा करने का काम खून का ही है। यह खून दिल से चलकर शरीर के सभी हिस्सों में जाता है, वहां उनकी खूराक पहुँचाता है और उनके विकारों को अपने साथ लेकर फेफड़ों में पहुँचता है। जब वह दिल से चलता है तो चमकीले लाल रंग का रहता है, पर फेफड़ों में पहुँचते पहुँचते बहुत कुछ स्याह और धुँमला हो जाता है। इसका कारण, जैसा कि ऊपर बताया गया, यही है कि वह शरीर के अंग-प्रत्यंग को उसका आहार और पुष्टि देकर उसके अन्दर के विकारों को अपने

रक्त-संचार
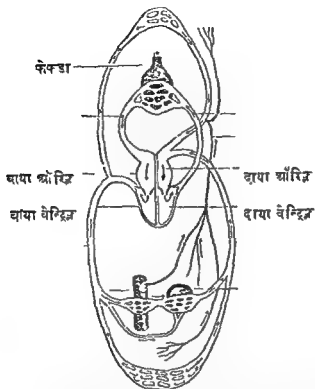
खून दिल के बायें वेन्ट्रिक्र से चलकर शरीर के सभी हिस्सों मे जाता है। वहा खुराक पहुँचाकर और उन हिस्सों से शिराओं को लेकर दायें ओरिक्र म पहुँचता है। वहा से वह दायें वेन्ट्रिक्र म जाकर फेफडों में भेजा जाता है। वहीं ऑक्सीजन से साफ होकर वह बायें ओरिक्र में आता है और तब बायें वेन्ट्रिक्र म आकर शरीर में जाता है।

यह चित्र रक्त-सचार (खून का दौरान) को समझाने के लिए है, शरीर में इन भागों का सच्चा चित्र नहीं है।

साथ ले आता है। फेफड़ों में ही उसकी सफ़ाई होती है। सांस के साथ आये हुए आक्सीजन से मिलकर वह साफ़ होता है और अपने अन्दर के बहुत से विकारों को वह सांस के साथ बाहर निकाल देता है। फेफड़ों में साफ़ होकर, फिर से अपना असली लाल रंग पाकर और आक्सीजन से लदकर खून दिल में आता है और दिल से फिर सारे शरीर में भेजा जाता है। खून के साथ आया हुआ आक्सीजन शरीर के हर हिस्से के विकारों को जलाता और साफ़ करता है। विकारों की राख (सफ़ाई के बाद उनके बदले हुए रूप) को लेकर खून फिर फेफड़े में आ जाता है। इससे साफ़ साफ़ मालूम हो जायगा कि खून और खून के कारण शरीर को अच्छी हालत में रखने के लिए हवा कितनी ज़रूरी है।

इतना ही नहीं, हवा हमारी खालों में भी लगकर हमें तनदुरुस्त रखने में हमारी मदद करती है। खाल में अनेकों बहुत छोटे छोटे सूराख़ हैं। खाल भी एक तरह से सांस लेती है। सारे बदन में हवा और धूप का हर रोज लगना बहुत जरूरी है। हवा और धूप से ही प्राण और जीवन-शक्ति मिलती है, पर इन दिनों हम अपने शरीर को इस तरह ढककर रखते हैं, उस पर तरह तरह की पोशाकों का इतना सा ढेर लाद देते हैं कि उसे हवा और धूप से कुछ भी फायदा नहीं पहुँचता। यह आजमा कर देखने की ही बात है। आप अपने शरीर में घंटे डेढ़ घंटे हर रोज हवा और धूप लगने दीजिए। आप देखिएगा कि थोड़े ही दिनों में आप के शरीर की हालत पहले से बहुत अच्छी हो

जायगी। कठिन चर्म-रोग के कई रोगियों को लेखक ने उचित भोजन के साथ-साथ हर रोज हवा और धूप में तीन-चार घंटे बिल्कुल नंगा रखकर भला-चंगा किया है। यह रोगी पहले और तरह के इलाज करके हार चुके थे।

अपने शरीर के प्रति हमारा धर्म है कि काफी मात्रा में हम साँस-द्वारा हवा अपने अन्दर लें, क्योंकि उसी के साथ विकारों को जलाने और खून को फिर से लाल करने के लिए ऑक्सीजन लिया जा सकता है, और साथ ही अपने सारे शरीर में हवा और धूप लगने दें। हिन्दुस्तानी रहन-सहन, पोशाक और जीवन-चर्या में हवा और धूप से फायदा उठाने के बहुत मौके मिलते थे, पर अंगरेजी सभ्यता के साथ साथ अब लोग हिन्दुस्तान को भी सर्दियों वाला इंगलैंड समझने लगे हैं, और गर्मियों में भी अपने बदन को गर्दन से एड़ी तक बुरी तरह ढक लेते हैं। इसका परिणाम (नतीजा) जो है सबों को मालूम है—खून की कमी के साथ शरीर की कमजोरी, माँसपेशियों (muscles) की क्षीणता (दुबलापन), चमड़े की बीमारियाँ इत्यादि इत्यादि। मामूली समझने की बात है कि जब पेड़-पौदे भी बिना हवा और धूप के नहीं बढ़ते और जब जानवर भी अपने शरीर में हवा और धूप बराबर लगने देते हैं तो मनुष्य इनसे बचकर क्योंकर तनदुरुस्त और भला-चंगा रह सकता है। जाड़ों में ज्यादा कपड़ों की जरूरत जरूर पड़ती है, पर उन दिनों भी दो-पहर में या किसी न किसी समय हवा और धूप का आनन्द लिया जा सकता है।

हवा किस तरह ली जा सकती है—

नाक के द्वारा काफी हवा अन्दर लेने का सब से अच्छा उपाय खुली जगहों या मैदान में कसरत करना, खेलना और तेजी से टहलना है। बच्चों, लड़कों और नौ-जवानों के लिए हर रोज खेलना जरूरी है। लड़कों और नौ जवानों को खेलने के अलावा हर रोज पाँच दस मिनट या इससे ज्यादा समय के लिए कसरत करना भी जरूरी है। चालीस साल के लगभग उम्र वालों को यदि वे पहले से कसरत करते और खेलते रहे हैं तो, इन आदतों को जारी रखना चाहिए। लेकिन ज्यों ज्यों उम्र बढ़ती जाती है, टहलना सब से अच्छी कसरत का काम करता है। अपनी शक्ति भर तेजी से जितनी दूर बन सके, टहलना एक बहुत ही अच्छी कसरत है, जिसे हर कोई बहुत लाभ के साथ कर सकता है। कहने का मतलब यह है कि खुले मैदान में या किसी भी खुली जगह में खेलने, कसरत करने या टहलने से खुद-ब-खुद बहुत सी हवा फेफड़े में पहुँचती है और खून की सफाई का काम अच्छी तरह चलता रहता है। इसके अलावा गहरी साँस लेने का भी आदत डालनी चाहिए।

गहरी साँस क्या है—

गहरी साँस उसे कहते हैं जो खुली जगह में या खुली खिड़की या दरवाजा के सामने सीधा खड़े होकर बैठकर या पीठ के बल सीधा लेटकर इस तरह धीरे धीरे ली जाती है कि जिससे पेट

और सीने के अन्दर के सभी हिस्से और कल पुर्जे हवा से अच्छी तरह भर जायँ । गहरी साँस से एक खास फायदा यह है कि साधारण या जीर्ण रोग की हालत मे जब कि बदन में इतनी ताकत नहीं है कि खेल खेले जाँय या कसरत की जाय तो बैठे-बैठे और लेटे-लेटे मनुष्य जब कभी गहरी साँस ले लेकर अपने को जल्द और जरूर अच्छा कर सकता है। जीर्ण रोगों मे, जिनमें खून, मॉस-पेशियाँ, रग-रेशे और शरीर के कोष प्रति कोष विकारमय हो जाते हैं, गहरी साँस लेने से अन्दर के विकारों की सफाई जल्द होती है।

गहरी साँस कैसे ली जा सकती है—

सीधे खड़े हो जाओ या सीधे बैठो, जिससे पीठ सीधी रहे, या पीठ के बल सीधा आराम से लेट जाओ। खड़े होने या बैठने में ध्यान रक्खो कि पीठ सीधी तो रहे लेकिन इतनी न तने कि कष्ट मालूम होने लगे। चेहरे को सामने, जरा (बहुत नहीं) ऊपर को उठा रक्खो और नथनों को बिना सिकोड़े हुए खुला रखो। अब धीरे धीरे नाक से साँस लो। साँस लेने में पहले पेट का वह हिस्सा जो नाभी के ऊपर है कुछ फूलेगा, तब सीना फूलेगा और पेट पहले जैसा हो जायगा। सीने को ऊपर तक हल्का हल्का फूल और तन जाना चाहिए। अब धीरे धीरे नाक से ही हवा को निकालो। शुरू शुरू की अवस्था मे हवा को अन्दर रोक रखना ठीक नहीं है। बहुत अभ्यास के बाद हवा रोकी जा सकती है। जितनी देर मे हवा अन्दर ली गई थी उससे दूनी देर में बाहर

निकाली जानी चाहिए। पहिले यह कठिन होगा पर अभ्यास से जरूर आ जायगा। पहले साँस को जोर से बाहर फेंककर साँस लेना शुरू करना अच्छा होता है।

गहरी साँस के संबंध में यदि एक बात समझ ली जाय तो अभ्यास में आसानी होगी। पेट में एक माँसपेशी (muscle) है, जो अंगरेजी में डायफ्राम (diaphragm) कहलाती है। यह माँसपेशी पाचक-यन्त्र और आँतो को फेफड़ों और दिल से जुदा करती है। साँस लेते समय यह डायफ्राम नीचे को धँसता है और साँस निकालते समय यह ऊपर उठ आता है। बस, गहरी साँस लेते समय आप कल्पना कीजिए कि डायफ्राम नीचे को जा रहा है। इससे आपका अभ्यास आसान हो जायगा।

गहरी साँस से लाभ—

(१) काफी हवा शरीर के अन्दर आ जाती है।

(२) काफी हवा के अन्दर आने से ऑक्सीजन भी पर्याप्त मात्रा में फेफड़ों में पहुँचता है।

(३) ऑक्सीजन से खून साफ होता रहता है और खून के विकार अन्दर ली हुई हवा के साथ मिलकर बाहर निकलने वाली साँस के साथ शरीर के बाहर फेंक दिये जाते हैं।

(४) खून के साथ ऑक्सीजन शरीर के सब हिस्सों में पहुँचकर वहाँ के विकारों को खून के साथ फेफड़े में आने में सहायक होता है।

(५) साफ़ खून से शरीर के सभी भाग पुष्ट और तनदुरुस्त रहते हैं।

(६) गहरी साँस में डायफ़्राम आँतों पर थपकियाँ लगाता रहता है, जिससे कब्ज की शिकायत नहीं रह पाती।

(७) गहरी साँस लेने वाले को फोड़े, फुन्सी, जख्म या साधारणतः और कोई बीमारी नहीं होती। खान-पान का ध्यान रखना भी जरूरी है, क्योंकि उसी से खून बनता है।

हवा और साँस के नियम—

(१) हर मौसम में बाहर बरामदे में या बिल्कुल खुले कमरे में रात को सोना चाहिए। रात को ही आराम के समय शरीर के अन्दर मरम्मत का काम होता रहता है। उस समय काफी हवा का मिलना बहुत जरूरी है।

(२) मुँह ढककर हर्गिज न सोना चाहिए। मुँह ढककर सोने से साँस के साथ बाहर निकले हुए ज़हर और विकार फिर शरीर के अन्दर चले जाते हैं।

ऊपर के दो नियम बहुत जरूरी हैं। लेखक सपरिवार सभी मौसम में खुले बरामदे में सोता है। कई वर्षों से, जब से वह ऐसा करने लगा है, बच्चों को जुकाम-सर्दी या खाँसी नहीं होती। पहले हर तीसरे या चौथे महीने हुआ करती थी। और बीमारियों में भी कमी है, क्योंकि खून अच्छी हालत में रहता है।

ज्यादा ठंड से बचने के लिए ओढ़ने के अधिक कपड़े भी

इस्तेमाल करते हों तो कोई बात नहीं है, पर खुले स्थान में मुँह खोलकर (लेकिन जरूरत हो तो सर ढककर) सोना जरूरी है। गर्मियों में सोते समय कोई भी कपड़ा नहीं पहनना चाहिये, जाड़ों में एक हल्का और ढीला कुर्ता या कमीज पहन सकते हैं।

खाँसी वालों का रोग इस तरह सोने से जल्द जाता है। आजकल इस संबंध में उल्टी गंगा बह गई है, जिससे बहुत नुकसान हो रहा है।

(३) बुखार, जुकाम और खाँसी या सभी नये (तीव्र) रोगों में रोगियों को खुले बरामदे या कमरे में ही रहना चाहिये। ऐसी अवस्था में रोगी को पहले के बनिस्बत ज्यादा हवा की जरूरत होती है, क्योंकि हवा प्रकृति की दी हुई मुफ्त दवा है। अगर हवा जोर की हो तो रोगी के शरीर को अच्छी तरह ढक दो अगर हवा मामूली हो तो हल्के कपड़े से ढको, बल्कि दिन में कुछ देर के लिये सारे शरीर में धीमी धीमी हवा लगने भी दो।

(४) जीर्ण (पुराने) रोगों में रोगियों को नियम नम्बर (३) के पालन करने के अलावा जब कभी गहरी साँस भी लेनी चाहिये।

शुरू शुरू में तीन गहरी साँस सुबह में, तीन दोपहर में और तीन सोने से पहले लेना काफी है। चार-पाँच दिन पर एक एक साँस तीनों वक्त बढ़ाई जा सकती है। खाने के बाद तुरन्त ही गहरी साँस नहीं लेना चाहिये।

टहलते समय भी गहरी साँस ली जा सकती है। हर कदम

के साथ गिनती गिनो और आठ की गिनती तक अपने पेट और सीने को हवा से भर लो, फिर सोलह गिनने के ही समय में हवा को धीरे धीरे निकाल दो।

(५) कसरत करते समय हर दो कसरतों के बीच में दो-तीन बार गहरी साँस लेनी चाहिए।

× × × ×

साँस की और भी बहुत सी लाभदायक क्रियाएँ हैं, पर वे इस किताब में नहीं दी जा सकतीं। ऊपर जो लिखा गया है वह साधारणतः स्वस्थ रहने और रोगों को भगाने के लिये काफ़ी है। जो कठिन क्रियाएँ हैं उन्हें किसी योग्य शिक्षक की देख-रेख में सीखना और करना चाहिए।

—

पानी को काम में लाना

पानी की करामात—

तनदुरुस्ती को ठीक रखने और नये या पुराने रोग को दूर करने के लिये पानी एक बहुत जरूरी पदार्थ है। जल की महिमा के ही कारण जल-चिकित्सा (पानी का इलाज) जैसी एक चिकित्सा-प्रणाली (इलाज का ढंग) जोरों में चल गई है। लेकिन, जैसा कि पहले कहा गया है, जल-चिकित्सा प्राकृतिक चिकित्सा (क़ुदरती इलाज) का महज एक अंग है। जल के उचित प्रयोग से बहुत फ़ायदा जरूर होता है, पर यदि उसके साथ साथ भोजन, हवा, धूप और उचित कसरत और आराम का ख़याल न रखा जाय तो जल-चिकित्सा के लाभ में बहुत कमी हो जाय और कुछ हालतों में नुक़सान भी हो।

पानी के बहुत से फ़ायदे हैं, जिनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं :—

(अ) *पानी शरीर के अन्दर की गर्मी को दूर करता है, जिससे जलन, सूजन और दर्द में पानी के इस्तेमाल से फ़ायदा पहुँचता है।* किसी भी फोड़े, फुन्सी या बुख़ार की हालत में पानी का इस्तेमाल प्राकृतिक और उचित है, पर बुख़ार में लोग

बदन को पानी से धोने से डरते हैं, कहते हैं कि निमोनिया या त्रिदोष हो जायगा। लेकिन संसार भर के प्राकृतिक चिकित्सकों का तजुर्बा है कि पानी के बा-क़ायदा इस्तेमाल (नियम-पूर्वक प्रयोग) से किसी तरह का नया बुखार बात की बात में भाग जाता है और पुराना बुखार या किसी तरह का पेचीदा बुखार भी जल्द पीछा छोड़ता है। पानी के ही इस्तेमाल से कितने ६, ७ दिन के बुखारों को, जिनको डाक्टरों ने मियादी या टाइफॉयड बताया, प्राकृतिक चिकित्सकों ने दो-तीन दिनों में ही मार भगाया।

(ब) शरीर के अन्दर के विकारों को घुलाकर उनको फिरसे पानी बनाना और शरीर के बाहर निकाल देना—यह काम पानी का ही है। भोजन के ठीक ठीक न पचने से शरीर के अन्दर वायु का प्रकोप (बादी का दौरान) रहता है। यह वायु भाप की तरह है। सभी जानते हैं कि किसी ठंढी सतह को छूने से भाप फिर पानी बन जाती है। बस, शरीर के अन्दर की भी भाप (वायु) ठंढे पानी के बाहरी इस्तेमाल से पानी बन कर पेडू में चली आती है और फिर पेशाब-पाखाने के रास्ते शरीर के बाहर निकल जाती है। इस विकार-मय भाप को शरीर के बाहर निकाल देने के लिए पानी के नियमित प्रयोग से बढ़कर कोई भी दूसरा सीधा-सादा और जरूर सफल होने वाला उपाय नहीं है। इसी से उन रोगों को भी, जो असाध्य (ला-इलाज) कहकर छोड़ दिये जाते हैं, प्राकृतिक चिकित्सा जड़ से उखाड़ देती है।

(स) *पानी से स्नायु-संस्थान* (nervous system) को *आराम और शक्ति, दोनों ही, मिलते हैं।* पाठकों को मालूम है कि शरीर के अन्दर स्नायु-संस्थान ही राजा का काम करता है। उसी के हुक्म से भोजन का पाचन, पेट की सफ़ाई, नींद का आना इत्यादि सभी ज़रूरी काम होते हैं। स्नायु की कमज़ोरी से शरीर की कमज़ोरी होती है, जिससे शरीर रोगों का शिकार बनता है, और फिर शरीर की कमज़ोरी से स्नायुओं की कमज़ोरी बढ़ती है। स्नायु-संस्थान को ठीक अवस्था में रखने के लिए पानी का प्रयोग बहुत ज़रूरी है।

पानी के कुछ मामूली (साधारण) इस्तेमाल हैं और कुछ *गैर-मामूली* (असाधारण)। *मामूली इस्तेमालों* में रोज़ रोज़ का नहाना और पानी पीना है। गैर-मामूली इस्तेमालों में तरह तरह की पट्टियाँ और स्नान (नहान) हैं। पहले जल के साधारण प्रयोगों के बारे में ज़रूरी बातें बताई जायेंगी।

पानी का मामूली इस्तेमाल-

पानी पीना और नहाना रोज़ की मामूली बातें हैं, इसीलिए इन पर काफ़ी ध्यान नहीं दिया जाता। पर इन मामूली बातों को अच्छी तरह जानने और करने से तन्दुरुस्त रहने और रोगों से छुटकारा पाने में बहुत मदद मिलती है। इसलिए इन बातों के संबंध में नीचे दिये नियम बराबर याद रखिए।

पानी पीना

(अ) ठंढा पानी पीना अच्छा है। लेकिन जाड़ों में अगर पानी बहुत ठंढा हो तो उसे इतना गर्म कर लेना चाहिए कि उसकी ठंढ मर जाय, ज्यादा नहीं। सर्दी-जुकाम या खाँसी में इस बात का ध्यान जरूर रखना चाहिए।

अगर शक (सन्देह) हो कि पानी अच्छी जगह का नहीं है या अगर ठीक ठीक मालूम हो कि पानी विकार-युक्त है तो उसे अच्छी तरह उबालने के बाद ठंढा कर और तब छान करके पीना चाहिए।

(ब) पानी सादा ही पीना चाहिए या नींबू का रस मिलाकर। सोडा, लेमोनेड इत्यादि पीने की प्रथा हानिकर है। पहले तो इनके पीने से कोई नुकसान नहीं मालूम होता, पर धीरे धीरे यह पाचन-शक्ति और स्नायुओं को कमजोर कर देते हैं। जो बहुत वर्षों तक निरोग जीना चाहता है वह सादा पानी पिये। पानी में बर्फ मिलाना भी बुरा है। इससे पाचन-शक्ति नष्ट हो जाती है। अगर बर्फ मिलाना ही हो तो चूर करके न छोड़ी जाय। एक दो सेकेंड के लिए पानी में बर्फ के टुकड़े को रहने दीजिए और फिर निकाल लीजिए। यह सबों को मालूम है कि बर्फ के पानी से प्यास नहीं जाती।

(स) पानी काफी मात्रा में पीना चाहिए, पर बिना प्यास के नहीं। शरीर का बहुत भाग पानी है, खून भी पानी है, इसलिए शरीर को ठीक हालत में रखने के लिए पानी बहुत जरूरी है।

पर बिना प्यास के पानी पीना वैसा ही है जैसा कि बिना भूख के भोजन करना।

सुबह उठते ही मुँह-आँखें धो और कुल्ला करके एक डेढ़ गिलास पानी धीरे धीरे पी जाना बहुत लाभदायक है। वैसे ही रात को सोने से पहले पानी पीकर सोना भी अच्छा है। कब्ज की हालत में इन दोनों वक्त के पानी को थोड़ा गर्म कर के उसमें एक या दो नींबू का रस मिला लेना गुणकारी होता है।

(द) पानी इच्छा भर पीना चाहिए, न ज्यादा न कम। कोई निश्चित मात्रा नहीं बताई जा सकती।

(न) भोजन के साथ पानी नहीं पीना चाहिए। यह नियम बड़े महत्व का है और इसके तोड़ने से बहुत सी खराबियाँ इन दिनों हो रही हैं। भोजन के एक घंटा पहले और तीन (कम से कम दो) घंटे बाद पानी पीना अच्छा है। भोजन के समय पानी पीने की आदत को रोकने के लिए यह जरूरी है कि भोजन में मिर्च, मसाले और तेल की ज्यादती न हो और यह भी कि भोजन अच्छी तरह चबाया जाय।

(प) थके रहने की हालत में तुरन्त पानी पीना नहीं चाहिए।

(फ) थकावट या किसी प्रकार के बुखार की हालत में *आचमन* लेना बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। आचमन का मतलब है—दो दो सेकेंड की देर पर ठंढे पानी की (पानी जितना ठंढा हो अच्छा है, लेकिन बर्फ मत मिलाओ) १०-१२ बूंद चूस लेना। बीस बाइस बार चूसने के बाद पांच-सात मिनट के लिए

रुक जाना चाहिए, और तब फिर दुहराना चाहिए। बीच बीच में रुक रुककर चार-पाँच बार इस तरह करना चाहिए। चाय पीने वाले छोटे चमचे में जितना पानी आता है उसका छठवाँ भाग एक एक बार चूसना चाहिए। यह दस-बारह बूंदों के बराबर होगा। बुखार के शुरू में आचमन जरूर लेना चाहिए। बहुत बुखार तो सिर्फ पाँच-सात बार के आचमन से ही उतर जायगे। जोरदार बुखारों में भी इससे लाभ होता है। परेशानी कम हो जाती है। लेकिन आचमन का तरीका ठीक वैसा ही हो जैसा कि ऊपर बताया गया है।

मामूली नहाना

(अ) साधारण तनदुरुस्ती वालों को ठंडे पानी से नहाना चाहिए। ठंडे पानी से स्नायु-संस्थान जग उठता है। कमजोर आदमी को ऐसे पानी से नहाना चाहिए, जिसकी ठंढ थोड़ा गर्म पानी मिलाने से मर गई है, लेकिन जो गर्म नहीं है।

(ब) भोजन के तुरन्त पहले या बाद नहीं नहाना चाहिए। हल्के भोजन के बाद एक घंटे और साधारण भोजन के दो-ढाई घंटे बाद नहाना चाहिए। इसी तरह नहाने के बाद शरीर में गर्मी आ जाने पर (कम से कम पन्द्रह मिनट का अन्तर देकर) खाना खाना चाहिए।

(स) जब बदन ठंढा रहे तो नहीं नहाना चाहिए। ऐसी हालत में बहुत थोड़ी कसरत या मल-मलकर बदन को गर्मकर लेने के बाद नहाना चाहिए।

(द) नहाना या तो नदी में चाहिए या ऐसे बन्द कमरे में, जहाँ बिल्कुल नंगा होकर नहा सके। बिना नंगा हुए बदन के सभी हिस्से अच्छी तरह नहीं धोये जा सकते।

(त) जहाँ तक हो सके, सबेरे उठने और पाखाने जाकर मुँह-हाथ धोने के बाद ही नहा लेना चाहिए। आजकल जो ९-१० बजे नहाने के बाद तुरन्त खाकर स्कूल, कालेज या दफ़्तर जाने की प्रथा चल गई है ठीक नहीं है। सबेरे नहाने के बाद थोड़ी देर ईश्वर-चिन्तन या किसी अच्छी पुस्तक का पढ़ना शरीर, दिल और दिमाग तीनों के लिए अच्छा है।

(थ) वैसी कसरत, खेल-कूद और दौड़-धूप के बाद, जिसमें पसीना अच्छी तरह निकल आया हो और शरीर में गर्मी हो आई हो, नहाने की आदत डालना बहुत अच्छा है। इस नहान से पसीना साफ़ हो जाता है और बदन में ताज़गी आती है। कमज़ोर आदमियों को पहले इससे कुछ नुकसान हो सकता है। इसलिए इसका पहला अभ्यास यह है कि कुछ दिनों तक कसरत करने के बाद सिर्फ उतनी देर तक ठहरा जाय जब तक साँस फूल रही हो, फिर बन्द कमरे में पानी में निचोड़े अंगोछे या तौलिए से बदन को चार-पाँच बार अच्छी तरह पोंछ ले और तब कपड़े पहनकर बाहर आवे। पन्द्रह-बीस दिन के बाद ही नहाना भी शुरू किया जा सकता है। कसरत के बाद का नहाना बन्द कमरे में ही ठीक है।

(न) अगर इस तरह नहाया जाय तो बहुत लाभ हो—खड़ा

लूई-कूने

लिपजिग (जर्मनी) निवासी। इन्होंने सिद्ध किया कि सभी रोगों का एक कारण है—शरीर के अन्दर का विकार

होकर पहले अपनी हथेली से सारे बदन को सिर से पैर तक अच्छी तरह और तेजी से इतना रगड़िए कि बदन लाल हो जाय। जाँघ और टाँगों को रगड़ते समय घुटनों को सीधा और तना रखिए। इससे रीढ़, पेट इत्यादि की हल्की कसरत हो जायगी। अब नहाइए। एक बार बदन अच्छी तरह धोकर, यदि इच्छा हो तो, थोड़ा तेल लगा लीजिए। फिर नहाइए। नहाने के बाद पहले की तरह सर से पैर तक सारे अंगों को तलहथी से रगड़िए—इतना रगड़िए कि पानी बहुत कुछ सूख जाय। फिर तौलिए से शरीर को अच्छी तरह पोंछकर कपड़े पहन लीजिए।

ऐसा नहाना बन्द कमरे में ही हो सकता है, जहाँ आप नंगे हो सकते हैं। इस नहाने में नहाना, कसरत, बदन की मालिश, तीनों, मिले हुए हैं। उचित भोजन के साथ इस तरह के नहान से एक ही महीने में शरीर कुछ और ही हो जाता है।

जीर्ण रोग के रोगी, जो इस तरह नहा सकते हैं, इस नहान से बहुत लाभ उठाते हैं। बवासीर, दमा, मामूली गठिया, खाज-खुजली वाले रोगी तो अवश्य ही इस तरह नहाकर अपने रोग को जल्दी से दूर कर सकते हैं। साधारण तनदुरुस्ती में भी ऐसा नहाना बहुत अच्छा है। कुछ लोग कहते हैं कि इसमें बहुत समय लगता है, पर तनदुरुस्ती के लिए समय लगाना कौन बुरी बात है।

(प) जिन रोगियों के बदन में हल्का-हल्का दर्द रहा करता है, जैसा कि कभी कभी गठिया की पुरानी हालत में रहता है, उन्हें

पहले कुछ दिनों तक सर को ठंडे पानी में निचोड़े कपड़े से दो-तीन वार अच्छी तरह पोंछकर या धोकर गर्दन से नीचे गर्म पानी से नहाना चाहिए और उसके बाद ही या तो ठंडे पानी से नहा लेना चाहिए या ठंडे पानी में निचोड़े कपड़े से बदन को अच्छी तरह पोंछना चाहिए। सात आठ दिनों के बाद नम्बर (न) वाली क्रिया, जो ऊपर बताई गई है, करना चाहिए।

पानी का गैर-मामूली (असाधारण) इस्तेमाल —

पानी के जो इस्तेमाल नीचे दिये जाते हैं वे हर रोज के नहीं है। जरूरत होने पर इन असाधारण प्रयोगों से बहुत फायदा उठाया जा सकता है। इनको अच्छी तरह समझना और सीखना चाहिए।

सेंक

(प्र) दर्द और सूजन में सेंक से बहुत लाभ होता है, लेकिन सेंक से पूरा फायदा उठाने के लिए *गर्म-और-ठंडी-सेंक* होनी चाहिए।

एक बर्तन में खूब गर्म और दूसरे में ठंडा पानी लीजिए। दोनों में फलालैन या किसी भी मोटे कपड़े के टुकड़े डाल दीजिए। अगर जरूरत हो तो कपड़ों के दो-तीन तह कर लीजिए। पहले गर्म पानी वाले कपड़े को निचोड़कर १ से ३ मिनट तक दर्द के मुकाम पर रखिए और इतने में ठंडा पानी वाले कपड़े को निचोड़ कर तैयार कीजिए। फिर गर्म कपड़े को हटाकर ठंडे कपड़े को

दर्द वाली जगह पर रखिए और इधर गर्म पानी वाले कपड़े को निचोड़कर तैयार कीजिए। ठंडे कपड़े को गर्म कपड़े के बनिस्बत (अपेक्षा) कम देर तक रखिए। अगर गर्म कपड़े को १ मिनट रखा है तो ठंडे कपड़े को आध मिनट के लिए ही रखिए। इस तरह बारी बारी से गर्म और ठंडी सेंक १५-२० मिनट के लिए देनी चाहिए। सेंक देते समय हवा लगने न देना चाहिए, पर कमरे को बिल्कुल बन्द करने की भी जरूरत नहीं।

गर्म के बाद ठंडी सेंक इसलिए दी जाती है कि दोनों से ख़ून में अच्छी हरकत पैदा हो जाय।

किसी भी दर्द और सूजन में या अकेला दर्द या सूजन में और शरीर के किसी अङ्ग पर यह सेंक दी जा सकती है। इस सेंक को, जब जब तकलीफ उठे, देना चाहिए। अगर तकलीफ बहुत दिन तक चलने वाली है तो दिन और रात में दो-तीन बार, समय निश्चित करके, सेंक देनी चाहिए। सेंक के कपड़े इतने बड़े और चौड़े जरूर हों कि दर्द की जगह को अच्छी तरह ढक सकें। दमा, पुरानी खाँसी, निमोनिया और यक्ष्मा में छाती और पीठ के ऊपर के हिस्सों पर इन सेंको से बहुत फायदा होता है।

खुश्क (सूखी) सेंक, जिसमें सिर्फ कपड़े या तलहथी से सेंकते हैं, बहुत खराब है।

(ब) बोतलों में गर्म पानी भरकर उनके मुँह अच्छी तरह बन्द कर लीजिए और उनको छाती और पेट के दोनों तरफ या अगर जरूरत हो तो टाँगों के पास भी दोनों तरफ रखकर ऊपर से

कपड़ा ओढ़ा दीजिए। कभी कभी कई बोतलें तैयार रखने की जरूरत पड़ती है और साथ ही चूल्हे पर गर्म पानी भी तैयार रखना पड़ता है, जिससे कि बोतलें बदली जा सकें। बोतल (पानी से) इतनी गर्म हो कि बर्दाश्त (सहन) की जा सके।

पेट के दर्द में भी गर्म पानी की बोतलों से काम लेते हैं, पर खास कर जब बदन में कमजोरी से ठंड आने लगती है, जैसा कि शरीर से बहुत खून निकलने के बाद हो सकता है, तो गर्म बोतलों से लाभ होता है।

सेंक से फ़ायदा जरूर होता है, लेकिन अगर गठिया जैसे रोग में खून विकार-युक्त हो गया है तो सेंकों से सिर्फ आराम मिलेगा। सच्चा लाभ तो तभी होगा, जब कि भोजन-सुधार के साथ साथ दूसरे दूसरे उपायों से खून साफ़कर दिया जाय। फिर भी आराम पहुँचाने के लिए इन सेंकों से काम जरूर लेना चाहिए।

पट्टियाँ

(अ) मुक़ामी गीली पट्टी—

कपड़े की गीली पट्टियों से बहुत हालतों में जादू का सा असर होता है। दर्द या सूजन की जगहों पर, किसी अंग के कटने पर और कभी कभी जख्म पर भी, ठंढे पानी में निचोड़े साफ़ कपड़े के टुकड़े को इस तरह लपेटिए कि वह उस जगह को तीन-चार बार अच्छी तरह ढक ले या कपड़े को चार-पांच तह कर चोट की जगह पर उसे रखिए और तब ऊपर से एक गर्म ऊनी कपड़े

को हल्का कसकर लपेट दीजिए। पट्टी की तहें कितनी हों, यह इस बात पर निर्भर है कि तकलीफ कैसी है। अगर तकलीफ ज्यादा है या किसी अंग के बुरी तरह कट जाने से खून जोरों में और बहुत बह रहा है तो पट्टी को काफी मोटा होना चाहिए। इसको लगभग एक घंटे तक या जब तक अन्दर की पट्टी गर्म न हो जाय उसी जगह पर रहने दीजिए। फिर ठंडे गीले कपड़े से उस जगह को पोंछ दीजिए। अगर जख्म है या कट गया है तो अच्छी तरह धो दीजिए।

जब तक तकलीफ दूर न हो एक-एक या दो-दो घंटे का या २५-३० मिनट का अन्तर देकर पट्टी को दुहराते जाइए।

बहुत जगहों में पट्टी लपेटी नहीं जा सकती। वहाँ पट्टी को सिर्फ रख देते हैं और ऊपर से गर्म कपड़े रख देते हैं या अगर हो सके तो लपेट देते हैं। बुखारों में इन गीली पट्टियों को नाभी (नाफ) से नीचे तमाम पेड़ू पर रखने से बुखार बढ़ने नहीं पाता और रोगी को बहुत आराम मिलता है। बुखारों में इन कपड़े की पट्टियों के बदले अगर मिट्टी की पट्टियाँ रखी जांय तो और भी लाभ हो। मिट्टी की पट्टियों के बारे में आगे बताया जायगा। पेड़ू पर कपड़े की गीली पट्टी के लिए कपड़े को काफी मोटा होना चाहिए और उसकी दो-तीन या तीन-चार तहें कर लेना जरूरी है। ऊपर से गर्म कपड़ा रखना या लपेटना न भूलिए, या अगर यह न हो सके तो गर्दन से नीचे सारे बदन को कम्बल से ढक दीजिए। अगर पेड़ू पर या कहीं भी गीली पट्टी रखने से पहले

के कपड़े भीग जांय तो उन्हें बदल देना चाहिए। कहने की जरूरत नहीं कि बुखारों में अगर शुरू से ही उपवास कराया जाय और पेड़ू पर गीली पट्टियाँ रखी जायँ तो दो-तीन दिन में ही बुखार जरूर चला जायगा और कोई भी उपद्रव न होगा।

गीली पट्टियों के लिए ठंडा पानी काम में लाना चाहिए। पानी जितना ठंढा हो अच्छा है, पर बर्फ मिलाकर पानी ठढा करना ठीक नहीं है। गर्मी में, जब कि ठढा पानी बिलकुल नहीं मिलता, थोड़ी बर्फ मिलाकर पानी ठढा कर सकते हैं।

जब किसी अग मे बहुत तेज दर्द हो, और अगर बन सके तो, गर्म-और-ठढी सेंक देनी चाहिए। अगर सामान न जुटे तो गीली पट्टियों से ही काम लेना चाहिए। अगर तकलीफ मे जलन की मात्रा ज्यादा हो तो गीली पट्टियों का इस्तेमाल ज्यादा अच्छा है। बात यह है कि दोनों के असर करीब करीब बराबर हैं, क्योंकि गीली पट्टी पर गर्म कपड़ा लपेटने से गर्म-और-ठंढी सेंक का ही आनन्द आता है।

(ब) सारे शरीर की गीली पट्टी—

एक तख्त (चौकी) पर या जमीन पर ही चटाई पर या अच्छी तनी खाट पर एक कम्बल फैलाइए। उस पर एक मोटी साफ चद्दर ठढे पानी मे इस तरह निचोड़कर कि पानी न तो बिलकुल ही निकल जाय और न टपकता ही रहे फैला दीजिए। उस पर एक ऐसा पतला कपड़ा ठढे पानी में निचोड़कर फैलाइए जो रोगी की पीठ के नीचे से होता हुआ उसके सीने और पेट को

क ले। (१) अब रोगी को नंगा करके इन कम्बल और गीले कपड़ों पर इस तरह पीठ के बल लिटा दीजिए कि गर्दन से ऊपर सका सिर बाहर निकला रहे पर शरीर का और सारा हिस्सा न कपड़ों पर ही रहे। (२) अब जल्दी से पहले छोटे कपड़े

सारे शरीर की गीली पट्टी, पहिली अवस्था

सारे शरीर की गीली पट्टी, दूसरी अवस्था

को सीने और पेट पर हाथों को बाहर छोड़ते हुए लपेट दीजिए और हाथों को आराम के साथ पेट पर रखते हुए या बगल में ही रखते हुए (३) बड़ी चद्दर को पहले एक तरफ से और फिर

दूसरी तरफ से लाकर लपेटिए । यह खयाल रहे कि शरीर का सारा हिस्सा गीले कपड़े के सम्पर्क मे आ जाय । कपड़े का जो हिस्सा पैरों के आगे निकला हुआ है उसे पैरों से मिलाते हुए अच्छी तरह मोडकर पैरों के ऊपर लाकर रख दीजिए। सारी टाँगो को गीले कपडे के सम्पर्क में अच्छी तरह आना जरूरी है । (४) अब कम्बल को पहले एक तरफ से और फिर दूसरी तरफ से ऊपर लाकर इस तरह लपेटिए कि गर्दन से पैरों तक सारा शरीर उसके अन्दर आ जाय । कम्बल का जो हिस्सा पैरों के आगे निकला हुआ है उसे भी मोडकर पैरों के ऊपर लाकर रखिए और अगर जरूरत हो तो वहाँ पर और ऊपर भी दो तीन सेफ्टी-पिन लगा दीजिए, जिससे कम्बल खुलने
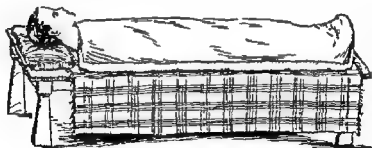
सारे शरीर की गीली पट्टी, तीसरी अवस्था

न पावे । गर्दन के पास भी कम्बल अच्छी तरह लपेटा रहे । नीचे के गीले कपडो और कम्बल को ढीला न रहना चाहिए और न इस तरह कसा ही रहना चाहिए कि रोगी को तकलीफ मालूम

दो। इस पृष्ठ के पहले और अगले पृष्ठों में दिये चारों चित्रों से यह सारी बातें अच्छी तरह समझ में आ जायँगी।
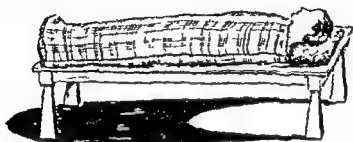
सारे शरीर की गीली पट्टी, पूरी हो जाने पर

पहले तो रोगी को ठंढ मालूम होगी। छोटे बच्चे रोने जैसा करेंगे। लेकिन दो-तीन मिनटों में ही आराम मालूम होने लगता है और कम्बल के कारण शरीर में गर्मी फैलने लगती है। रोगी को उसी हालत में २० से ३० मिनट तक रहने दीजिए। उम्मीद है कि रोगी को पसीना निकलेगा। अगर पसीना न भी निकले तो भी काफी गर्मी मालूम होगी। तीस मिनट के बाद पट्टी खोल दीजिए। अगर रोगी पट्टी में ही सो जाय तो उसे सोने दीजिए। नींद खुलने के बाद पट्टी खोलिए। पट्टी खोलने पर, अगर रोगी सबल है तो, उसे अच्छी तरह, लेकिन जल्दी से, सिर से नहलाकर (डरिए नहीं) कपड़े पहना दीजिए और बिस्तर पर लिटा दीजिए। गर्म कपड़े ओढ़ा देने से उसे आराम मालूम होगा। अगर रोगी सबल नहीं है तो गीले कपड़े या तौलिए से सिर से लेकर सारे शरीर को जल्दी से अच्छी तरह पोंछ

दीजिए। बिस्तर पर लेटने के बाद बिस्तर और ओढ़ने के कपड़ों की गर्मी से अगर उसे फिर पसीना निकले तो पसीने को गीले कपड़े से अच्छी तरह पोंछ दीजिए। फिर रोगी को आराम से लेटने दीजिए।

इस पट्टी का इस्तेमाल किसी तरह के तेज बुखार में करते हैं। पट्टी देने के बाद ही बुखार दो तीन डिग्री कम हो जाता है और धीरे धीरे घटता ही जाता है। एक बार लेखक के एक चार साल के बच्चे को अल्मोड़े के पास एक पहाड़ी गाँव में, जहाँ ठंढ बहुत रहती है, रात के ९ बजे १०६ डिग्री का जोरदार बुखार हो गया। पट्टी देने के बाद बुखार पहले १०३ डिग्री और फिर १०१ डिग्री तक आकर रुक गया। अगर बुखार उसी दिन फिर तेजी से बढ़ने लगे तो तीन चार घंटे बाद पट्टी को फिर दुहराइए। डरने की जरूरत नहीं। अगर बुखार आज बहुत कम होकर कल फिर बढ़ने लगे तो कल फिर पट्टी दीजिए। तीन चार दिन के लगातार इस्तेमाल से कोई भी बुखार निश्चय जाता रहता है। सैकड़े ५० बुखार तो पहले ही दिन चले जाते हैं। जुकाम के शुरू-शुरू में दो दिन इस तरह की पट्टी देना मानो शरीर के विकारों को निकाल कर जुकाम को जल्दी से विदा करने के लिए जादू करना है। बताने की जरूरत नहीं कि जब तक बुखार बना रहे या जब तक जुकाम का वेग बिल्कुल कम न हो जाय उपवास करना जरूरी है। इच्छा होने पर गर्म या ठंढे पानी के साथ नींबू का रस दे सकते हैं। छोटे बच्चों को या कमजोर आदमियों और

गर्भवती स्त्रियों को, मांगने पर, सन्तरे या अनार का रस या टमाटर का सूप तीन-तीन चार-चार घंटे के बाद दे सकते हैं।

बुखार में इस तरह सारे शरीर को ठंडे कपड़े से लपेटने और फिर नहलाने से लोग डरेंगे। लेकिन यह तो मामूली बात है कि बुखार में बदन में आग लगी रहती है। उस हालत में पानी से ही आराम मिल सकता है। पानी का इस्तेमाल किसी भी रूप में इस तरह करना चाहिए कि आग न तो बिल्कुल बुझ जाय और न बढ़ने ही पावे; धीरे धीरे विकारों को जलाते हुए बुझ जाय। देखिए, पट्टियों से किस तरह फायदा होता है। पहले तो ठंडे पानी के लगने से खाल के पास का खून ठंड के कारण अन्दर भाग जाता है और अपनी जगह को बिल्कुल खाली छोड़ जाता है। लेकिन प्रकृति (कुदरत) किसी भी जगह को खाली रखना नहीं चाहती, कुछ नहीं तो हवा से ही भर देती है। इस नियम के मुताबिक़ दूसरे ही क्षण शरीर के अन्दर के हिस्सों से खून आकर खाल के पास की खाली जगहों को भर देता है। इससे खून में हरकत होती है। आप जानते हैं कि शरीर में सारा खेल खून का ही है, और खून में अच्छी तरह हरकत होना जरूरी है। फिर कम्बल से गर्मी पैदा होती है, जिससे रोएँ के छेद खुल जाते हैं और अन्दर के विकार बाहर आ जाते हैं। साथ ही एक तरह की बिजली पैदा होती है, जिससे जीवन-शक्ति बढ़कर रोग को भगा देती है।

अब यह देखना है कि पट्टी में एक ही कम्बल इस्तेमाल करना चाहिए या ज्यादा। अगर बुखार तेज और ज्यादा है तो एक या

अगर कम्बल बहुत हल्का है तो दो। दो से ज्यादा देना ठीक नहीं है। अगर बहुत दिनों तक चलने वाले बुखार में बुखार की गर्मी हल्की रहे तो दो से चार कम्बल तक इस्तेमाल कर सकते हैं। (यह बात कम्बल पर भी निर्भर है। कोई कोई कम्बल भारी और ज्यादा गर्म होता है और कोई हल्का।) फिर अगर रोगी कमजोर है तो ज्यादा कम्बलों से ज्यादा गर्मी पहुँचाने की जरूरत पड़ती है।

दूसरी बात यह है कि सभी रोगियों को पट्टी की हालत में गर्म पानी के साथ नींबू या सन्तरे का रस निचोड़कर या सिर्फ गर्म पानी (इतना गर्म जितना कि आसानी से पिया जा सके) पिलाना अच्छा है। इससे बदन में गर्मी आती है और पसीना निकलने की संभावना रहती है। किसी किसी रोगी को आध-आध घंटे तक भी पट्टी में पड़े रहने पर गर्मी नहीं मालूम होती। ऐसी हालत में बोतलों में गर्म पानी भर कर बगल और टाँगों के पास रख ऊपर से एक और कम्बल ओढ़ा देना चाहिए। अगर बोतल न मिल सके तो ईंट या पत्थर के टुकड़ों को आग में हल्का गर्म कर और उन्हें मोटे कपड़ों में लपेटकर बोतलों की ही तरह इस्तेमाल करना चाहिए।

इस पट्टी को बिल्कुल बन्द जगह में नहीं देना चाहिए। जोर की हवा नहीं, पर काफी साफ हवा का होना जरूरी है। हाँ, नहलाते या बदन पोंछते समय थोड़ी देर के लिए कमरा बन्द कर देना या बन्द कमरे में रोगी को ले जाकर नहलाना अच्छा है।

लेखक ने इस सारे शरीर की गीली पट्टी का बुखार, जुकाम,

पेचक, खारिश (खुजली), कोढ़, दमा और निमोनिया की हालतों में बहुत लाभ और सफलता के साथ इस्तेमाल किया है। दमा में सिर्फ पीठ, सीने और पेट को हर रोज ढकना चाहिए और बीच बीच में दो-तीन दिन के बाद सारे शरीर को। खाल के कठिन रोग में १५-२० दिनों तक यह पट्टी हर रोज दी जाय।

नोट- (१) पट्टी में इस्तेमाल किये हुए कपड़े को दूसरी बार तब तक इस्तेमाल न करना चाहिए जब तक कि वह अच्छी तरह धोया जाकर धूप में न सुखा लिया जाय।

(२) पानी ताज़ा और मामूली ठंढा हो।

(ख) रीढ़ की गीली पट्टी—तख्त पर या ज़मीन पर ही चटाई या कम्बल फैलाकर (खाट पर नहीं) पहले एक तकिया सिरहाने रखिए। फिर इस तकिया से समकोण बनाती हुई कपड़े की एक ऐसी गीली पट्टी रखिए, जो कम से कम आध या एक चौथाई इंच मोटी, एक फुट चौड़ी और दो फुट लम्बी हो। फिर उस पर इस तरह आराम के साथ लेट जाइए कि गर्दन के नीचे से रीढ़ का सारा हिस्सा गीली पट्टी पर अच्छी तरह पड़े। अगर तकिया के ऊँचा रहने से गर्दन के ठीक नीचे का हिस्सा गीली पट्टी से कुछ ऊपर रह जाय तो उस जगह पट्टी के नीचे एक अखबार का गोला लपेटकर या किसी दूसरी चीज को रख दीजिए, जिससे गीली पट्टी ऊपर उठकर शरीर के उस हिस्से के सम्पर्क में आ जाय। साथ ही एक पतला लेकिन पानी में भिगोया और अच्छी तरह निचोड़ा कपड़ा तैयार रखिए। पट्टी पर लेट जाने के बाद इस

कपड़े को सीने और पेट पर अच्छी तरह फैला दीजिए। इसके बाद आराम के लिए और अन्दर गर्मी बनाये रखने के लिए ऊपर से एक या दो कम्बल ओढ लीजिए। चेहरा खुला रहे। दो-तीन मिनट के बाद ही आराम मालूम होने लगेगा। पाँच-छः मिनटों में सिर, आँख, कान, नाक, मुँह में ठढक मालूम होगी और सो जाने की इच्छा सी होगी। अगर पहले दिन नींद न भी लगी तो तीसरे चौथे दिन मे झपकी जरूर आ जाया करेगी। इस पट्टी पर की नींद ज्यादा से ज्यादा एक घटे तक रहती है। नींद खुल जाने पर, या अगर पहले दिन नींद न लगी तो १५-२० मिनट के बाद, उठकर पहले सिर को ठडे पानी से धोकर अच्छी तरह पोंछ लीजिए। फिर गीले कपडे से सारे शरीर को अच्छी तरह पोंछकर कपडे पहन लीजिए।

किसी साफ खुली जगह पर या कमरे मे जहाँ अच्छी हवा आती हो, इस पट्टी को लेना चाहिए, लेकिन गर्मियों मे बन्द और अँधेरे कमरे में ही इसे लेना लोग पसन्द करेंगे।

इस पट्टी से भी जादू का सा असर होता है। आप जानते हैं कि रीढ के अन्दर स्नायु सस्थान (nervous system) की अमल शाखा है। स्नायु-सस्थान के ठीक रहने मे ही शरीर की सब क्रियाएँ होती हैं। बे-ढगा खान पीने और रहने से उसमें गर्मी आ जाती है, जिससे बहुत सी खराबियाँ पैदा होती हैं। इस गर्मी को दूर कर रीढ को मजबूत करने के लिए रीढ की यह गीली पट्टी बहुत अच्छी है। एक आदमी को, जिसे २० वर्षों से अपच

और कब्ज की शिकायत रहती थी, पट्टी के हर रोज बाद साफ पाखाना होने लगा और कुछ ही दिनों मे भूख खुलकर लगने लगी। कहने की जरूरत नहीं कि वह खाने-पीने के नियमो का पालन भी करता था। जिन्हे स्नायविक कमजोरी है, नींद बिल्कुल नहीं या अच्छी नहीं आती, सिर मे खब्त सा रहता है और यों भी जो तनदुरुस्ती को अच्छा रखना चाहते हैं, उनके लिए रीढ की पट्टी बहुत लाभदायक है। गर्दनतोड बुखार (cerebro spinal meningitis) मे इससे बहुत लाभ होता है।

यों तो यह पट्टी जभी जरूरत मामूली हो तभी ली जा सकती है, लेकिन मामूली तौर से तनदुरुस्ती को ठीक रखने और बढाने के लिए दोपहर के खाने के एक घटे बाद इसको लेना बहुत अच्छा है। गर्मी के दिनों मे, जब कि स्कूल कालेज या दफ्तर सुबह मे ही होते हैं या बन्द हो जाते है और सभी लोग दोपहर मे सोना पसन्द करते हैं तो, यों ही न सोकर इस पट्टी पर सोना बहुत लाभदायक होगा।

पट्टी के लिए पानी काफी ठढा हो। थोडी सी बर्फ का इस्तेमाल तभी किया जाय जब कि ठढा पानी न मिलता हो। इस हालत में भी अगर घडे में पहले से रखा ठढा पानी हो तो वह सब से अच्छा है। कमजोर मरीजों के लिए या ठढे पानी से डरने वालों के लिए या गर्दनतोड बुखार मे एक दो बार पहले गुनगुने (बहुत थोडा गर्म) पानी मे पट्टी को भिगोना और निचोडना चाहिए। गर्दनतोड बुखार मे, दिन रात मे, दो दो या तीन-तीन

घंटों का अन्तर दे कर यह पट्टी तीन चार बार दी जा सकती है। जहाँ तक हो गुनगुने पानी का इस्तेमाल न करना ही अच्छा है, पर ऊपर बताई हालतों मे उससे कोई नुक्सान भी नहीं है।

इस रीढ की पट्टी के बदले 'मेहन-नहान' लिया जा सकता है। किसी किसी के लिए पट्टी अच्छी होती है और किसी किसी के लिए 'मेहन-नहान'। 'मेहन-नहान' के बारे में आगे बताया जायगा।

विशेष स्नान या खास खास नहान

प्राकृतिक चिकित्सा मे कई तरह के स्नान या नहान का प्रयोग (इस्तेमाल) किया जाता है। इनमें से कुछ जरूरी नहान नीचे बताये जाते हैं —

पेडू-नहान —
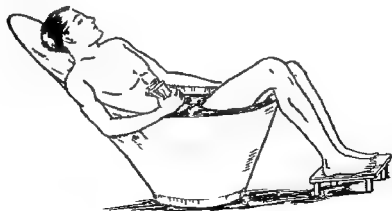
यह लुई कून फ्रिक्शन हिप-बाथ (Friction hip bath) है।

तस्वीर मे दिये हुए टब की तरह एक अच्छा सा टब चाहिए। ऐसा टब इलाहाबाद के बाजार मे कोतवाली के पास ढाई-तीन रुपये मे मिलता है। दूसरी जगह भी मिलता होगा या बनवाया जा सकता है। किसी धातु या लकड़ी का यह टब हो सकता है, पर मामूली तौर से लोहे की चद्दर का टब अच्छा है। दिहातो मे मिट्टी के नांद (नाद) से ही काम निकालते हैं, क्योंकि इस नहान में जरूरी बात यह है कि नाभी से लेकर जाँघ से कुछ आगे तक का बदन का सारा हिस्सा पानी के अन्दर रहे। पेट का कुछ हिस्सा भी अगर पानी मे रहे तो कुछ हर्ज नहीं, लेकिन सीना, जिसके अन्दर बाईं तरफ दिल और उसके पास ही दाहिनी तरफ फेफड़े हैं, और गर्दन-सिर को पानी से ऊपर रहना चाहिए। इसी तरह घुटनों के ऊपर का कुछ हिस्सा, घुटनो और सारी टाँगों को पानी के बाहर रहना चाहिए। पीठ की तरफ अगर पानी कुछ ऊँचा भी पहुँच जाय तो हर्ज नहीं। तस्वीर में दिखाये गये की तरह बिलकुल नंगा होकर टब मे आराम से बैठना चाहिए। पैरो के आराम के लिए, अगर जरूरी हो तो एक तिपाई या लकड़ी की ऊँची पटरी या ईंट को काम में लाना चाहिए। पहले से ही एक मोटे चिकने कपड़े के टुकड़े या तौलिये को तहकर और लपेट करके एक गोला सा बना लेते है। उसी से पूरे पेड़ू को एक तरफ से दूसरी तरफ और ऊपर से नीचे लगातार रगड़ना चाहिये। रगड़ इतने जोर की न हो कि तकलीफ़ मालूम होने लगे और न इतनी हल्की ही हो कि कुछ भी जोर

न मालूम हो। शुरू शुरू मे इस नहान को ५ से ७ मिनट तक ही लेते हैं, फिर हर दो-तीन दिनों के बाद एक-एक या दो-दो मिनट बढ़ाते रहना चाहिए। दस मिनट तक पहुँचकर कम से कम दस दिन आगे नहीं बढ़ना चाहिए। इसके बाद समय को बढ़ा कर १५ मिनट कर सकते हैं। ज्यादा से ज्यादा आध घंटे का समय काफी है, पर जैसा कि ऊपर बताया गया है, समय को धीरे धीरे बढ़ाना चाहिए। जल्दीबाज़ी करना ठीक नहीं है। बहुत कम हालतों में १५-२० मिनट से ज्यादा देर के लिए पेडू-नहान की जरूरत पड़ती है। गर्मी के दिनों मे, और अगर रोगी सबल है तो, पहले दिन से ही १० मिनट का नहान शुरू कर सकते हैं, लेकिन उधर २० मिनट से आगे नहीं बढ़ना चाहिए।

मामूली तौर पर तनदुरुस्ती ठीक रखने की गरज से एक मामूली तनदुरुस्त आदमी के लिए सवेरे या शाम को एक बार १५ मिनट का पेडू-नहान काफी होगा। शुरू बुखार की हालत में दो-तीन दिन सुबह-शाम ५-७ मिनट का (गर्मी मे १०-१० मिनट का) नहाना (अगर रोगी कमजोर हुआ तो ५ मिनट का ही) लेना चाहिए। बुखार छूट जाने के बाद भी ५-७ दिन तक उसे जारी रखना चाहिए। अगर बुखार में परेशानी बढ़ने लगे तो पहले दिन से ही तीन नहान दिन भर मे दे सकते हैं। कमज़ोर रोगियों को भी ज्यादा तेज़ बुखार की हालत मे तीन-चार घंटे का अन्तर देकर तीन तीन मिनट का नहान देते हैं। पानी के अन्दर पेडू का मलना कोई खतरनाक बात नहीं है, लेकिन बदन मे ठंढ पहुँच जाने के

बाद फिर से गर्मी का आ जाना जरूरी है। इसलिए नहान के बाद ही बदन को अच्छी तरह पोंछकर कमजोर रोगियों को बिस्तर पर लिटा देते हैं और ऊपर से काफी गर्म कपड़े डालते हैं। इस तरह रहना आध घंटे के लिए काफी होगा। जिनके

माता बच्चे को पेड़ू-नहान दे रही है

बदन में गर्मी जल्द नहीं आती उनके पेड़ू पर एक फलालैन के या किसी भी ऊनी कपड़े को लपेटकर ऊपर से रजाई या कम्बल डाल देना चाहिए। जो ज्यादा कमजोर नहीं है उसे गर्म कपड़े पहन या ओढ़कर जितनी तेजी से बन सके टहलना चाहिए। जो कसरत कर सकता है उसे या तो बिलकुल नंगा या हल्के कपड़े

पहनकर अपनी ताक़त भर कसरत करनी चाहिए। गर्मी के दिनों में गर्म कपड़े पहनने की जरूरत नहीं है। इस नहान के बाद बदन पर पसीना का आना बहुत अच्छा समझा जाता है, लेकिन कमजोर रोगियों को ऐसी कोई भी हरकत नहीं करनी चाहिए, जिससे थकान हो। उनके लिए इतना ही काफी है कि बदन में गर्मी आ जाय। किसी भी हालत में पसीने के लिए चिंता न करनी चाहिए।

इस नहान को ऐसे बन्द कमरे में, जहाँ थोड़ी सी साफ़ हवा भी मिलती हो, लेना चाहिए।

अब सवाल यह है कि पानी कितना ठंढा हो। जितनी भी ठंढ आसानी से सही जा सके ठीक है। जाड़ों में कमजोर रोगियों के लिए ठंढे पानी में बहुत थोड़ा गर्म पानी मिलाकर ठंढ को मार देते हैं। उसे गर्म नहीं करना चाहिए। साधारण हालत में पहले नल या कुएँ के ताजा पानी से काम लेना चाहिए। फिर धीरे धीरे ज्यादा ठंढा पानी इस्तेमाल करना चाहिए। गर्मियों में या वैसे भी घड़ों में पहले से पानी भरकर और घड़ों को रेत पर रखकर पानी को तैयार करना जरूरी होता है। जब किसी भी तरह ठंढा पानी न मिले तो थोड़ी सी बर्फ मिलाकर पानी को ठंढा कर लेते हैं। ज्यादा बर्फ मिलाने से पानी जल्द गर्म हो जाता है और गर्म पानी से तो अपना काम निकल ही नहीं सकता। यहाँ तो बदन के अन्दर की दाह (गर्मी) को, जो कि ज्यादातर पेड़ू में ही रहती है, शान्त करना है—इसलिए पानी जितना ठंढा हो अच्छा है। जाड़ों में भी अगर कमरे के अन्दर एक या दो बिल्कुल जलते

कोयले की (जिसमें धुआ न हो) अंगीठी टब के पास रख ली जायँ तो ठढे पानी से आराम मिलता है। अगर अगीठी न मिले तो ऊपर से एक कम्बल इस तरह डाला जा सकता है कि वह पीठ की तरफ से आकर नीचे मे ऊपर को उठता हुआ पैर के नीचे दबा रहे। यह इस तरह किया जाता है। टब के पीछे एक कुर्सी रखिए। उस कुर्सी पर ईट के सहारे कम्बल का एक सिरा दबाकर कम्बल
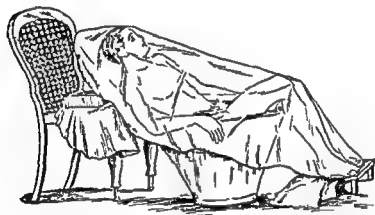
पेडू नहान में बदन को ढकना

को सिर के ऊपर से पैर की तरफ ले जाइए और उसके दूसरे सिरे को या तो पैरों के नीचे दबा दीजिये या उधर भी एक दूसरी कुर्सी रखकर ईट के सहारे कम्बल को ठीक ठीक रख दीजिए। इसी हालत में कमजोर रोगियों को पेडू-नहान लेना चाहिए।

किसी किसी कमजोर रोगी के पैर ठढे रहते हैं। इनके लिए गर्म मोजे पहनकर या पैरो पर गर्म कपडे डालकर पेडू-नहान लेना

ठीक होगा। जैसा कि ऊपर बताया गया है, सीने को भीगना नहीं चाहिए।

इस नहान को सभी इलाज के शुरू में कुछ दिनों तक लेना चाहिए। बुखार के शुरू में अगर यह नहान लिया जाय तो दो-तीन नहान के, या कभी कभी तो पहले ही नहान के, बाद बुखार भाग जाता है। जितने भी बुखार होते हैं शुरू शुरू में मामूली होते हैं। आगे चलकर वे या तो टाइफॉयड (मियादी) या निमोनिया या चेचक या गर्दनतोड़ बुखार या और किसी बीमारी का रूप धारण करते हैं। अगर शुरू में ही पेड़ू-नहान या सारे शरीर की गीली पट्टी से काम लिया जाय तो कोई भी उपद्रव न हो।

यह पूछा जा सकता है कि बुखार में कब पेड़ू-नहान और कब सारे बदन की गीली पट्टी लेनी चाहिए। इसके लिए कोई खास नियम नहीं है। हाँ, अगर बदन में बहुत जलन हो, जैसी कि लू लगने पर या चेचक निकलने के पहले वाले बुखार में होती है, तो गीली पट्टी से बहुत आराम मिलता है। अगर टब न मिल सके तो हर हालत में गीली पट्टी ही ठीक होगी। अगर बुखार बहुत तेज हो और बदन में जलन हो, जैसी कि चेचक के बुखार में होती है, तो ४-५ घंटों का अन्तर देकर दोनों लेना चाहिए। बात यह है कि उपवास के साथ साथ कोई भी क्रिया (कार्रवाई) कर ली जाय या सिर्फ एनीमा ही लेकर पेट साफ कर लिया जाय तो नई बीमारी की कमर टूट जाती है और आगे कुछ भी खतरा

नहीं होता। खतरा या गड़बड़ी तो तभी होती है, जब कि गर्म दवाएं झोंकी जाती है और दवाओं की गर्मी को शान्त करने के लिए दूध या साबूदाना या और कुछ खिलाया-पिलाया जाता है।

किसी भी पुराने रोग में, उचित आहार (मामूली रोटी या बे-छटे चावल का भात और पत्तीदार भाजी या लौकी, परवल, नेनुआ, तरोई या सिर्फ फल या सिर्फ भाजी-तरकारी) के साथ पहले एक महीना तक सुबह-शाम पेड़ू-नहान लेना चाहिए। सैकड़े ५० पुराने रोग तो इसी से जाते रहेंगे, लेकिन कुछ पुराने रोग बहुत हठी होते हैं। उनको दूर करने के लिए और और नहान और क्रियाएँ जरूरी होती हैं। इनमें एक नहान 'मेहन-नहान' है, जो अभी आगे बताया जायगा।

पेड़ू-नहान से पेड़ू के अन्दर के जरूरी कल-पुर्जे ठीक होते है। पेड़ू के अन्दर छोटी आँत और बड़ी आँत है। छोटी आँत पचे भोजन से रस खींचती है और बड़ी आँत भोजन के बचे बेकार चीजों (विकार या मल) को पाखाने के रूप में बाहर निकालती है। इन दोनों का काम ठीक होना चाहिए। खासकर अगर बड़ी आँत के रास्ते शरीर के अन्दर का विकार बाहर न निकल जाय तो अनेकों गड़बड़ी पैदा होती है। पेशाब निकालने वाले कल-पुर्जों को भी पेड़ू से सरोकार है। बे-कायदा रहन-सहन और खान-पान से पाखाना-पेशाब ठीक ठीक नहीं होता, जिससे पेड़ू के अन्दर विकार और गर्मी जमा रहती है। फिर यहीं से विकार दूसरे दूसरे रूपों में फैलकर शरीर के दूसरे हिस्सों में जा बसते हैं, जिससे

तरह तरह की बीमारियाँ होती हैं। पेड़ू-नहान से सिर्फ पेड़ू की ही गर्मी नहीं बल्कि सारे शरीर की गर्मी दूर होती है। बुखार में सब से ज्यादा गर्म शरीर का यही हिस्सा रहता है। इस हिस्से में बहुत ज्यादा गर्मी रहने से और हिस्सों में ठंडक छा जाती है और इसी हालत को जाड़ा-बुखार कहते हैं। पेड़ू-नहान लेने का मतलब यह है कि गर्मी की जड़ को ही ठंडा किया जाय और इस नहान से, जैसा कि ऊपर बताया गया है, और हिस्सों से भी विकार खिंचकर पेड़ू में वापस आ जाता है और पेशाब के रूप में बाहर निकल जाता है।

यह जरूरी है कि पेड़ू-नहान या किसी भी नहान के साथ भोजन का परहेज जरूरी है। लोग पूछेंगे कि ऐसा क्यों है। परहेज इसलिए चाहिए कि विकारों के निकलते समय ऐसा न हो कि बाहर से नये विकार आते रहें।

बहुत पुराने रोगों में बहुत दिनों तक पेड़ू-नहान या और नहानों की जरूरत पड़ती है। ऐसी हालत में एक-सवा महीना नहान लेकर आठ-दस दिन के लिए छोड़ देते हैं, फिर एक-सवा महीने तक नहान जारी रखते हैं। पुराने रोगों में, खासकर जो आठ-दस या २५-३० साल का पुराना है उसमें, कई महीने के इलाज से पूरा फायदा होता है। इसलिए ऐसी हालत में धीरज के साथ इलाज करते जाना चाहिए। जब इलाज को बहुत दिनों तक जारी रखना हो तो सुबह-शाम चोकरदार आटे की रोटी या बे-छटे चावलों के भात और सादी पकी भाजी खानी चाहिए।

इससे भी अच्छा होगा एक समय रोटी-भाजी खाना और दूसरे समय फल।

बहुत दिनो तक चलने वाले पेडू-नहान मे किसी किसी को दो-तीन दिनो के बाद से ही बहुत मात्रा में पेशाब और पाखाना होने लग जाते है। किसी किसी के पेशाब ज्यादा आता है लेकिन पहले कुछ दिनों के लिए कब्ज बना रहता है। ऐसी हालत मे नहान के पहले या बाद एनीमा से हर रोज पेट साफ कर लेना चाहिए। एनीमा और नहान में मामूली तौर से एक घंटे का अंतर जरूर रहे। कमजोरों को दो घटे का अंतर देना चाहिए। लेकिन किसी किसी हालत मे, जैसे पेट के सख्त दर्द मे पहले एनीमा और उसके तुरन्त बाद ही पेडू-नहान लिया जा सकता है। किसी किसी के मुँह का स्वाद फीका हो जाता है। ऐसे रोगी को भी तब तक हर रोज एनीमा लेना चाहिए जब तक स्वाद ठीक न हो जाय। किसी किसी का कोई दबा हुआ पुराना रोग फिर से उभड़ जाता है। इस हालत मे घबराना न चाहिए, क्योकि प्राकृतिक चिकित्सा (कुदरती इलाज) मे सभी खराबियाँ जड से दूर हो जाती हैं। रोगों के उभाड़ के बारे मे आगे बताया जायगा।

(ब) मैहन-नहान—

यह लुई कूने का फ्रिक्शन सिज बाथ (friction sitz bath) है। पहले बतलाए टब मे या किसी भी टब मे एक तिपाई रख दी जाती है। टब मे इतना पानी भरा जाता है कि वह तिपाई पर चारों ओर से टकराता रहे लेकिन बैठने की जगह गीली न हो।

नहाने वाला पैरों को टब के बाहर निकालकर उसी तिपाई पर बैठ जाये और फिर एक मोटे या मुलायम कपड़े को पानी में भिगो भिगोकर लगातार जननेन्द्रिय (पेशाब की इन्द्रिय) को धोवे।

अगर नहाने वाली औरत है तो कपड़े से एक बार जितना पानी उठाया जा सके उतना उठाना चाहिए और ऊपर से नीचे लगातार धोना चाहिए। जननेन्द्रिय को बहुत जोर से नहीं रगड़ना चाहिए। एक दम नंगी होकर नहाना चाहिए। टाँग, पैर और शरीर का ऊपरी हिस्सा सूखा रहना चाहिए। अगर चूतड़ पानी से भीग जाय तो कोई हर्ज नहीं। मासिक धर्म के समय यह या और कोई स्नान बन्द रखना चाहिए। मासिक धर्म में ज्यादा से ज्यादा ४ रोज लगते हैं, लेकिन अगर ४ रोज से अधिक खून जारी रहे तो यह समझ लेना चाहिए कि स्त्री के बीमारी है। इसलिए ऐसी हालत में छठे दिन से फिर नहाना शुरू कर देना चाहिए। स्त्री-रोगों के बारे में आगे बताया जायगा।

यह स्नान रोगी की उम्र और उसके रोग के अनुसार १५ मिनट से एक घंटे तक लिया जा सकता है। जाड़ों में कमरे को गर्म रखना चाहिए। इस नहान में पानी जितना ठंढा होगा उतना ही फायदा होगा लेकिन इतना ठंढा न हो कि स्नान करने वाले को तक्लीफ मालूम हो।

टब इतना बड़ा अवश्य हो कि एक स्टूल रक्खा जा सके और उसमें लगभग २० सेर पानी आ जाय। अगर टब छोटा होगा तो पानी जल्द गर्म हो जायगा।

मर्दों के लिए इस नहान की वही विधि है जो स्त्रियों के लिए। स्नान करने वाले पुरुष को चाहिए कि वह इन्द्री को बन्द कर ले और फिर जिन उँगलियों से सुविधा हो उसके अगले हिस्से के चमड़े को बायें हाथ से खींचकर पानी के भीतर ले जाय और दाये में कपड़ा लेकर उससे उसे लगातार ऊपर से नीचे रगड़ रगड़ कर धीरे धीरे धोवे। इन्द्री का बिल्कुल नीचे का हिस्सा, बल्कि बाहर खिंचा हुआ चमड़ा ही धोना इस नहान में जरूरी है। इसलिए इसे खिंचे हुए चमड़े को सामने से बिल्कुल नहीं पकड़ना चाहिए। सिर्फ एक तरफ से उंगलियों के सहारे इस तरह चमड़ा खींचना चाहिए कि इस हिस्से को अच्छी तरह धोया जा सके।

मुसलमानों का यह ऊपरी चमड़ा खतने के समय काट दिया जाता है। उनको इस तरह बैठना चाहिए कि वे उस हिस्से को तौलिए से रगड़ सकें जो अंडकोष और पाखाने के रास्ते के बीच है।

जो रोगी भीतर की सूजन से बीमार हैं या जिनके भीतरी अंगो में पुराने रोग के कारण विकार आ गया है उनकी भीतरी सूजन कुछ नहान के बाद ही नीचे खिंचकर जननेन्द्रिय के दोनों तरफ आ जाती है। इससे घबड़ाना न चाहिए। नहान को जारी रखना चाहिए और उस जगह पर मिट्टी की पट्टी (आगे देखिए) और भाप-नहान देना चाहिए।

सवाल यह है कि इस नहान के लिए जननेन्द्रिय का ही चमड़ा क्यों चुना गया। सच्ची बात यह है कि इस काम के लिए इससे बढ़कर कोई भी दूसरी जगह नहीं है। शरीर के किसी भी

हिस्से में ख़ास ख़ास स्नायु के इतने सिरे नहीं हैं जितने जननेन्द्रिय के इस हिस्से में हैं। इन स्नायु-जाल का संबंध दिमाग से है, इसलिए इस हिस्से को धोने से सारे शरीर पर उसका असर पड़ता है। जननेन्द्रिय को धोने से भीतर बढ़ी हुई गर्मी केवल कम नहीं हो जाती बल्कि स्नायु-संस्थान में भी ताजगी आ जाती है। इससे शरीर के सभी हिस्सों में जीवन-शक्ति पहुँचती है। तन्दुरुस्ती के लिए दो ही बातें ज़रूरी हैं—भोजन का ठीक ठीक पचना और स्नायु-संस्थान का ठीक हालत में रहना। सो ये दोनों बातें पेडू-नहान और मेहन-नहान से हो जाती हैं।

ऊपर बताया गया है कि टब में तिपाई रख और उसी पर
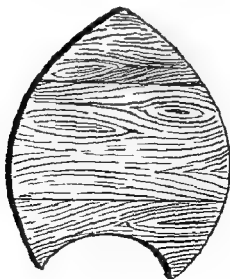
मेहन नहान के लिए काठ की पटरी

बैठकर इस नहान को लेना चाहिए, पर क्या बिना टब के यह नहान नहीं लिया जा सकता ? जरूर लिया जा सकता है। जिस तरह भी *बिना पैरों को भिगोए* जननेन्द्रिय धोया जा सके धोना चाहिए। एक कुर्सी या चौकी पर बैठ और अपने बिल्कुल पास सामने एक बड़ी बाल्टी रखकर भी वही काम हो सकता है। ध्यान सिर्फ इस बात का रखना चाहिए कि पानी उछल उछलकर पैरों पर न पड़े। टब में ही तिपाई रखने के बदले तस्वीर में दी हुई पटरी की तरह काठ की पटरी इस्तेमाल की जा सकती है। इस पटरी पर बैठकर आगे के आधी गोलाई के कटे हिस्से में जो पानी गिरता रहता है उसी में इन्द्री को डुबोकर मेहन-नहान लिया जा सकता है।

इस नहान के बारे में भी वही नियम लागू हैं जो पेड़ू-नहान के लिए बताये गये हैं।

पूछा जा सकता है कि किन हालतों में पेड़ू-नहान और किन हालतों में मेहन-नहान लिया जाता है। बात यह है कि बहुत हालतों में दोनों साथ-साथ चलते हैं। पुराने रोगों में पहले कुछ दिनों तक सुबह-शाम पेड़ू-नहान और इसके बाद सुबह को पेड़ू-नहान और शाम को मेहन-नहान या सुबह को मेहन-नहान और शाम को पेड़ू-नहान लेते हैं। औरतों की बीमारियों में कुछ दिनों तक दोनों नहान लेकर फिर सिर्फ मेहन-नहान को ही दोनों समय जारी रखना होता है। किसी भी हालत में, जैसे चेचक में जब कि पेड़ू पर भी दाने निकले हों, या किसी हालत में जब कि पेड़ू-नहान

लेते न बने तो सिर्फ मेहन-नहान से ही काम लेना चाहिए। स्नायु की खराबियों मे, नींद न आने की हालत में, सिर मे बे-चैनी रहने की हालत में, मृगी और पागल-पन इत्यादि रोगों में मेहन-नहान बहुत फायदे का होता है।

मेहन-नहान के बदले या उसके साथ साथ *रीड की गीली पट्टी*, जो पहले बतलाई जा चुकी है, बहुत फायदे के साथ ली जा सकती है। इन सब नहान या गीली पट्टी के इस्तेमाल में यह देखना चाहिए कि रोगी पानी से घबराता है या नहीं और अगर घबराता है तो कितना घबराता है। फिर उसी के अनुसार काम करना चाहिए। पानी के इस्तेमाल से खराबी तो नहीं होती, पर पहले एक-दो बार रोगी का मिजाज और ख्वाहिश (इच्छा) देखना भी जरूरी है।

पेडू और मेहन-नहान के संबंध में इन बातों का ख्याल रखना चाहिए—(१) बधे समय पर ये नहान हर रोज लिये जायँ। (२) इन नहानों के दो घंटे बाद या पहले मामूली स्नान कर सकते हैं। लेकिन चिकित्सा के लिए पहले यह नहान लेकर और तब दो घंटे के बाद मामूली तौर पर नहाना चाहिए। मजबूत आदमी, जो तनदुरुस्ती बनाये रखने के लिए यह नहान लेते हैं, मामूली तौर पर नहाने के बाद तुरन्त ही पेडू या मेहन-नहान ले सकते हैं लेकिन रोगियों और कमजोरों के लिए दोनों नहानों में अंतर देना जरूरी है। इन नहानों के एक घंटे बाद भोजन कर सकते हैं, पहले नहीं। (३) नहान के बाद पानी पी सकते हैं, पर

बहुत ठंडा नहीं। (४) भोजन के बाद कम से कम दो घंटे के बाद नहान लेना चाहिए। लेकिन अगर भोजन के बाद कोई तकलीफ, खास कर पेट की, शुरू हो जाय तो दो घंटे से पहले भी यह स्नान लिये जा सकते हैं। (५) नहान के दिनों में, भोजन पर बहुत खयाल रखना चाहिए। मिर्च-मसाले, प्याज-लहसुन और तेल की पक्की चीज या और गर्म चीज जैसे चाय, कहवा और तम्बाकू, का व्यवहार बिलकुल मना है। (६) ब्रह्मचर्य का पालन जरूरी है। (७) जब बदन ठंडा रहे तो कोई नहान न लेना चाहिए। बदन को रगड कर गर्म कर लीजिए।

ठंडा बैठक-नहान—

ऊपर बताये गये पेड़ू और मेहन-नहान जर्मनी के मशहूर चिकित्सक लुई कूने के निकाले हुए हैं। आज कल के प्राकृतिक चिकित्सक एक प्रकार के मामूली बैठक-नहान से काम लेते हैं और इसे वे सिज-बाथ (sitz bath) कहते हैं। इस में एक ऐसे मामूली गोले टब में बैठा जाता है, जिसमें ४-५ इंच गहरा ठंडा पानी रहे और इस तरह बैठा जाय कि पैर, चूतड और जननेन्द्रिय (बहुत कुछ) पानी में रहें और घुटने पानी के बाहर ऊपर उठे रहें। टब में बैठने के बाद ही घुटनों को अगल-बगल में फैलाते हुए हाथों से पेड़ू पर पानी छिडकना चाहिए और तब दोनों हाथों से पेड़ू को तेजी से रगडना चाहिए। फिर पानी में डूबे अंगों को हाथों से तेजी से रगडना चाहिए और तब पानी से निकल कर तौलिये से बदन पोंछ लेना चाहिए। सबल आदमी हाथ से ही

शरीर को रगड़-रगड़कर पानी सुखा सकते हैं। इस नहान को ३-४ मिनट से शुरू करके १०-१२ मिनट तक ले जा सकते हैं। पानी सहने के लायक ठंडा हो, पर आगे चलकर जितना ठंडा होगा अच्छा होगा।

इस नहान से शरीर के निचले हिस्से के कल-पुर्जों, खास कर जननेन्द्रियों की हालत सुधरती है। पुराने रोगों में पेडू-नहान और मेहन-नहान के बदले यह नहान सुबह में लिया जा सकता है।

गर्म और ठंडा बैठक-नहान—

इस नहान में दो टबों में से एक मे ४-५ इंच गहरा गर्म पानी और दूसरे में उतना ही ठंडा पानी रखकर पहले गर्म पानी वाले टब मे २-३ या ४ मिनट और तब १ मिनट के लिए ठंडे पानी वाले टब में बैठना चाहिए। इसी तरह दो-तीन बार बारी बारी से गर्म और ठंडे पानी में बैठना चाहिए। बैठने का ढंग वही रहे जैसा कि ठंडे बैठक-नहान के लिए बतलाया गया है, लेकिन इसमें शरीर को बहुत हल्के हल्के या नहीं रगड़ना चाहिए।

यह नहान स्त्री-रोगों में, जिसमें कठिनाई के साथ मासिक होता है, गुर्दे और पेशाब की थैली में तकलीफ की हालत में या बुरे पेट-दर्द मे, विशेषकर लाभदायक होता है। इसे भरसक रात में सोने से पहले लेना चाहिए, लेकिन कम से कम एक घंटे का अंतर खाना और नहान में जरूर हो।

डाक्टर हेनरी लिन्डल्हार

शिकागो (अमरिका)-निवासी। इन्होंने डाक्टर होते हुए भी औषधि का व्यवहार छोड़ दिया और प्राकृतिक चिकित्सा को अपनाया। इन्होंने सिद्ध किया कि तीव्र रोग अपना चिकित्सक आप ही है

टांगों का गर्म-नहान—

पुराने या नये रोगों में जब कि हल्का हल्का दर्द बना रहता हो या बहुत कमजोरी मालूम होती है और पैर ठंडे रहते हों तो रात मे सोने से पहले या सुबह में बहुत सवेरे और कभी कभी सुबह और रात में कई बार पैरों के गर्म-नहान से बहुत लाभ होता है। इसके लिए दो बाल्टी या ऐसे बर्तन चाहिए, जिनमें घुटनों के कुछ नीचे तक टाँगें आ सकें। इन बर्तनों में पहले से ऐसा गर्म पानी रखना चाहिए, जिसे रोगी बर्दाश्त कर सके। फिर उसमे ज्यादा गर्म पानी मिला देना चाहिए। पानी इतना गर्म कभी न हो कि टागे जल जायें। यह नहान ५-१० मिनट से लेकर १५-२० मिनट तक लिया जा सकता है। नहान के समय चेहरा छोड़कर रोगी के सारे शरीर को अच्छी तरह ढके रखना चाहिए। नहान के बाद, अगर रोगी साधारणत मजबूत है तो, ठंढे गीले कपडे से टांगों को पोछ देना चाहिए।

इस नहान से सिर की गर्मी खिंचकर खून का दौरान (रक्त-सचार) शरीर के सब हिस्सों मे बराबर हो जाता है। पुराने बुखार, नया या पुराना सूखा जुकाम या और किसी बीमारी मे (सिर मे चक्कर की हालत मे नहीं) इस नहान का इस्तेमाल फायदेमन्द होगा।

चेतावनी—

ऊपर जितने भी नहान बताए गये हैं वे सभी बहुत फायदे के हैं, पर पुराने रोगों के इलाज मे, खास कर जिन रोगियों ने

जहरीली दवाओं को खा खाकर रोग के लक्षण दबाये हैं उनके इलाज में, ठंढे नहानों की ज्यादती शुरू में नहीं करनी चाहिए। ज्यादती और जल्दीबाजी से पुराने छिपे लक्षण बुरी तरह उभड़ते हैं। ऐसी हालतों में पहले कुछ (कम से कम १५) दिनों तक सिर्फ एक बार एनीमा-लेकर और भोजन-सुधार से शरीर को शुद्ध करना चाहिए। अगर रोगी सबल है तो पहले तीन दिनों का पूरा उपवास और एक हफ्ते तक सिर्फ फलाहार और एनीमा-प्रयोग और भी अच्छा होगा।

नहान कितनी देर के लिए हो, पानी कितना ठंढा या गर्म हो, इन सब बातों पर ध्यान रखने और होशियारी से काम करने से कोई अन्देशे की (चिन्ताजनक) बात नहीं होती। डरिए नहीं, लेकिन समझदारी और होशियारी से काम कीजिए।

बहुत ही ज्यादा कमजोर रोगी को शुरू-शुरू में कोई नहान न दीजिए। सिर्फ पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी से और जब-तब हल्के एनीमा से काम लीजिए।

धूप या भाप से काम लेना

धूप बड़े काम की चीज है। वह मुफ़ की दवा है, लेकिन अफ़सोस कि हम उससे फ़ायदा नहीं उठाते। चमड़े की बीमारियों में, गठिया वग़ैरह के दर्दों की हालत में और उन हालतों में, जिनमें शरीर में जगह-ब जगह गोली गोली गाँठें और गुमड़ियाँ हो जाती हैं, धूप-नहान से बहुत फायदा होता है। तनदुरुस्ती की हालत में भी अगर हर रोज़ थोड़ी देर के लिए हमारे शरीर में धूप और हवा लगे तो बहुत अच्छा हो। धूप से जीवन-शक्ति मिलती है और धूप से रोगों के कीड़े भी मरते हैं।

धूप-नहान—

धूप-नहान के लिए जमीन पर या तख्त या खाट पर चटाई या दरी या कम्बल डालकर उस पर ऐसी जगह लेटिये जहां धूप तो काफ़ी हो पर हवा तेज़ न हो और जहां आप नंगे लेट सकें। सिर को केले के पत्तों या सूखे (गीले नहीं) कपड़ों से या दोनों से या छतरी से अच्छी तरह ढक लीजिए और जितनी देर इच्छा हो और अच्छा मालूम हो धूप में लेटे रहिए। पसीना निकल जाय तो बहुत अच्छा है, लेकिन शुरू शुरू में हो पसीना निकालने के लिए तकलीफ़ सहकर बहुत देर तक धूप में न रहिए। तीन-चार बार के धूप-नहान से पसीना जरूर निकलने

लगेगा। बात यह है कि धूप से रोग के लिए दवा मिलने के अलावा शरीर के अन्दर का विकार भी उखड़ता है। इसीलिए शुरू शुरू में उतावला नहीं होना चाहिए। विकार को उखाड़ना और उसको बाहर निकाल देना जरूरी है, पर शुरू में ही जल्दी-बाजी नहीं करनी चाहिए। गर्मियों में पहले तीन-चार बार तक १५-२० मिनट के लिए और उसी तरह जाड़ों में आध घंटे के लिए धूप-नहान काफी होगा। फिर तो घंटे आध घंटे तक धूप-नहान का आनन्द ले सकते हैं। कमजोरी की हालत में गर्मियों में ५ मिनट और जाड़ों में १० मिनट से शुरू करना चाहिए।

कुछ प्राकृतिक चिकित्सकों की राय है कि धूप-नहान लेते समय सिर को अच्छी तरह ढकने के अलावा सारे शरीर को केले के पत्ते या किसी और पत्ते या एक पतले गीले या सूखे कपड़े से ढक लेना चाहिए। लेकिन यह राय अब ठीक नहीं समझी जाती। खासकर हिन्दुस्तान में ऐसा करना बिल्कुल जरूरी नहीं है। हाँ, अगर एकान्त जगह न मिले तो पत्ते या कपड़े से शरीर को ढक सकते हैं, पर पूरा फायदा तो तभी होगा, जब कि सूरज की किरणें सीधी शरीर पर पड़ें। इसी तरह, उन लोगों का कहना है कि हर रोज-धूप नहान नहीं लेना चाहिए। हफ्ते में एक-दो बार काफी है। पर अब यह साबित हो गया है कि हर रोज के धूप-नहान से फायदा छोड़कर खराबी नहीं हो सकती।

जाड़ों में धूप नहान के लिए १२ और २ बजे के बीच के दोपहर का समय सब से अच्छा है। गर्मियों में ८ से १०-११ बजे

तक सुबह और फिर ३ से ५ बजे तक शाम के समय अच्छे हैं। खयाल रहे कि लू चलते समय धूप में लेटना या बैठना ठीक नहीं।

ऊपर कहा गया है कि धूप-नहान से शरीर के विकार उखड़ते हैं, साथ ही शरीर में ज्यादा गर्मी भी आती है। इस गर्मी को शान्त करने और विकारों को पेड़ू में लगाकर पेशाब-पाखाने के रूप में बाहर निकाल देने के लिए धूप-नहान के बाद बन्द कमरे में ठंडे पानी से सिर से जल्दी नहाकर बदन पोंछ लेना चाहिए और बदन पोंछने के बाद, शक्ति के अनुसार ७ से १५ मिनट का पेड़ू-नहान लेना चाहिए। अगर रोगी बहुत कमजोर है तो उसे नहाने के बदले गीले कपड़े से सिर और सारा बदन अच्छी तरह पोंछकर पेड़ू-नहान लेना चाहिए। अगर धूप-नहान ज्यादा देर के लिए हुआ है तो पेड़ू-नहान १५ मिनट तक के लिए ले सकते हैं। अगर पेड़ू-नहान के लिए टब नहीं है तो गीले कपड़े की ठंडी पट्टी पेट पर २०-२५ मिनट तक रखना चाहिए। पेड़ू-नहान के बाद कपड़े पहनकर कुछ दूर टहलना या हल्की कसरत कर लेना या कुछ देर के लिए सिर को ढककर फिर धूप में बैठ जाना अच्छा है। ऐसा करने से शरीर में मामूली गर्मी आ जाती है। अगर धूप-नहान के बाद ही पेड़ू-नहान न बन पड़े तो उसी दिन किसी दूसरे समय पेड़ू-नहान लेना चाहिए, लेकिन कम से कम सिर से नहा लेना या बदन पोंछना जरूरी है।

अगर जरूरत हो तो सारे शरीर को धूप में रखने के बदले किसी खास अंग को धूप में रख सकते हैं। धूप से उठने के बाद

उस अंग को गीले कपड़े में पोंछ देना या पानी से धो देना चाहिए। पेड़ू-नहान की जरूरत नहीं है।

भाप-नहान—

जब धूप न हो या धूप हल्की हो या गठिया इत्यादि रोगों में, जब कि तकलीफ ज्यादा हो या एक्जिमा और कोढ़ जैसे रोगों में, सारे शरीर को या किसी खास अंग को भाप-नहान देते हैं। लेकिन भाप-नहान से ज्यादा कमजोरी होती है, इसलिए सारे शरीर का भाप-नहान हर रोज नहीं लेना चाहिए। किसी खास अंग का भाप-नहान हर रोज, और दिन में दो तीन बार भी, ले सकते हैं। पूरा भाप-नहान हफ्ते में एक बार, या अगर रोगी मज़-बूत है तो ज्यादा से ज्यादा दो बार, लिया जा सकता है। अगर भाप-नहान सारे शरीर का है तो, धूप-नहान की तरह, नहान के बाद ठंढे पानी से नहाकर पेड़ू-नहान लेना चाहिए। अगर किसी खास अंग का भाप-नहान है तो सिर्फ उसी को धोकर पोंछ देना चाहिए।

जो रोगी हर रोज धूप नहान लेता है उसे भाप-नहान की कोई खास जरूरत नहीं है, पर अगर जरूरत मालूम हो तो हर दस दिन के बाद एक बार भाप-नहान भी फायदे के साथ लिया जा सकता है। उस दिन धूप नहान नहीं लेना चाहिए।

पूरे भाप-नहान के लिए एक बेंत की बुनी बेंच या मामूली मूंज की खाट चाहिए। उस पर बिना बिस्तर बिछाये रोगी को नंगा लिटाकर ऊपर से कम्बल डाल देना चाहिए। बेंच या खाट के

नीचे के हिस्से को पहले ही कपड़े से चारों तरफ इस तरह घेर देना चाहिए कि भाप बाहर न निकले। साथ ही रोगी को बेंच या खाट
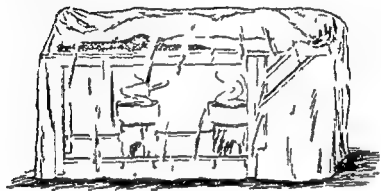
भाप-नहान

पर सुलाने के पहले दो स्टोव या जलते कोयलों से भरी अंगीठी पर दो चौड़े खुले मुँह के बर्त्तन पानी से भरकर बेंच या खाट के नीचे रखना चाहिए। जब पानी खौलने लगे तो रोगी को बेंच या खाट पर सुलाना चाहिए। पानी का एक वर्त्तन रोगी की कमर से कुछ ऊपर और दूसरा घुटनों के सामने पड़े। लड़कों के लिए कमर के नीचे का एक ही वर्त्तन काफ़ी होगा। रोगी का चेहरा नहीं ढकना चाहिए। अगर स्टोव या अगीठो न हो तो अलग चूल्हों पर तीन वर्त्तनों में पानी खौलाना चाहिए। दो वर्त्तन तो रोगी के नीचे रहेंगे और एक चूल्हे पर बदलने के लिए तैयार रहेगा। इस तरह बर्त्तन को बदल बदल कर काफ़ी भाप पहुँचाई

जा सकती है। १०-१५ मिनट भाप लेने के बाद पेट के बल सो जाना चाहिए, तब पसीना और अच्छी तरह निकलने लगता है।

इस नहान को ऐसे बन्द कमरे में लेना चाहिए, जहाँ हवा बहुत कम हो। पसीना आ जाने के बाद, ऊपर बताये ढग से मामूली नहान और पेडू-नहान लेना चाहिए। किसी किसी को भाप-नहान से सिर में गर्मी आ जाती है। ऐसी हालत में रोगी को खाट से उतारकर उसके सिर और चेहरे पर पानी झोंकना चाहिए और सारे शरीर को नहलाकर टब में बिठा देना चाहिए। लेकिन यह हालत उन्हीं के होती है जो या तो बहुत कमजोर हैं या जिन्होंने बहुत देर के लिए भाप-नहान लिया है।

किसी खास अंग में भाप पहुँचाने के लिए उस अंग को अंगीठी पर रखे बर्तन या पहले से खौलते पानी के बर्तन के ऊपर रखना चाहिए और ऊपर से कम्बल डाल देना चाहिए। चाहे जिस तरह भी हो उस अंग-विशेष में भाप लगनी चाहिए और वहाँ से पसीना निकलना चाहिए। अगले पेज की तस्वीर में जो बैठने की बेंच दिखाई गई है उस पर बैठकर अगर गर्दन के पास से दो कम्बल इस तरह डाल लिये जाँय कि सारा बदन ढक जाय और बेंच के नीचे का हिस्सा भी चारों तरफ से घिर जाय तो बैठे ही बैठे पूरा भाप-नहान भी अच्छी तरह हो सकता है। बेत की बुनी कुर्सी से भी काम निकलता है। अगर जरूरत हो तो कुर्सी के पायों के नीचे ईंट रखकर कुर्सी को ऊँचा कर देना चाहिए।

पूरा धूप-नहान या भाप-नहान उन रोगियों को न देना

भाप-नहान

चाहिए, जिनके कोई दिमागी रोग है। फ़ालिज और लक़वे के रोगी को भी शुरू शुरू में यह नहान नहीं देते। बुख़ार की हालत में भी इन नहानों की जरूरत नहीं है, क्योंकि वहाँ तो प्रकृति (क़ुदरत) ने ख़ुद ही आग जलाई है। किसी तरह की बहुत कमज़ोरी की हालत में सिर के रोगों में या फेफड़े, दिल या स्नायु के रोगों में ये नहान नुक़सान पहुँचाते हैं।

———

मिट्टी को काम में लाना

मिट्टी के इस्तेमाल से फ़ायदे—

मिट्टी इतनी मामूली चीज है कि हम उसके फायदों पर ध्यान नहीं देते, लेकिन सची बात यह है कि मिट्टी पर ही हमारी जिन्दगी का बहुत बड़ा हिस्सा बीतता है और मरने पर हम मिट्टी में ही मिल जाते हैं। मिट्टी से ही अनाज पैदा होते हैं, मिट्टी से हम बर्तन मांजते हैं, मकान पोतते हैं और अपने हाथ इत्यादि धोते हैं। इन दिनों साबुन का इस्तेमाल इस तरह बढ़ गया है कि मिट्टी से हम कम काम लेने लगे हैं, पर सच पूछिए तो कुछ रेत मिली अच्छी मिट्टी से जितना बदन साफ और शुद्ध होता है उतना साबुन से नहीं हो सकता। साबुन गन्दी चीज है। न मालूम उसके अन्दर कौन कौन चीजें रहती हैं। हमें यह भी नहीं मालूम कि उन चीजों का खाल के ऊपर कैसा असर होता है, फिर भी उनका व्यवहार हम आँखें बन्द करके करते हैं और बिना मोल मिलने वाली मिट्टी के फायदों की ओर हम कुछ भी ध्यान नहीं देते। गंगा की थोड़ी सी रेत मिली मिट्टी या किसी भी अच्छी जगह की साफ़ मिट्टी को गीला कर बदन में कुछ रोज लगाने और फिर उसके बाद नहाने से चमड़े की पुरानी बीमारियाँ दूर हो जाती हैं। यह जरूरी है कि इसी के साथ साथ खाने-पीने का

भी परहेज हो। खाना ठीक करने से अन्दर से खून साफ होता है और मिट्टी लगाने से ऊपर की खराबी दूर हो जाती है।

प्राकृतिक चिकित्सकों के लिए मिट्टी की पट्टी बड़े काम की चीज है। मिट्टी (१) अन्दर के पुराने विकार को उखाड़ती है, (२) अन्दर के विकार को बाहर खींच लेती है, (३) सूजन और दर्द में फायदा पहुँचाती है, (४) जलन और लहर को दूर करती है और (५) शरीर के अन्दर जरूरी ठंडक पहुँचाती है। इसी से प्राकृतिक चिकित्सक प्रायः सभी हालतों में मिट्टी का इस्तेमाल करते हैं।

मिट्टी की पट्टी के लिए अच्छी साफ मिट्टी होनी चाहिए। पिंडोल मिट्टी या थोड़ी (ज्यादा नहीं) रेत मिली नदी के कछार की मिट्टी या जिस जगह जैसी भी मिट्टी मिल सके (लेकिन जो साफ हो, जिसमें कंकड़-पत्थर या घास-लकड़ी के टुकड़े न हों और जिस पर थूक-खंखार या गन्दगी न हो) काम में लाई जा सकती है। मिट्टी को अच्छी तरह चूरकर और उसमें ठंढा पानी मिलाकर उसे आटे की तरह गूँध लेना चाहिए। हाथ लगाना ठीक नहीं है। किसी लकड़ी के चौड़े टुकड़े से काम लीजिए। फिर उसी लकडी से मिट्टी उठा उठाकर एक मोटे कपड़े के टुकड़े पर रखिए और इधर-उधर से कपड़े पर से ही मिट्टी को पाथ कर पेडू पर रखने लायक बना लीजिए। मिट्टी कड़ी न रहे और बहुत गीली भी न हो। जिस जगह पर दर्द, जलन, सूजन या और कोई तकलीफ हो वहाँ पर इस गीली मिट्टी को इस तरह फैलाना

चाहिए कि मिट्टी की तह आधी इंच से एक इंच तक मोटी हो और उससे वह जगह अच्छी तरह ढक जाय। फिर उस पर या उसके चारों तरफ किसी गर्म कपड़े को लपेट देना चाहिए। ४०-४५ मिनट के बाद या जभी मिट्टी गर्म हो जाय तो पट्टी को अच्छी तरह हटाकर उस जगह को गीले कपड़े से पोंछ देना चाहिए।

कब्ज, पेट का दर्द, खाँसी, बुखार और प्राय सभी बीमारी की हालतों में पूरे पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी देने से बहुत फायदा होता है। मामूली हालत में हर रोज सुबह-शाम एक एक पट्टी से काम चल जाता है, लेकिन तेज बुखार जैसी हालतों में दिन में कई बार पट्टी बदली जा सकती है। *पुरानी बीमारियों में कई दिनों तक सुबह-शाम, यानी दिन में दो बार, यह पट्टी दी जाती है।* खाने के तुरन्त बाद इस पट्टी का इस्तेमाल ठीक नहीं है, कम से कम डेढ़-दो घंटे का अन्तर देना चाहिए।

सख्त कब्ज की हालत में पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी रखने के बाद एनीमा लेने से पेट अच्छी तरह साफ होता है, क्योंकि मिट्टी पुराने मल के खिसकाने में सहायक होती है। पुरानी बीमारियों में इस पट्टी के बाद पेड़ू-नहान भी लेना अच्छा है, लेकिन अगर एनीमा और पेड़ू-नहान दोनों लेना हो तो एनीमा का आध घंटे के बाद पेड़ू-नहान लेना चाहिए।

अक्सर पुरानी बीमारियों में तकलीफ की जगह पर मिट्टी की पट्टी बाँधने से सूजन आ जाती है और दर्द बढ़ जाता है। इससे

घबराना न चाहिए, क्योंकि इसका मतलब है कि मिट्टी ने विकार को ढीला कर दिया है, जो शरीर के लिए अच्छा ही है। ऐसी हालतों में तुरन्त ही या कुछ देर के बाद तकलीफ की जगह पर भाप देना जरूरी है। अच्छी तरह भाप देने से पसीने के रूप में विकार निकल जाता है। गठिया से जब जोड़ों में सख़्ती आ जाती है या किसी भी अंग में दर्द रहता है तो पहले मिट्टी की पट्टी और फिर भाप देने से बहुत फायदा होता है।

मिट्टी की पट्टी से सभी तरह के फोड़े या तो बैठ जाते हैं या पककर ख़ुद-ब-ख़ुद फूट जाते हैं। किसी भी फोड़े पर मिट्टी की पट्टी दिन-रात में दो-तीन बार बाँधी जा सकती है। सख़्त और तकलीफ देने वाले फोड़ों में भाप और मिट्टी की पट्टी दोनों का इस्तेमाल करना चाहिए।

किसी तरह के जख़्म पर मिट्टी की पट्टी बाँधने से लाभ होता है। खुले जख़्म पर मिट्टी देने से न डरिये। आजमा कर देख लीजिए। लेखक ने बड़े बड़े जख़्मों को सिर्फ मिट्टी की पट्टी से ही अच्छा किया है।

मिट्टी के इस्तेमाल से ऐसा फायदा होता है कि उसे देखकर ताज्जुब होता है। बरों की डंक और पैर में चुभे काटे तक मिट्टी की पट्टी से बाहर निकल आते हैं। एक बार एक आदमी को साँप ने डस लिया। सभी तरह के इलाज आज़माए गए, लेकिन कुछ भी फायदा न हुआ। लोगों ने समझा कि वह आदमी मर गया। एक प्राकृतिक चिकित्सक ने उसे देखा। उसने ज़मीन में

एक लम्बा गड्ढा खुदवाया और उसमें गीली मिट्टी की एक सतह बिछाकर उस पर उस आदमी को लिटा दिया। साथ ही अगल-बगल में और ऊपर गीली मिट्टी इस तरह रखवा दी कि उस आदमी का सिर और चेहरा तो बाहर निकला रहा पर सारा शरीर गीली मिट्टी के अन्दर गड़ा रहा। इस हालत में लगभग चौबीस घंटे रहने के बाद उस आदमी ने अपनी आँखें खोल दीं। एक बार लेखक के एक सहकारी, श्रीयुत बालेश्वरप्रसाद सिंह (डाइरेक्टर, नेचर क्योर हेल्थ होम, ३० बाई का-बाग, इलाहाबाद) ने भी एक गठिया के रोगी को इस तरह जमीन में गाड़ गाड़कर अच्छा किया था। उस रोगी के सारे शरीर में दर्द रहा करता था। कोई खास जगह न थी, जहाँ मिट्टी की पट्टी बाँधी जा सके। इसीलिए उसे जमीन में गाड़ना उचित समझा गया।

जब कभी कोई ऐसी बीमारी मिले, जिसकी सच्ची हालत न मालूम होती हो या कमजोरी या किसी और वजह (कारण) से कोई नहान इत्यादि न दिया जा सके, तो सुबह-शाम पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी देने लग जाना चाहिए और शक्ति के अनुसार एक पट्टी के बाद या दोनों के बाद एनीमा भी देना चाहिए।

गर्भिणी स्त्री के जब बच्चा होते समय अधिक तकलीफ हो और बच्चा बाहर न निकले तब पेड़ू पर थोड़ी थोड़ी देर के बाद मिट्टी की पट्टी बाँधने से बहुत आराम मिलता है और बच्चा आसानी से निकल आता है। मिट्टी की पट्टी अ-समय के गर्भपात

ने या तो रोक देती है या अगर रोकती नहीं तो औरत की हालत को ख़तरनाक (आपत्तिजनक) होने से बचाती है।

कोई कोई चिकित्सक मिट्टी को पहले गर्म करके इस्तेमाल करते हैं। इससे कभी कभी दर्द की हालतों में जरूर कुछ लाभ होता है, लेकिन सच्चा लाभ ठंडी पट्टी से ही होता है। गर्भ गिरने की आशंका के समय गर्म पट्टी न देनी चाहिए।

पानी से आँत की सफ़ाई

भोजन-प्रणाली और आँत—

हमारा शरीर कई हिस्सों में बँटा है। इसका एक असल हिस्सा भोजन-प्रणाली (alimentary canal) है। यह प्रणाली एक खोखली नाली की तरह है, जिसका फैलाव मुँह से लेकर पाखाने के रास्ते तक है। इसकी लम्बाई लगभग २७ फ़ुट है। यह प्रणाली तीन हिस्सों में बँटा है। पहला हिस्सा मुँह से लेकर पेट की थैली तक, दूसरा हिस्सा छोटी आँत (पेट के बाद से बड़ी आँत के शुरू तक) और तीसरा हिस्सा बड़ी आँत है। बड़ी आँत दाहिनी तरफ़ कमर की हड्डी के पास से शुरू होती है और ऊपर की ओर जाकर यकृत (जिगर) से प्लिहा (तिल्ली) की ओर जाती है। वहाँ से नीचे की ओर जाकर वह कमर की बाईं हड्डी के पास से पाखाने के रास्ते तक पहुँचती है। इसकी लम्बाई लगभग साढ़े पाँच फ़ुट है। अगले पृष्ठ में दिये चित्र को देखिए।

भोजन का पचना और पाख़ाना होना—

भोजन पहले-पहल मुँह से पेट में आता है। पेट में पाचन-क्रिया शुरू हो जाती है। पेट से भोजन छोटी आँतों में आता

भोजन-प्रणाली
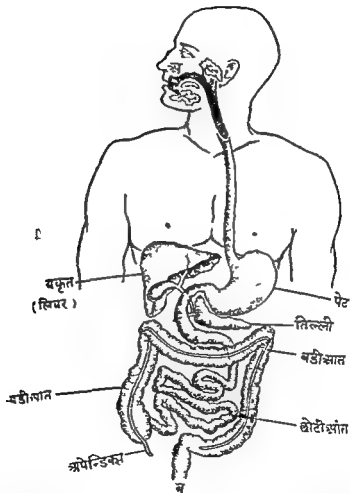
(अ) से (ब) तक भोजन-प्रणाली है। पेट, बड़ी आँत और छोटी आँत इसी एक नली के हिस्से हैं। इस सारी नली को साफ रखना हमारा कर्त्तव्य है

है। भोजन का पूरा पाचन छोटी आँत में ही होता है। छोटी आँत ही पचे खाद्य-पदार्थ से रस खींच लेती है और यह रस खून के दौरान में भेज दिया जाता है। भोजन का बचा-खुचा अंश जो प्रायः सब रस के निकल जाने के बाद शरीर के किसी काम का नहीं है बड़ी आँत में आ जाता है। अगर कुछ रस बच रहता है तो बड़ी आँत उसे सोख लेती है और तब उस बचे हुए अंश को बाहर निकाल देती है। यही अंश पाखाना है। यह शरीर के किसी काम का नहीं है और इसका बाहर निकल जाना ही शरीर के लिए हितकर है।

क़ब्ज़ या कोष्ठबद्धता और रोग—

यह स्वाभाविक नियम है कि जो कुछ भी खाया जाता है अपने समय पर पचकर और शरीर को आवश्यक रस देकर मल-रूप में शरीर से बाहर हो जाता है। अनेक कारणों से भोजन का बचा-बचाया यह बेकार भाग बड़ी आँत में नियमित समय से अधिक देर तक ठहरने लगता है। मल के बाहर निकलने में इसी देर को कब्ज़ या कोष्ठबद्धता कहते हैं। अगर बड़ी आँत में यह बेकार पदार्थ ज्यादा देर ठहरा तो वहीं सड़ने लगता है और उसके सड़ने के कारण अनेक विषमय कीटाणु (कीड़े) उसमें पैदा होते हैं। इतना ही नहीं। बड़ी आँत में बहुत सी छोटी छोटी गिल्टियाँ हैं, जो रस सोखती हैं। यह गिल्टियाँ आँत के अन्दर सड़ते हुए मल से जहरीले पदार्थ सोखकर खून के दौरान में डाल

देती हैं। इससे सारा शरीर जहर से भर जाता है। इससे कैसी कैसी खराबियाँ हो सकती हैं, पाठक खुद ही समझ सकते हैं। अगर यह कहा जाय कि संसार में जितने भी रोग हैं वे प्रायः सभी इसी एक कारण—अपच और कोष्ठवद्धता—से पैदा होते हैं तो ग़लत न होगा। जब यह सच है कि ज्यादातर बीमारियों का एकमात्र कारण आँत के अन्दर का विकार है तो इन रोगों का सच्चा इलाज आँत की सफ़ाई से ही शुरू हो सकता है। हमारी बड़ी आँत ठीक वैसी ही है जैसी कि शहर की नाली। यदि नाली की सफाई रोज अच्छी तरह हो जाती है तो शहर में बीमारी नहीं फैलती, पर इस नाली में गंदगी के बने रहने से शहर में अनेक प्रकार के रोग फैल जाते हैं। पाठक अब समझ गये होंगे कि बड़ी आँत को साफ रखने की कितनी आवश्यकता है।

सफ़ाई के ढंग—

आँत की सफाई दो प्रकार से हो सकती है—(१) दवाओं के इस्तेमाल से और (२) पाखाने के रास्ते से पानी ऊपर चढ़ा कर।

दवाओं का इस्तेमाल यानी कड़ा या हल्के जुलाब का प्रयोग ठीक नहीं है। विदेशी दवाइयाँ तो खास कर नुकसान करने वाली हैं। अगर कोई दवा ली जा सकती है तो वह अपनी देशी सनाय (सना) की पत्तियाँ, लेकिन वह भी ठीक नहीं है। दवा में खुद कोई ऐसी ताकत नहीं, जो पेट की सफ़ाई कर सके। वह तो शरीर के लिए विजातीय पदार्थ (बेकार चीज) हो जाती है। शरीर इस विजातीय पदार्थ को अपनी सारी ताक़त से बाहर

निकालने का यत्न करता है। इसी कोशिश में आँत से मल भी बाहर हो जाता है। यह दवाइयाँ आँत में उत्तेजना और जलन पैदा करती हैं, इसी से इनका असर होता है। पर बार बार की जलन या उत्तेजना से आँतें कमजोर पड़ जाती हैं और अपना मामूली काम नहीं कर सकतीं। जब वे अपना काम अच्छी तरह नहीं कर सकतीं तो पाठक समझ लें कि इसका फल क्या होगा। जिस कारण को दूर करने के लिए दवा दी गई, वह हटने के बजाय बढ़ती ही गई। इसलिए दवाओं से पेट की सफाई नहीं करनी चाहिए।

अब आँत से मल निकालने का सिर्फ एक ही उपाय रह गया। वह है पाखाने के रास्ते से पानी चढ़ाना, अर्थात् शरीर-रूपी शहर की बड़ी आँत-रूपी नाली को धो देना। इसी को एनीमा या डूश लेना कहते हैं।

एनीमा का गुण और यंत्र-

एनीमा के यंत्र से आँत में पानी चढ़ाकर आँत को धोना आँत की सफाई का सब से अच्छा उपाय है। इसके दो-तीन फायदे हैं। (अ) बिना किसी प्रकार की उत्तेजना और जलन के आँत की सफाई हो जाती है। (ब) पानी के इस्तेमाल से आँत की स्नायु-शक्ति बढ़ती है, जिसमें उसकी काम करने की ताकत भी बढ़ती है। यह प्राकृतिक चिकित्सकों को अच्छी तरह मालूम है कि पानी के प्रयोग से शक्ति बढ़ती है और वे इसीलिए अपनी चिकित्सा-प्रणाली में पानी के इस्तेमाल को जरूरी बताते हैं।

एनीमा के यंत्र सवा रुपये से लेकर दो हज़ार रुपये तक मे मिलते हैं, पर आम तौर से डेढ़-दो रुपये वाला यंत्र, जो दीवार से
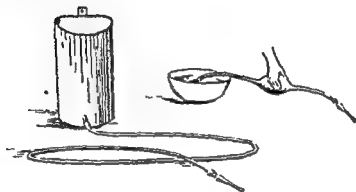
एनीमा के यंत्र

कील के सहारे लटका दिया जाता है, जिसमें रबड़ की एक नली लगी रहती है और जिसके अगले हिस्से को पाख़ाने के रास्ते में रखकर पानी आँत में चढ़ाया जाता है, काफ़ी अच्छा है। एक दूसरा यंत्र ऐसा भी होता है, जिसमे बर्त्तन नहीं होता। वह रबर की एक नली भर रहती है, जिसके बीच मे एक पोली (खोखली) गेंद सी रहती है। इस नाली के एक सिरे को पाख़ाने के रास्ते मे रखते है और दूसरे सिरे को पानी के बर्त्तन में। गेंद को बार बार दबाने से पानी आँत में चढ़ता है। इसके दाम भी दो-ढाई रुपये हैं। पहला यंत्र ज़्यादा अच्छा है।

एक ही यंत्र सभी लोगों के काम का हो सकता है। उसी यंत्र

से छः महीने के बच्चे से लेकर १०० साल के बुड्ढे तक को एनीमा दिया जा सकता है।

पानी का अन्दाज़—

पानी का परिमाण अलबत्ता अलग अलग होगा। ६ महीने के बच्चे के पेट में दो छटाँक से पाव भर तक पानी चढ़ा सकते हैं। एक वर्ष से लेकर ५ वर्ष तक के बच्चे के पेट में पाव भर से लेकर आध सेर तक पानी चढ़ाते हैं। ६ वर्ष से लेकर १२ वर्ष तक के बच्चे को आध सेर से लेकर १ सेर तक पानी देते हैं। उससे बड़े अर्थात् १२ से लेकर ज्यादा उम्र वालों के पेट में १ सेर से लेकर २ सेर तक पानी चढ़ा सकते हैं। २५ से ज्यादा उम्र वालों के पेट में ढाई-तीन सेर तक पानी चढ़ाया जा सकता है। पानी की मात्रा धीरे धीरे बढ़ाना चाहिए, क्योंकि इसी तरह पानी को अंदर रोकना भी सीखना चाहिए।

एनीमा के पानी में क्या मिलाया जाय—

कुछ नहीं। कुछ डाक्टर एनीमा के पानी में रेंड़ी का तेल (कैस्टर आयल), साबुन की झाग, ग्लीसरीन इत्यादि पदार्थ मिलाते हैं। उनका यह कहना है कि इन चीज़ों के मिलाने से आँत बहुत अच्छी तरह साफ हो जाती है। लेकिन इस पर विचारकर देखिए। सिर्फ साबुन मिलाने की ही बात को लीजिए। यह रोज का तजुर्बा है कि बदन में लगा हुआ साबुन आप ही आप नहीं छूटता। उसे कई बार पानी से धोने की ज़रूरत पड़ती है। यह आसानी से समझा जा सकता है कि आँत में लगा हुआ साबुन

एक ही बार मे क्योंकर साफ हो जायगा। फिर मालूम नहीं कि साबुन कौन कौन पदार्थों से बनाया गया है। दूसरे पदार्थ भी आँत में उत्तेजना पैदा करते हैं। इस उत्तेजना से धीरे धीरे आँत कमजोर हो जाती है।

एनीमा का प्रयोग–

एनीमा के लिए जितना भी पानी तैयार करना है उसको जरा गर्म कर लीजिए। शरीर के ताप के बराबर गर्मी होना चाहिए, ज्यादा नहीं। तनदुरस्ती के दिनों में या गर्मियों में मामूली (ज्यादा नहीं) ठंढा पानी भी ले सकते हैं। ज्वर मे पानी कुछ गुनगुना जरूर हो।

एनीमा के बर्त्तन को अच्छी तरह साफ कीजिए और रबर की नाली इत्यादि को भी अच्छी तरह गरम पानी से साफ कर लीजिए। तैयार पानी को एनीमा के बर्त्तन मे डाल दीजिए। बहुत अच्छा हो अगर कभी कभी एक या दो नींबू का रस निचोड़कर एनीमा के पानी में कपडे के सहारे छान लिया जाय। इसका असर आगे चलकर बहुत अच्छा होता है। अब एनीमा के बर्त्तन को, जिस जगह या तख्त पर लेटकर एनीमा लेना है उससे चार फुट ऊँचा, दीवार से (कील के सहारे) लटका दीजिए। अगर बेंच या तख्त पर लेटना हो तो उस के उस सिरे को जिस तरफ पैर हो और ऊँचे पर एनीमा का बर्त्तन लटकता हो आधा फुट ऊँचा कर दीजिए। बेंच या तख्त के नीचे पैताने की ओर दो दो ईंट लगा सकते हैं। अब जिसको एनीमा देना

हो उसको बेंच या तख्त पर चित लेटा दीजिए कहने की जरूरत नहीं कि सिर कुछ नीचा होगा और पैर एनीमा की ओर ऊँचा। पैरों को मोड़ रखना चाहिए। अब रबर की नाली के अग्रभाग को
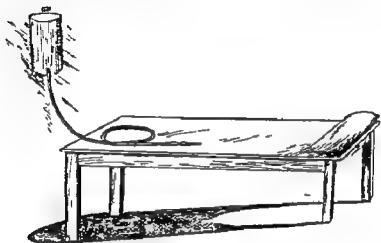
एनीमा की तैयारी

खोल दीजिए, जिससे कुछ पानी के निकल जाने से अन्दर की हवा निकल जाय। फिर उसको बंदकर उसमें थोड़ा वेसलीन या घी मलकर पाखाने के रास्ते में लगभग दो इंच तक रख दीजिए और पानी को आँत में चढ़ने दीजिए। कभी कभी तो पानी बड़ी आसानी से आँत में चढ़ जाता है, पर कभी कभी कुछ कठिनाई होती है। कभी जरा सा पानी चढ़ने के बाद ही पेट में दर्द शुरू होता है और ऐसा मालूम होता है कि अब पानी नहीं रोका जा सकता। इस हालत में थोड़ी देर के लिए पानी का चढ़ाना बन्द कीजिए। कुछ देर में पेट का दर्द शान्त हो जायगा। दर्द कम

होने पर फिर पानी को आँत में चढने दीजिए। पानी चढते समय पेट को बाईं से दाहिनी ओर को हल्के हल्के मलिए। पानी को आँत में कुछ देर तक रोक रखना चाहिए। अब पेट की हल्की मालिश दाहिनी से बाईं ओर कीजिए। इसके बाद टट्टी जाना चाहिए। पहले पानी रोकना कठिन होगा। पर अभ्यास से १५-२० मिनट तक पानी रोका जा सकता है। पानी रोक रखने से मल फूल कर बाहर निकल आता है और एनीमा की आदत भी नहीं पड़ती। पानी चढाने के बाद तुरन्त ही पाखाने जाने से बिल्कुल मल नहीं निकलता और एनीमा की आदत पड जाने का डर रहता है, पर आदत तभी पड सकती है जब कि ८-१० महीने लगातार इस तरह एनीमा लिया जाय। बताये तरीके से एनीमा लेने से पेट की अच्छी सफाई हो जायगी और आदत न पडेगी। अगर बेंच या तख्त न हो तो जमीन पर दरी, कम्बल या चटाई बिछाकर मरीज़ को उसी पर चित लिटाकर उसकी कमर के नीचे तकिया रख देते हैं, जिससे उसका सिर नीचे हो जाय।

एनीमा ख़ुद भी लिया जा सकता है। अगर किसी कारण चित न लेटा जा सके तो दाहिनी करवट लेटकर भी एनीमा ले सकते हैं। पर चित लेटना और सिर को कुछ नीचा करना (अगर कोई सिर की बीमारी नहीं है तो) ज्यादा अच्छा है।

एनीमा के प्रकार (क़िस्में)—

(१) *ताक़त बढाने वाला एनीमा*—मामूली ठंढा पानी या हल्का गुनगुना पानी, सिर्फ पाव-डेढ पाव के अन्दाज़ से, पेट में

चढा दीजिए और उसे कम से कम २० मिनट रोकिए और तब पाखाने जाइए। अगर बहुत दिनों तक एनीमा का इस्तेमाल जारी रखना है तो इसी तरह का एनीमा हर रोज लेना चाहिए। इससे आँतों को बल मिलता है और अगर भोजन-क्रम ठीक रहा तो कुछ ही दिनों में कब्ज दूर हो जाता है और एनीमा की जरूरत भी जाती रहती है। इस तरह एनीमा लेने के दिनों में हफ्ते में एक बार ज्यादा पानी (पूरी मात्रा) चढा लेना चाहिए। उसे भी रोकने की कोशिश करनी चाहिए।

(२) *गर्म और ठंडा एनीमा*—बहुत सूखे मल की हालत में पहले सहने लायक काफी गर्म पानी, पाव डेढ पाव, और उसके बाद ही उतना ठंडा पानी लेना चाहिए। गर्म पानी मल को उखाड़ता है और ठंडा पानी आँतों को बल देता है। अगर कोई सिर की बीमारी है तो पानी को गुनगुना ही रखना चाहिए। ऐसे एनीमा में भी पानी को जितना बने रोकना चाहिए।

(३) *पानी रोकने वाला एनीमा*—लगभग आध पाव गुनगुना या ठंडा पानी पूरा एनीमा लेने के बाद चढा लेना और उसको वहीं रोक रखना। बवासीर के इलाज में इस तरह काफी ठंडे पानी को रात में सोने से पहले चढा लेना बहुत लाभदायक होता है। इतना थोड़ा पानी एनीमा-यन्त्र के बदले ग्लीसरीन सिरिंज (glycerine syringe) से अच्छी तरह चढाया जा सकता है। यह यन्त्र भी डाक्टरी दवा की दूकानों में आठ-दस आने में मिलता है।

एनीमा के इस्तेमाल के बारे में हिदायतें–

(१) एनीमा वैसे हर रोज नहीं लेना चाहिए, पर उपवास मे या केवल फलों के रस पीकर या फल खाकर रहने के दिनों में हर रोज और जब जोरदार कब्ज रहे तब भी लेना चाहिए। लम्बे उपवास में कुछ दिनों तक दोनों समय और फिर एक समय एनीमा लेना चाहिए।

(२) जिसकी आँत में बहुत दिनो के विकार सूखकर चिमट गये हैं, उसे पहिले या बीच मे तीन-चार दिनों तक एनीमा लेने से मल नहीं निकलता। ऐसी हालत मे एनीमा लेना बन्द नहीं करना चाहिए।

(३) नये रोगो में उपवास के साथ एनीमा का इस्तेमाल जरूरी है। एक ही दो दिन के उपवास और एनीमा के इस्तेमाल से ९० फी सदी से ज्यादा रोग जाते रहेंगे।

(४) पुराने रोगों में तीन-चार सप्ताह के फलाहार, शाकाहार और बीच बीच के दो-तीन दिन के उपवास के साथ साथ बराबर एनीमा के प्रयोग से ७५ फी सदी पुराने रोग आसानी से जाते रहेंगे।

(५) जिस रोग में पतले दस्त आते हों और साथ ही कमजोरी भी हो उसमें एनीमा नहीं देना चाहिए, पर रोग के शुरू होते ही, खास कर आँव की हालत में, एनीमा दे सकते हैं।

(६) एनीमा लेने के बाद कुछ देर लेटकर आराम करना चाहिए।

(७) एनीमा लेने के बाद आध घंटे तक कुछ खाना नहीं चाहिए।

(८) एनीमा और पेडू-नहान में मामूली तौर पर कम से कम आध घंटे का अन्तर होना चाहिए। ज्यादा देर हो तो अच्छा है।

(९) कुछ दिन एनीमा लेकर फिर उसे छोड़ देने से एक-दो दिन पाखाना नहीं आता। इससे घबराना न चाहिए। एक दिन के बाद एक बार फिर एनीमा लेकर छोड़ देना चाहिए।

(१०) कमजोर रोगियों को पहले थोड़ा पानी चढ़ाना चाहिए। जैसे जैसे ताकत बढ़ती जाय पानी की मात्रा को भी बढ़ाते जाना चाहिए। कमजोरी की हालत में एनीमा के बाद पाखाने जाने के लिए पास ही इन्तजाम होना चाहिए। अगर टाइफॉयड बुखार है या और कोई कमजोरी की हालत है तो बेड-पैन (bedpan) काम में लाना चाहिए।

एनीमा के बारे में कुछ लोगों का भ्रम है कि इससे जन्म भर के लिए आदत पड़ जाती है। ऐसा सोचना बिलकुल ग़लत है। लेखक ने कई रोगियों को लगातार ढाई-तीन महीने एनीमा दिया है। वे सब अब भले-चंगे हैं और एनीमा का इस्तेमाल बिलकुल नहीं करते।

एनीमा कब्ज की दवा नहीं है। कब्ज तो हर रोज़ के ठीक भोजन, नियमित जीवन और उचित कसरत से दूर होता है, लेकिन आँत में चिपके पुराने मल को दूर कर और आँतों की मासपेशी और स्नायुओं को बल देकर शरीर को फिर से ताजा करने वाली चीज एनीमा से बढ़ कर कोई नहीं है।

रोगों का इलाज

रोगों का इलाज, पुराने रोगों का इलाज,
अचानक की तकलीफ़ें

(जिन पाठकों ने पहले के खंड अच्छी तरह नहीं पढ़े हैं उन्हें सिर्फ़ इस खंड के पढ़ने से पूरा लाभ न होगा)

रोगों का इलाज

एक रोग, एक इलाज—

आशा है कि पाठकों को रोगों की चिकित्सा-विधि (तरीका-इलाज) के बारे में इस किताब के पिछले पन्नों से बहुत कुछ मालूम हो गया होगा। यह भी आशा है कि पाठकों ने समझ लिया होगा कि अगर सभी रोगों का कारण सचमुच एक ही है—शरीर में बेकार पदार्थ का इकट्ठा होना और अगर जड़ में सभी एक ही हैं तो उन सबों का इलाज भी एक ही ढंग का होगा। रोग इसे अच्छी तरह समझना चाहिए। (शुरू में जो 'रोग-वृक्ष' का चित्र है उसे देखिए।) तकलीफ़ की शिकायतें और अलामात (रोगों के लक्षण) अलग अलग और दूसरे दूसरे हो सकते हैं, पर सभी रोग एक ही जड़ से निकल कर फैलते हैं। यदि उस जड़ को ही उखाड़कर दूर कर दिया जाय तो अलग अलग फैलने वाले, अलग दिखाने वाले और अलग नामों से पुकारे जाने वाले रोग और एक ही रोग के अनेकों लक्षण आसानी से दूर हो जायेंगे। मिसाल (उदाहरण) के लिए, अगर किसी के बुखार है और उसी के साथ साथ खाँसी और बदन में दर्द है तो हम इन तीनों शिकायतों को अलग अलग रोग न मान कर इन सबों को एक ही रोग के लक्षण समझेंगे और कोशिश करेंगे कि वह जड़ ही दूर हो

जाय, जिससे ये शाखें फैली हैं। हाँ, अगर किसी खास लक्षण से ज्यादा तकलीफ है तो हम ऐसे उपाय जरूर करेंगे कि रोगी को आराम मिल जाय। यह तो हुई एक रोग के अनेकों लक्षण की बात। इसी तरह सब रोगों को हम एक ही जड़ से निकले हुए अलग अलग लक्षण समझेंगे।

पाँच ज़रूरी बातें—

चाहे कोई भी बीमारी हो, उसको दूर करने के लिए हम उसके नाम की कुछ भी परवा और ख़याल न कर इन बातों पर ध्यान देंगे—

(१) पेट और शरीर के अन्दर के विकार को निकालना, पेट की गर्मी को शान्त करना और पाचन-शक्ति (कुव्वते-हाज़मा) को दुरुस्त करना। यह काम उपवास, एनीमा-प्रयोग, भोजन में उचित हेर-फेर, उचित भोजन और पेड़ू-नहान से हो जाता है।

पेट की गर्मी के दूर हो जाने और पाचन शक्ति के ठीक हो जाने से खून ठीक हालत में आ जायगा और स्नायु-सस्थान भी स्वस्थ हो जायगा, जिससे रोग भाग जायगा।

(२) स्नायु-सस्थान को जगाना और स्वस्थ करना। इसका असर पाचन-शक्ति पर अच्छा पड़ता है और इसी से जीवन शक्ति जगकर रोग को भगा देती है। यह काम पाचन-शक्ति के ठीक होने पर और विविध नहान और रीढ़ की गीली पट्टी से होता है।

(३) जलन, सूजन, दर्द जैसी ऊपरी तकलीफों को कम

करना। यह काम मिट्टी और कपडे की गीली पट्टियों से और भाप-नहान और गर्म और ठंडी सेंक से हो जाता है।

पुराने रोगों मे दो और बातो पर ध्यान देना होता है। वे हैं—

(४) जीवन शक्ति को जगाना, जिससे रोग की जीर्णता (पुरानापन) तीव्रता (नयापन) मे बदल जाय और फिर रोग दूर हो जाय। यह काम ऊपर बताये उपायो के साथ साथ उचित कसरत, साँस की कसरत और धूप-नहान से होता है।

(५) दिल को बराबर ही खुश रखना और यह उम्मीद करना कि धीरे धीरे जरूर ही अच्छे हो जायगे। दोस्त और रिश्तेमन्दों को भी रोगी की मदद करनी चाहिए, जिससे वह खुश रहे। इस आखरी बात पर जितना भी जोर दिया जाय कम होगा।

अगर यह बातें समझ में आ जांयगी तो चिकित्सक रोगों के नाम से न डरकर किसी भी रोग का सही और अचूक इलाज कर लेगा।

चिकित्सा का क्रम—

अचूक चिकित्सा में भोजन का बहुत बडा स्थान है, इस लिए पहले कुछ बातें समझा देना जरूरी है।

अगर कोई नया रोग है तो हम इन उपायो को काम में लायेंगे —

(१) जब तक रोग न जाय तब तक पूरा उपवास। कमजोरों को एक-दो दिन के पूरे उपवास के बाद फल का रस दिन में तीन बार दिया जा सकता है। हैजे मे कुछ नहीं।

पकी भाजी पर रह कर फलों पर आ जाना चाहिए। फल तरकारी से अच्छे होते हैं।

(३) इसके बाद दस या पन्द्रह दिनों तक हर बार फल के साथ पाव-डेढ़ पाव कच्चा बढ़िया दूध। किसी तरह के अपच में दूध के बदले पतला मट्ठा इस्तेमाल करना चाहिए। अगर जरूरत हो तो पेडू पर मिट्टी की पट्टी और एनीमा एक बार या दोनों बार जारी रखना चाहिए। जरूरत न हो तो छोड़ देना चाहिए।

(४) इसके बाद तनदुरुस्ती के दिनों के भोजन जैसा भोजन वाले अध्याय में बताया गया है (पृष्ठ ८३), लेकिन अन्न का भोजन कुछ दिनों तक एक ही बार करना चाहिए।

इसी समय से या फलाहार के दिनों के बीच से ही नहान शुरू करना चाहिए। कुछ चिकित्सक शुरू से ही नहान और रोटी-भाजी का भोजन शुरू करा देते हैं। मैं नये रोगों में तो शुरू से ही नहान के पक्ष में हूँ, लेकिन पुराने रोगों में नहीं। पुराने रोग में शरीर के अँग-अँग, कोप-कोप विकार से भरे रहते हैं। जो बिना उपवास और काफी दिनों तक फलाहार के नहीं निकलते। फिर अगर जहरीली दवाओं का व्यवहार हुआ है तो सब दबे लक्षण पानी के इस्तेमाल से धड़ाधड़ उभड़ने लगते हैं। सिर्फ नहान और मामूली भोजन-सुधार से पुराने रोग बहुत दिनों में जाते हैं, और नहान लेने की आदत सी हो जाती है। अगर जहरीली दवाएँ नहीं ली गई हैं तो उपवास के दो-तीन दिन बाद से ही नहान शुरू कर सकते हैं।

नोट—यह एक-सवा महीने का कठिन संयम हाल के पुराने रोगों में काफी हो सकता है, लेकिन वर्षों के पुराने रोगों में दो दो महीने पर एक-दो बार ऊपर के क्रम को दुहराना होगा। जो धैर्य और समझदारी से काम लेंगे वे साल भर के अन्दर पुराने से पुराना रोग दूर कर सकेंगे और शरीर को नया बना लेंगे नहीं तो ज्यादा समय लगेगा।

जहाँ फल या तरकारी न मिले वहां तीन दिन के उपवास के बाद एक हफ़्ते तक बिना मक्खन का पतला मठा दिन में दो-तीन बार लेना चाहिए। फिर पांच दिन का उपवास कर के दस दिन तक सिर्फ पतले मठे पर या दूध पर रहना चाहिए तब दस दिनों तक दोनों समय सिर्फ रोटी और इसके बाद रोटी-भाजी पर आना चाहिए।

गर्मियों में ९ बजे सुबह और ४ बजे शाम और जाड़ों में ११ बजे सुबह और ५ बजे शाम के समय, अर्थात् सिर्फ दो बार, खाने के लिए बहुत ठीक हैं, लेकिन अगर काम पर जाना हो तो समय बदल सकते हैं। तीन बार—८ बजे सुबह, १ बजे दिन और ६—६-३० बजे शाम या ९ बजे सुबह, ३-३० बजे तीसरे पहर और ७-३० बजे रात—थोड़ा थोड़ा खा सकते हैं।

हर रोज़ का क्रम—

चिकित्सकों को दिन भर का कार्य-क्रम बनाना भी सीखना चाहिए, जैसे—

(२) अगर बहुत मात्रा में बहुत बार पहले दस्त न आते हों तो एनीमा-प्रयोग—दिन में एक बार, नहीं तो क़ब्ज़ की हालत में सुबह-शाम दो बार। तेज़ ज्वर में दो बार।

(३) रोग दूर होने पर पहले रसाहार, तब दो-तीन दिनों तक दिन में तीन बार या दो ही बार फलाहार और इसके बाद दो-तीन दिनों तक एक बार रोटी-सब्ज़ी और एक या दो बार फल। फिर तनदुरुस्ती के दिनों का भोजन, जो भोजन वाले अध्याय में बताया गया है।

(४) ज़रूरत के मुताबिक़ (अनुसार) पानी मिट्टी का प्रयोग।

पुराने रोग में, जिसमें *अमली या बहुत* कमज़ोरी नहीं है (असली कमज़ोरी उसे कहते हैं जो कि पांच-छः महीने या इस से भी ज़्यादा दिनों तक खाट पर पड़े रहने और कई डाक्टरों, हकीमों और वैद्यों के हाथ से गुज़रने के बाद या क्षयी इत्यादि रोगों में होती है) तो नीचे दिया हुआ क्रम चलाना चाहिए :—

(१) पहले तीन दिनों का उपवास—भरसक पूरा या फलों के रस पर (दिन में सिर्फ़ दो या तीन बार इच्छा भर)।

असली कमज़ोरी में इस नं० १ को छोड़ कर नं० २ से शुरू कराना चाहिए और जैसे ही अवस्था सुधरे एक दो दिन का उपवास करना चाहिए।

उपवास के दिनों में सुबह-शाम एनीमा।

(२) उपवास के बाद पूरे पन्द्रह दिनों तक या और ज्यादा दिन में दो बार फलाहार। हल्के, मीठे और रसदार फल हों—भरसक अँगूर और गन्ने नहीं, केला हर्गिज नहीं। समय—बन सके तो गर्मियों में ९ बजे सुबह और ४ बजे शाम, जाड़ों में ११ बजे सुबह और ५ बजे शाम। एक बार सिर्फ एक तरह का फल, इच्छा भर।

पहले हफ़्ते में सुबह-शाम एनीमा। फिर अगर जरूरत न रहे तो सिर्फ एक बार शाम को एनीमा। जरूरत होने पर दोनों समय। एनीमा लेने से पहले सुबह में और शाम के ३ बजे पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी, ३० मिनट के लिए।

कभी-कभी इन फलाहार के दिनों में मुँह का स्वाद खराब हो जाता है या कुछ पतले दस्त आने लगते हैं या आँव गिरने लगती है या और कोई नया लक्षण उभड़ पड़ता है। अगर ऐसा हो तो समझना चाहिए कि विकार निकल रहा है, जो अच्छा है, और तुरन्त ही फलाहार से रसाहार पर एक दो दिन के लिए आ जाना चाहिए। हो सकता है कि कुछ कमजोरी मालूम हो, पर दिल जरूर खुश रहेगा। कमजोरी से घबराना न चाहिए। जितना जल्द विकार निकलेगा उतना ही जल्द तनदुरुस्ती ठीक होगी। विकार निकलते समय कुछ कमजोर हो जाना स्वाभाविक है।

अगर पेट के दर्द की शिकायत हो तो या ऐसी ही कोई गड़-बड़ी हो, जिस में फल ठीक न बैठता हो तो पहले दो-तीन दिन या और ज्यादा दिनों तक हल्की (बिना छिलके की) सादी

६-३० बजे सुबह—पेड़ पर मिट्टी और एनीमा

९ बजे सुबह—साधारण स्नान

११ बजे दिन—फलाहार

३-३० बजे तीसरे पहर—पेड़ू पर मिट्टी और एनीमा

५ बजे शाम—फलाहार

या

६ बजे सुबह—पाखाने जाना, मुंह धोना, किशमिश का पानी पीना

६-३० बजे सुबह—एनीमा

७-३० बजे सुबह—पेड़ू-नहान

९-३० बजे सुबह—साधारण स्नान

११ बजे दिन—भोजन

१ बजे दिन—पानी पीना

२ बजे तीसरे पहर—पेड़ू पर मिट्टी और एनीमा

४ बजे शाम—पेड़ू या मेहन-नहान

५½ बजे शाम—भोजन

या

६ बजे सुबह—पानी पीकर पाखाने जाना, मुँह धोना

६-३० बजे सुबह—पेड़ू-नहान और कसरत

८-३० बजे सुबह—साधारण स्नान

९ बजे सुबह—भोजन

११ बजे दिन—पानी पीना

३-४५ बजे शाम—हल्का नाश्ता

५ बजे शाम—पेड़ू या मेहन-नहान और टहलना

७ बजे रात—भोजन

९ बजे रात—पानी पीना

९-३० बजे रात—सो जाना

या

६ बजे सुबह—पाखाने जाना, मुँह धोना, किसमिश का पानी पीना, हल्की कसरत

७-३० बजे सुबह—धूप-नहान, साधारण स्नान और मेहन-नहान

९ बजे सुबह—भोजन

११ बजे दिन—पानी पीना

१ बजे दिन—रीढ़ की पट्टी

३-४५ बजे शाम—नाश्ता, नाश्ते के बाद किसी अंग विशेष पर भाप

५ बजे शाम—पेड़ू या मेहन-नहान और टहलना

७-३० बजे रात—भोजन

९-३० बजे रात—पानी पीकर सो जाना

ये ऊपर के कई कार्य-क्रम नमूने के लिए बताये गये हैं। चिकित्सक को चाहिए कि वह रोगी की शक्ति और आवश्यकता, मौसम (ऋतु), रोग के लक्षण और रोगी की सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए इस किताब में दिये नियमों के अनुसार कार्य-क्रम बनावे।

इस तरह मोटा-मोटी चिकित्सा-क्रम बताने के बाद अलग अलग रोगों के इलाज के बारे में अब कुछ कहा जायगा। ९

पुराना क़ब्ज़ या कोष्ठबद्धता

क़ब्ज़ किसे कहते हैं—

आँतों से मल के नहीं निकलने को क़ब्ज़ कहते हैं। इसी से प्रायः सभी रोग होते हैं। आँतों में सोखने वाली झिल्लियाँ होती हैं, जो मल से जहरीले रस खींचकर सारे शरीर में फैला देती हैं। इस से भयंकर रोग होते हैं।

इलाज—

(१) पहले तीन दिन का उपवास या रसाहार, फिर फलाहार और फल-दूध या मठा। इसके बाद एक हफ़्ते तक एक समय रोटी-भाजी और एक समय फल। फिर दोनों समय इस किताब में बताये ढंग से उचित भोजन जिसमें आधी मात्रा कच्ची सब्ज़ी या फलों (सलाद) की जरूर हो।

उपवास या रसाहार और फलाहार के दिनों में हर रोज़ और बीच बीच में जब जरूरत हो तो एनीमा लेना चाहिए।

(२) उपवास या रसाहार के बाद पहले एक हफ़्ते तक सुबह-शाम पेड़ू-नहान, फिर एक समय पेड़ू-नहान और दूसरे समय मेहन-नहान।

(३) *कसरत (आगे बताई जायगी) या अपनी शक्ति भर दो से छः मील तेज़ी से रोज टहलना। रीढ़ की हल्की मालिश।*

(४) पाखाने के समय जोर नहीं करना चाहिए लेकिन सोचना चाहिए कि पाखाना आ रहा है।

(५) पाखाने के लिए दिन में दो समय बंधे होने चाहिए।

बहुत दिन के पुराने कब्ज में दो महीने के बाद फिर उपवास करके ऊपर बताये क्रम को दुहरा जाना चाहिए। कब्ज अच्छा होने के बाद भी उचित भोजन और कसरत को जारी रखना चाहिए लेकिन पेडू और मेहन-नहानों को छोड़ देना चाहिए।

कब्ज में स्नायु की, खासकर पेट और आँतों के स्नायुओं की, कमजोरी रहती है। जब तक ये नहीं जगते और मजबूत होते तब तक कब्ज नहीं जा सकता। जब उपवास और फलाहार से पेट को आराम मिलता है, एनीमा से पहले का इकट्ठा मल निकल जाता है और नहानों से स्नायु जग जाते हैं तभी कब्ज दूर हो सकता है।

मामूली कब्ज मे और कुछ न खाकर सिर्फ चोकरदार आटे की मोटी रोटी खूब चबा चबाकर खाना और उसी पर कुछ दिन रहना बहुत लाभदायक होता है। पानी खाने के साथ या तुरन्त बाद न पीना चाहिए।

एक प्याला गर्म पानी के साथ आधे या एक नीबू का रस निचोड़कर दिन में दो-तीन बार पीने से भी कब्ज दूर हो जाता है। खाने के बाद एक चुटकी बारीक रेत (बालू) पानी के सहारे निगल जाने से भी पाखाना साफ आता है।

कौन कब्ज से बचा है—

याद रहे कि वही आदमी कब्ज से बचा हुआ समझा जा

सकता है, जिसे पाखाने के लिए बैठते ही एक या दो बड़े टुकड़े बँधे और ऐसे मल के आ जाँय, जिसमें बदबू न हो। बाकी सभी कब्ज के शिकार हैं।

सर्दी-जुकाम

जब पाखाना, पेशाब, साँस और पसीना के साथ शरीर के विकार ठीक ठीक बाहर नहीं निकलते तब कभी कभी प्रकृति यह प्रबंध (इन्तज़ाम) करती है कि ये विकार नाक और गले की झिल्लियों से निकाले जांय। तभी छींकें आती हैं, नाक से पानी बहता है और गले में खराश मालूम होती है। इसी को सर्दी-जुकाम कहते हैं। कभी कभी बुखार भी होता है।

इलाज—

(१) दो या तीन दिनों का उपवास। पानी के साथ नींबू का रस या नारंगी का रस दिन में तीन बार लेना चाहिए, जिससे जुकाम और भी बह जाय। फिर दो दिनों तक फलाहार या सब्जी का भोजन। इसके बाद उचित भोजन।

(२) तीन-चार दिन तक हर रोज एनीमा।

(३) आराम करना।

(४) जरूरत हो तो, दिन-रात में एक बार पैरों का गर्म-नहान।

जुकाम शुरू होते ही अगर भाप-नहान और उसके बाद पेडू-

नहान ले लिया जाय तो पहले ही दिन जुकाम जाता रहता है, लेकिन ऊपर बताया पूरा संयम कर लेना चाहिए।

जुकाम को मत दबाओ—

जुकाम को दवाइयों से रोकना न चाहिए। बार बार जुकाम को दबाने से शरीर के अन्दर का विकार अन्दर ही रह जाता है, जिससे आगे चलकर गठिया या और कोई जीर्ण रोग हो जाता है।

ज्वर या बुखार

बुखार क्यों होता है—

अनुचित रहन-सहन और खान-पान से शरीर के सभी हिस्सों मे विकार जमा हो जाता है। उसी से शरीर में जोश भी उभडता रहता है। यह जोश विकार के टुकड़े टुकड़े कर देता है। फिर जोश के कारण इन टुकडों मे रगड़ पैदा होती है, तभी शरीर की गर्मी बढ जाती है। इसी को बुखार कहते हैं।

बुखार के भेद—

बुखार की बहुत सी क़िस्मे हैं, पर चाहे जितनी भी किस्में हों शुरू शुरू में सभी बुखार एक हैं। आगे चलकर भी वह एक ही रहता है, पर लक्षण अलग अलग दिखते हैं। अगर शुरू में ही बुखार का ठीक इलाज किया जाय तो ज्यादा से ज्यादा दो तीन दिन में वह चला जाता है। इसे अच्छी तरह समझना

चाहिए। बुखार पहले ही दिन तो टाइफॉयड या चेचक या गर्दनतोड़ बुखार या कोई और बुखार नहीं हो जाता। पाँच-सात दिन के बाद विद्वान डाक्टर कहते हैं कि ऐसा बुखार हो।गया। लेकिन प्राकृतिक चिकित्सक बात की बात मे बुखार को उड़ा देता है और आगे चलकर न तो नाम धरने की ज़रूरत पड़ती है और न कोई खतरनाक हालत ही होती है।

इलाज—

(१) जब तक बुखार छूट न जाय उपवास करना चाहिए। उपवास के समय पानी के साथ नींबू का रस दे सकते हैं। कम-ज़ोर रोगियों को भी एक-दो दिन पूरा उपवास करा के सन्तरे या अनार या अंगूर का रस भी थोड़ी थोड़ी मात्रा में दे सकते हैं। बुखार छूटने पर दो दिन फलाहार और तब उचित भोजन।

(२) अगर पहले दिन कुछ परेशानी न हो और बुखार १०२ डिग्री तक ही रहे तो सिर्फ एक बार एनीमा दीजिए। दूसरे दिन भी अगर परेशानी न हुई और बुखार ज्यादा न बढ़ा तो पहले दिन की ही तरह एक बार और एनीमा दीजिए। ऐसा करने से बहुत से बुखार जाते रहेंगे, लेकिन अगर पहले दिन से ही परेशानी है और बुखार भी तेज़ है तो एनीमा के दो-तीन घंटे बाद पेड़ू-नहान दीजिए। अगर ज़रूरत हो तो दो घंटे बाद फिर पेड़ू-नहान दीजिए। जल्दी जल्दी के पेड़ू-नहान गर्मियों में १० मिनट और जाड़े में ७ मिनट के लिए देना चाहिए। इस तरह के तेज़

और परेशान करने वाले बुखार भी एनीमा और पेड़ू-नहान से दो-तीन दिन में जरूर चले जायंगे, लेकिन बुखार के शुरू होते ही इलाज शुरूकर देना चाहिए। बहुत तेज बुखार में सुबह-शाम दोनों बार एनीमा देना चाहिए। दूध का व्यवहार बिल्कुल मना है।

जैसे जैसे बुखार की तेजी कम होती जाय नहान भी देर से देना चाहिए। मामूली बुखार की हालत में अगर पेड़ू-नहान देना ही पड़े तो एक या दो बार काफी है।

(३) अगर बुखार के साथ कोई और तकलीफ हो तो तकलीफ की जगह पर मिट्टी की पट्टी या कपड़े की गीली पट्टी का इस्तेमाल करना चाहिए। मिट्टी की पट्टी पेड़ू पर वैसे भी या नहान के बदले दी जा सकती है।

(४) अगर बुखार के बीच में, जब कि रोग का कुछ नाम रख दिया गया है, रोगी मिले तो इलाज का एक क्रम ठीक कर लेना चाहिए। नमूने के लिए एक क्रम नीचे दिया जाता है :—

६ बजे सुबह—पेड़ू पर मिट्टी और तब तुरन्त ही पेड़ू-नहान।

७-३० बजे सुबह—रसाहार

१०-३० बजे सुबह—रसाहार

१२-३० बजे दोपहर—पेड़ू-नहान या पेट पर कपड़े की गीली पट्टी

२ बजे तीसरे पहर—रसाहार

४ बजे शाम—पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी और उसके बाद एनीमा

बहुत कमजोरी और पतले दस्त आने की हालत में, जैसा कि कभी कभी टाइफ़ॉयड में होता है एनीमा न देना चाहिए। लेकिन अगर कुछ दिनों के बाद फिर कब्ज़ हो जाय तो एनीमा देना चाहिए।

६ बजे शाम—रसाहार

(५) अगर पेड़ू-नहान न बन सके तो मेहन-नहान दीजिए। कुछ न बने तो पेड़ू पर मिट्टी या कपड़े की गीली पट्टी दीजिए।

(६) जब जब बुखार तेज हो पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी दीजिए। १०३ डिग्री से ज्यादा बुखार हो तो सर पर गीले कपड़े की पट्टी भी दीजिए। जैसे ही ये पट्टियाँ गर्म हो जांय वैसे ही या तो इन्हें बदल देना चाहिए या उस समय के लिए बिल्कुल अलग कर देना चाहिए।

(७) रोगी को आराम से लेटना चाहिए।

(८) हर रोज गीले कपड़े से रोगी का शरीर अच्छी तरह पोंछ देना चाहिए। उस समय कमरा बन्द रहे। बुखार छूटने के कुछ दिनों के बाद जब रोगी अनाज खाने लगे तो वह पूरा पूरा मामूली नहाना शुरू कर सकता है।

× × ×

बहुत बार ऐसा हुआ है कि छठे सातवें दिन बुखार का नाम मियादी या टाइफ़ॉयड रख दिया गया। इसी समय रोगी की प्राकृतिक चिकित्सा शुरू कर दी गई। दो पेड़ू-नहान के बाद टाइफ़ॉयड काफ़ूर हो गया। किसी किसी टाइफ़ॉयड में ज्यादा दिन लगते हैं, पर इस चिकित्सा से किसी में भी वैसे उपद्रव नहीं होते जैसे कि टाइफ़ॉयड में अक्सर होते हैं।

१९३५ की गर्मियों में एक साहब अल्मोड़ा पहाड़ के एक गाँव में मुझे मिले। वह चार साल से मलेरिया (जाड़ा-बुखार) से परेशान थे। जब जब मलेरिया होता तो कुनैन खाकर उसे दबा देते। इन्जेक्शन भी उन्होंने लिया था। फिर भी मलेरिया पीछा नहीं छोड़ता था। उन्हें मैंने तीन दिनों का पूरा उपवास कराया और फिर उपवास के बाद एक हफ्ते तक सिर्फ किशमिश पर रखा। तीन-चार दिन सुबह-शाम एनीमा से पेट साफ किया गया। मलेरिया ऐसा गया कि आज (२५ मई, सन् १९३६ ई०) तक नहीं लौटा है। इन रोगी को न तो पेडू-नहान दिया गया और न मिट्टी की पट्टी। इन इलाजों के बारे में सच्ची बात यह है कि असल काम प्रकृति करती है—नहान इत्यादि से उसे सिर्फ मदद मिलती है।

किसी तरह के बुखार में ऊपर बताये ढंगों से काम ले सकते हैं। रोगी की हालत और शक्ति के अनुसार उपचारों को ठीक करना चाहिए। जल्दी बाजी और विलम्ब दोनों ही खराब हैं।

चेचक

चेचक के बारे में याद रखना चाहिए कि पहले दिन से ही चेचक नहीं निकलती। तीन-चार दिनों के बाद दाने निकलते हैं। पहले बुखार रहता है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, बुखार होते ही उसकी प्राकृतिक चिकित्सा करने से वह एक-दो दिन में जाता रहता है, और फिर न तो चेचक निकलती है न टाइफॉयड होता है और न और कोई कठिन बीमारी होती है।

जभी शक (सन्देह) हो कि यह चेचक का बुखार है तो और उपायों के साथ अगर बन सके तो सारे बदन की एक गीली पट्टी भी दे दीजिए। सुबह में पेडू-नहान, दोपहर में गीली पट्टी और शाम को पेडू पर मिट्टी और एनीमा—बस, दो दिन ऐसा ही करने से बुखार (और उसके अन्दर छिपी हुई चेचक) अगर पहले दिन नहीं तो दूसरे दिन जरूर जाता रहेगा।

कई चेचक के रोगियों को, जिनके दाने भी निकल चुके थे, मैंने हर रोज रसाहार के साथ-साथ सिर्फ एक एनीमा देकर अच्छा किया। एक चेचक का रोगी मुझे एक ऐसे पहाडी स्थान में मिला जहाँ कोई फल न मिलता था। दूध भी भैंस का ही मिलता था। उसे एक हिस्सा दूध के साथ दो हिस्सा पानी मिलाकर हर रोज देता और साथ ही एनीमा से पेट भी साफ कर देता था। रोग देखने में कठिन मालूम होता था, पर १५ दिनों के बाद दानों के दाग भी न रह गये।

चेचक में तभी खतरा होता है, जब कि दाने अच्छी तरह नहीं निकलते। ऐसी हालत में भाप-नहान और उसके बाद नहलाकर पेडू-नहान देते हैं। एक भाप-नहान काफी है अगर जरूरत ही हो तो दूसरे दिन एक और दिया जा सकता है। अगर पेडू पर दाने निकल आये हों तो भाप के बाद मेहन-नहान देते हैं। यह भी न बन सके तो पेडू पर मिट्टी या कपडे की गीली पट्टी रखते हैं। यह भी न हो सके तो भाप-नहान के बाद सिर्फ नहला कर छोड देते हैं।

गहोल्क वून्ट

जर्मनी-निवासी। इन्होंने सिद्ध किया कि मिट्टी के बल और पृथ्वी पर होने और जल पास रहने से लाभ है

चेचक के रोगी को खाना देने में बहुत होशियार रहना चाहिए। अक्सर लोग देवी-देवता समझकर सभी कुछ खिला देते हैं। ऐसा करना बहुत बड़ी भूल है। मामूली हालतों में, जब कि बुखार उतर जाता है और दाने अच्छी तरह निकल आते हैं, सब कुछ खिलाने से हमेशा हर्ज नहीं होता, पर बहुत बार धोखा भी उठाना पड़ता है। बे ढंग खाने पीने से ही मामूली चेचक बढ़कर घातक बन जाती है। खाने के लिए बुखार की हालत में भरसक कुछ नहीं, नहीं तो फलों के रस, और बुखार उतर जाने पर हल्के फल देना चाहिए।

चेचक में रोगी का पेट साफ रखिए और दानों को दबने न दीजिए—बस, बेड़ा पार है।

हैजा

हैजा शुरू होते ही पेड़ू नहान दीजिए। दो-तीन पेड़ू-नहान में ही लक्षण सुधर जायगे। बहुत बार तो एक ही नहान में बीमारी वश में हो जायगी। लेकिन जब जब दस्त आये तब शक्ति के अनुसार ७ या १० मिनट के लिए पेड़ू-नहान दीजिए। यह न हो सके तो पेड पर मिट्टी रखिए। एक हैजा के रोगी को, जिसके सात दस्त आ चुके थे और ४-५ घंटों से पेशाब बन्द था, बीस बीस मिनट पर मिट्टी की पट्टी बदलवा कर मैंने अच्छा किया। पहली पट्टी देते ही पेशाब उतर गया और हालत सुधर गई। दूसरे दिन मिट्टी नहीं मिली, तब मैं कपड़े की मोटी गीली पट्टी रखवाने लगा। शाम

शाम तक हल्का बुखार हो आया। बुखार आने से समझना चाहिए कि खतरा गया। कुछ हालतों में बुखार नहीं भी आता।

हैजे में खाना एक दम बन्द कीजिए। प्यास लगने पर सिर्फ पानी या नींबू के रस के साथ पानी थोड़ी थोड़ी मात्रा में दीजिए। दस्त-कै बिल्कुल बन्द हो जाने के एक दिन बाद पानी मिलाकर फलों के रस दिन में दो-तीन बार दीजिए। दूसरे दिन बिना पानी मिलाया रस। इस तरह चार-पाँच दिन के बाद पहले थालों का पानी और हल्के भोजन पर रोगी को लाइए।

प्लेग

अगर बुखार के शुरू में ही उचित चिकित्सा शुरू कर दी जाय तो प्लेग होगा ही नहीं। इस लिए प्लेग के मरीज का भी इलाज बुखार के मरीज की तरह कीजिए। अगर गिल्टी निकल आई हो तो उस पर मिट्टी की पट्टी भी दिन में तीन से पाँच बार तक दीजिए। एक दो बार पट्टी देने के पहले उस हिस्से को भाप-नहान देना या उस पर गर्म और ठंडी सेंक भी देना चाहिए।

लू लगना

लू लगने में सारे बदन की गीली पट्टी बहुत काम देती है। तीन-तीन या चार-चार घंटे पर सारे बदन की गीली पट्टी के साथ-साथ अदल-बदलकर अगर पेड़ू नहान दिया जाय तो रोगी दूसरे ही दिन भला-चंगा हो जायगा। अगर सारे बदन की गीली पट्टी न हो तो सिर्फ पेड़ू-नहान दीजिए। किसी टब से भी काम

निकल सकता है, पर दोनों का एक साथ प्रयोग करने से रोगी जल्द अच्छा हो जाता है।

भोजन के लिए, जरूरत पड़ने पर, सिर्फ रसाहार।

खाँसी

नई खाँसी ७ से १० दिन तक में जाती है। पुरानी खाँसी में १ से ३ महीने लग सकते हैं।

नई खाँसी मे एक-दो दिन पूरा या रसाहार पर उपवास करके दो-तीन दिनों तक सिर्फ फलाहार या चार-पाँच दिनों तक फलाहार करना चाहिए और उपवास और फलाहार के दिनों मे एनीमा लेना चाहिए। फल न मिले तो सिर्फ तरकारी या सिर्फ रोटी।

पुरानी खाँसी मे पहले दस दिनों तक दोनों समय सिर्फ फल, फिर तीन दिनो का पूरा या रसाहार पर उपवास, फिर एक सप्ताह तक सिर्फ फल, फिर एक सप्ताह तक एक समय रोटी-भाजी और दूसरे समय फल और फिर अगर इच्छा हो तो दोनों समय रोटी-भाजी भोजन के लिए देना चाहिए। अगर जरूरत हो तो इस क्रम को दुहरा दीजिए। फलाहार और रसाहार के दिनों मे एनीमा जरूरी है।

पुरानी खाँसी में पेड़ू-नहान या मेहन-नहान से अच्छी मदद मिलती है। सभी पुरानी बीमारियो मे पहले दो हफ्ते तक दोनो समय पेड़ू-नहान लेकर फिर एक समय पेड़ू-नहान और दूसरे

समय मेहन-नहान लेना चाहिए। अगर दोनों न बन सके तो किसी एक से काम निकल सकता है।

खाँसी की हालत में, निमोनिया में भी, सीने पर और पीठ के नीचे मिट्टी की पट्टी देने से बहुत लाभ होता है। दिन में दो बार ऐसी पट्टी काफी है, पर अगर तीसरी या चौथी बार भी जरूरत हो तो दे सकते हैं। अगर मिट्टी न मिले तो सीने को चारों ओर से लपेटते हुए गीले कपड़े की पट्टी दीजिए और ऊपर से गर्म कपड़ा लपेट दीजिए। बहुत लाभ होगा।

जिस समय खाँसी जोर करे एक छोटे चमचे भर शहद के आधे हिस्से के साथ नींबू के ४-६ बूँद रस को मिला कर चाटने से आराम मिलता है।

दमा

दमे का इलाज पुरानी खाँसी की ही तरह करना चाहिए। यह कुछ ज्यादा समय लेता है, पर जाता जरूर है।

चमड़े और खून की बीमारी

चमड़े की बीमारियों में नमक छोड़ना जरूरी है, इसलिए जब तक बीमारी दूर न हो जाय फलाहार करके ही रहना अच्छा है। हाँ, अगर बिना नमक के सब्जी-भाजी खा सकें तो उनके खाने में कुछ हर्ज नहीं है। मामूली और नई बीमारियों में रोटी भी ले सकते हैं।

पुरानी खुजली और एक्जिमा जैसी बीमारियों में फलाहार के साथ-साथ बीच में उपवास करना जरूरी है। एक २५ वर्ष के पुराने एक्जिमा रोग को लेखक ने चार महीने के फलाहार और बीच-बीच में तीन-तीन दिन के उपवास से बिल्कुल दूर कर दिया था। रोगी के सारे शरीर में चकत्ते और जख्म थे और वह सारे हिन्दुस्तान में घूम घूमकर अपना इलाज करा चुका था।

इस रोगी को फलाहार के साथ-साथ सारे शरीर की गीली पट्टी एक हफ़्ते तक हर रोज दी गई। शाम को हर रोज एनीमा भी दिया जाता था। इससे खाल का हाल कुछ सुधरा सा देख पड़ने लगा। फिर एक हफ़्ते के बाद उसे सुबह-शाम पेडू-नहान दिया जाता था। कुछ ही दिनों में बुखार उभड़ आया, जो एक हफ़्ते तक रहा। बुखार में उपवास कराया गया और पेडू-नहान जारी रहा। बुखार उतरते ही चमड़े के ऊपर की तकलीफ़ पहले से कहीं ज्यादा बढ़ गई, जिसका मतलब है कि अन्दर की छिपी खराबियाँ अच्छी तरह ऊपर प्रकट हो गईं। अब दो-चार पेडू नहान के साथ दोपहर में उसे सारे शरीर की गीली पट्टी भी दी जाने लगी। भाप-नहान से अच्छा काम हो सकता था, लेकिन रोगी दूसरे शहर में था और लेखक दूसरे में, और लेखक अपनी गैर-हाजिरी (अनुपस्थिति) में भाप-नहान दिलवाना नहीं चाहता था। पन्द्रह दिनों के बाद यह तकलीफ़ कम होने लगी। फिर तीसरे महीने के अन्त में जुकाम हो गया। जुकाम में रोगी को फिर उपवास कराया गया। जुकाम अच्छा होने के बाद से ही उसकी

हालत अच्छी होने लगी। यह रोगी बहुत माँस खाता था, अब नहीं खाता। शरीर बिल्कुल नया हो गया है।

एक दूसरे पुरानी खुजली के रोगी को लेखक ने सिर्फ रोटी पर रखा और हर रोज गंगा में नहलवाया। नहाते समय वह अपने बदन में मिट्टी भी रगड़ता था। पूछा जा सकता है कि उसे रोटी पर क्यों रखा गया। इसलिए कि फलों के लिए उसके पास पैसे न थे। बात यह है कि सिर्फ रोटी या और किसी एक चीज के पचाने में शरीर को ज्यादा ताकत नहीं लगानी पड़ती। बची हुई ताकत रोग को दूर करने में लग जाती है। प्रकृति तो खुद ही रोग को दूर करना चाहती है, पर शरीर की सभी शक्तियाँ अधिक भोजन के पचाने, विकारों से लड़ने और ऐसी ही ऐसी फजूल बातों में लगी रहती हैं।

बहुत दिन हुए, एक कोढ़ के रोगी को लेखक ने अपना इलाज आप ही करते देखा था। उन दिनों न तो लेखक और न रोगी ही प्राकृतिक चिकित्सा के बारे में कुछ जानता था। जीवन से निराश होकर यह रोगी थोड़े से चने लेकर एक पहाड़ी पर रहने चला गया। उसने सोचा था कि चनों के खत्म हो जाने के बाद उपवास रखकर प्राण दे दूँगा। दो-तीन दिन में चने खत्म हो गये। रोगी ने लगभग एक हफ्ते तक उपवास किया। इससे वह मरा नहीं, पर उसे खुलकर भूख लगने लगी। पास में नीम के दरख्त थे। भूख के मारे उसने नीम के पत्तों को चबाना शुरू किया। नीम में खून साफ करने की ताकत है। एक-दो दिनों में ही

उसकी जाने की लालसा लौट आई। साथ ही उसने सोचा कि चने और नीम के पत्ते ही खाकर रहूँ तो अच्छा है। उसने मकान से चने मँगवाये। इस तरह ४-५ महीने वह पहाड़ो पर रहा। वहाँ वह खुली हवा में रहता, झरने के साफ पानी में नहाता और चने खाकर अपने दिन बिताता। इन सबों का असर हुआ। प्रकृति के नियम के अनुसार शरीर की शक्तियाँ जग गई और रोग को जड़-मूल से दूर कर दिया। उस समय तो नहीं, पर इन दिनों लेखक ने उस घटना (वाक्या) से यह सबक सीखा कि शरीर की शक्तियों का बेकार चीजों के पचाने से बचाकर जितना कम ह्रास किया जाय उतना ही ये शक्तियाँ रोगों को दूर करने में समर्थ होती हैं।

मामूली फोड़े फुन्सियों और जख्म पर दिन में दो-तीन बार मिट्टी की पट्टी देने से ही वे एक दो दिन में जाती रहती हैं। बड़े फोड़ों में जिनमें बुखार भी रहता है, उपवास या रसाहार के साथ-साथ पेडू-नहान लेना और फोड़े पर भाप और मिट्टी देना चाहिए।

उपदंश (गर्मी) और सूजाक का इलाज भी ऊपर बताये ढंग से करना चाहिए। समय लगेगा।

कोढ़

ऊपर दी हुई बातो को पढ़कर पाठक समझ सकते हैं कि कोढ़ रोग भी अच्छा किया जा सकता है। कोढ़ का इलाज चमड़े की बीमारी की ही तरह करना चाहिए। जो बहुत ही पुराना और बिगड़ा कोढ़ है वह तो नहीं जायगा, बाकी और सब चले जॉयगे।

समय छः महीने से तीन साल तक लग सकता है। कोढ़ के रोगियों के खून मे अक्सर आतशक (गर्मी, उपदंश) का जहर रहता है, जो जरा देर से दूर होता है।

गठिया

कारण और प्रकार—

गठिया के कई प्रकार हैं। किसी मे पुट्ठो में, किसी में जोड़ों में और किसी में पुट्ठो और जोड़ो दोनों में दर्द और सूजन होती है या सिर्फ दर्द होता है। किसी हिस्से में भी दर्द हो, कारण एक ही है। अनुचित आहार-विहार से खून में खटाई (acidity) का माद्दा बहुत बढ़ जाता है। साथ ही खून गाढ़ा होकर सरेस की तरह हो जाता है, जिससे खून के दौरान (रक्त-संचार) मे बाधा पड़ती है। जहाँ ऐसी बाधा पड़ती है वहाँ दर्द और सूजन हो जाती है। कभी कभी जोड़ों में सख्ती हो जाती है। उपवास, उचित भोजन और एनीमा-प्रयोग से खून को साफ कर देने पर यह रोग जाता रहता है।

इलाज—

(१) जिस गठिया के साथ-साथ बुखार रहे, जैसा कि नये गठियो में अक्सर होता है खाना बन्द कर देना चाहिए। नींबू, सन्तरा, चकोतरा, मीठे नींबू या अनन्नास का रस पानी के साथ या यों ही बहुत लाभ के साथ दिया जा सकता है। ये फल गठिया के दुश्मन हैं। बुखार उतरने के बाद कुछ दिनों तक फलाहार, फिर सिर्फ रोटी और फल या पत्तीदार भाजी पालक और टमाटर

बहुत अच्छे होते हुए भी किसी किसी गठिया के रोगी के लिए वर्जित हैं। उनमें एक प्रकार की खटाई, आक्जेलिक एसिड (oxalic acid), होती है। अगर इनके इस्तेमाल से तकलीफ़ बढ़ने लगे तो इनका खाना कुछ दिनों के लिए बन्द कर देना चाहिए। अगर तकलीफ़ न बढ़े तो इनका खाना जारी रखना चाहिए।

(२) पुराने गठिया में फलाहार के साथ-साथ बीच बीच में उपवास।

(३) एनीमा का प्रयोग (इस्तेमाल) इलाज के शुरू से ही करना चाहिए।

(४) तकलीफ़ की जगह पर मिट्टी की पट्टी और भाप-नहान हर रोज़ या एक रोज़ यह और दूसरे रोज़ वह देना चाहिए।

(५) हर हफ़्ते एक बार सारे शरीर का भाप-नहान या हर दूसरे-तीसरे धूप-नहान और दोनों के बाद पेड़ू-नहान।

(६) कुछ दिनों के बाद अगर बन सके तो हर रोज़ मेहन-नहान या पेड़ू-नहान या दोनों।

(७) तकलीफ़ की जगह पर और सारे बदन में हर रोज़ तेल की हल्की हल्की मालिश।

(८) दिन भर का एक उचित कार्य-क्रम बना लेना चाहिए, जैसे रोग के शुरू होते ही दो-तीन उपवास के बाद—

५-३० बजे सुबह—पेड़ू पर मिट्टी और उसके बाद एनीमा
७ बजे सुबह—रसाहार

९ बजे सुबह—तकलीफ की जगह पर मिट्टी की पट्टी और भाप-नहान और उसके बाद पेड़ू-नहान

१०-३० बजे सुबह—फलाहार

१२-३० बजे दिन—धूप-नहान और पेड़ू-नहान

५ बजे शाम—रसाहार या फलाहार

६ बजे शाम—पेड़ू पर मिट्टी और एनीमा

७-३० बजे रात—रसाहार

ऊपर का कार्यक्रम नमूने के लिए है। इसमें हेर-फेर किया जा सकता है। कुछ दिनों के बाद एक समय और कुछ और दिनों के बाद दोनों समय सिर्फ रोटी या रोटी-भाजी दी जा सकती है।

गठिया हठी रोग है। पुराना गठिया, जिसमें जोड़ सख्त हो गये हैं, दो से चार साल तक में अच्छा होता है, पर उचित चिकित्सा से जल्द और जरूर चला जाता है। यदि रोग बहुत पुराना हो तो एक-डेढ़ महीने के फलाहार के बाद रोगी एक-डेढ़ महीने के लिए रोटी या रोटी-भाजी खाकर फिर फलाहार और बीच-बीच में उपवास शुरू करें, पर सिर्फ फलाहार पर रहना अच्छा है।

लेखक ने ५-६ साल के पुराने गठिया के एक रोगी को तीन महीने तक सिर्फ फलाहार पर रखकर और बीच-बीच में उपवास कराकर अच्छा किया। जल-चिकित्सा के रूप में वह पहले कुछ दिनों तक ठंडे पानी से सर को धोकर, गर्दन से नीचे गर्म पानी से नहाता था और फिर तुरन्त ही ठंडे पानी से नहा लेता था। नहाने

के बाद वह शरीर को तौलिए से पोंछता न था, बल्कि हथेली से बदन को रगड़ रगड़कर पानी सुखा देता था। उसका सारा शरीर जकड़ा हुआ था। एक दूसरे रोगी को लेखक ने सिर्फ चने की पत्तियों के कच्चे और पकाये साग पर दो महीने तक रखकर अच्छा किया। एक बुढ़िया, जो मरना चाहती थी, सिर्फ शरीर के बाहर अच्छी हो गई। इन दोनों रोगियों ने और कुछ उपचार न किये। फलों और भाजियों में खून की खटाई को दूर करने की ताकत है, और साथ ही हल्के भोजन के कारण शरीर की शक्तियां बचकर रोग को दूर करने में लग जाती हैं।

आँखों के रोग

आँख उठने में तीन से पांच दिन के लिए फलाहार के साथ साथ दिन में एक-दो बार एनीमा और दो बार आँखों पर मिट्टी की गीली पट्टी बाँधना काफी है। आँखें जल्दी ही साफ और अच्छी हो जायँगी। आँखें उठने के लक्षण देखते ही अगर यह उपचार शुरू कर दिया जाय तो पहले ही दिन तकलीफ जाती रहती है। अगर आँखों में तकलीफ ज्यादा हो और कुछ दिन पहले से आँखें उठी हों तो दिन में एक या दो बार पेडू-नहान भी देना चाहिए। मामूली रोटी सब्जी भी खा सकते हैं, पर आँख के नये रोगों में नमक का इस्तेमाल छोड़ देना ज्यादा अच्छा है।

इस चिकित्सा से आँखों का कोई भी रोग दूर हो सकता है। आँखों की रोशनी का कमजोर होना, दूर की चीजें देख सकना

लेकिन पास को नहीं, पास की चीजें देख सकना लेकिन दूर की नहीं, धुँधला दिखाई देना, मोतिया-बिन्द (बहुत पुराना नहीं) वगैरह आँख के सभी रोग प्रकृति का सहारा लेने से जाते रहते हैं। इसके लिए भोजन-सुधार के साथ साथ पेडू नहान, मेहन-नहान, रीढ की गीली पट्टी और आँख पर और गर्दन के पीछे के हिस्से पर गीली मिट्टी की पट्टी से ऊपर बताये नियमों के अनुसार काम लेना चाहिए। इलाज शुरू करने से पहले तीन दिन का उपवास या रसाहार और फिर बीच-बीच में एक दो दिन का उपवास लाभदायक है। हर रोज़ के लिए कार्यक्रम बना लेना चाहिए। पहले दो-तीन हफ्ते तक दोनों समय पेडू नहान और एक किसी समय पेट और आँखों पर मिट्टी की पट्टी और फिर एनीमा चलना चाहिए। सोकर उठते ही और सोने से पहले आँखों पर ठंढा पानी भोंकना चाहिए फिर एक बार पेडू-नहान और दूसरी बार मेहन-नहान लेना चाहिए। यदि दोपहर में समय मिले तो मेहन-नहान के बदले रीढ की गीली पट्टी लाभ के साथ ली जा सकती है। बीच-बीच में पन्द्रह पन्द्रह दिनों के लिए आँखों पर मिट्टी की पट्टी भी देनी चाहिए। दो-तीन महीने के बाद आँखों को कुछ खास कसरत देनी चाहिए। आँखों की कमजोरी या पुरानी बीमारी अच्छी होने के लिए तीन से छः महीने या इससे कुछ ज्यादा समय भी लेती है, पर जाती जरूरी है। लेखक और दूसरे दूसरे प्राकृतिक चिकित्सकों ने बहुतों को इस योग्य बना दिया कि उन्होंने चश्मा लगाना छोड़ दिया।

आँखों की कसरत —

(१) सवेरे के निकलते हुए सूर्य की तरफ कुछ देर एक टक देखना।

(२) जब कभी आँखें मटमटाना।

(३) पुतलियों से बार-बार लेकिन धीरे-धीरे ऊपर और नीचे देखना।

(४) पहले बहुत दूर की किसी चीज को एक टक थोड़ी देर तक देखिए और फिर बिना पलक झपाए ही बहुत पास की किसी चीज को—अपने हाथ में लिए पेन्सिल की नोक को—देखने लग जाइए। इसे कई बार कीजिए।

(५) आँखों की पुतलियों को पहले एक तरफ से और फिर दूसरी तरफ से गोला गोला घुमाइए।

आँखों की और भी कसरतें हैं, पर ऊपर दी हुई काफी हैं। इन कसरतों में बहुत जोर न लगाना चाहिए। कसरतों के साथ-साथ और दिन में और कई बार भी आँखों को आराम देना चाहिए।

आँखों को आराम देना —

(१) आँखों को आराम देने के लिए उनको जब कभी हल्के-हल्के मटमटाना (बन्द करना और खोलना) अच्छा है।

(२) बन्द आँखों को हाथों की तलहथी से इस तरह ढकना कि तलहथी एक दूसरे पर तिर्छे रहें और पुतलियों को जोर से

न दबाएँ। इसे अंगरेजी में 'पामिंग' (palming) कहते हैं। पामिंग करते समय आराम से बैठना या लेटना चाहिए खासकर गर्दन और सिर के हिस्सों में तनाव न रहे। उस समय कोई चिन्ता वाली बात न सोचनी चाहिए। आँखें बन्दकर काली बिन्दुओं को देखिए और सोचिए कि ये बिन्दुएँ बड़ी होती जा रही हैं।

आँखों की कसरत से पहले और कसरतों के बीच-बीच में 'पामिंग' जरूर करना चाहिए।

चश्मों का अभ्यास, जितना जल्द हो सके, छोड़ने लग जाइए। पहले तकलीफ मालूम होगी, पर ऐसा करना जरूरी है। चश्मों का सहारा छोड़ने से ही आँखें अपना काम ठीक ठीक करने लगेंगी। लेखक के एक ६० वर्ष के मित्र ने, जिन्होंने ४५ वर्ष चश्मों का व्यवहार किया था, अभी हाल में ही चश्मा लगाना छोड़ दिया। उन्होंने अपने को इतना सबल और स्वस्थ बनाया कि चश्मों की जरूरत ही न रह गई। आँख भी तो शरीर का एक हिस्सा है। सारे शरीर को—खून और स्नायु-जाल को—ठीक कीजिए, आँखों की माँसपेशियों को मजबूत कीजिए और उन्हें उचित आराम दीजिए—वे जरूर ही ठीक हो जायँगी।

अपच

पेट के इलाज के बारे में पहले बताया जा चुका है। अपच का मतलब है खाना ठीक ठीक न पचना, भूख न लगना पाखाना न होना या पतला होना, इत्यादि इत्यादि।

इसको दूर करने के लिए पहले उपवास, फिर हल्का भोजन—ऐसा भोजन, जिसे पेट आसानी से पचा सके—फिर बीच बीच में उपवास, पेडू और मेहन-नहान, धूप-नहान और अपनी ताकत भर दो से छ मील तक टहलना जरूरी है। पुराने अपच में ३ महीने से २ साल तक का समय लग सकता है। शरीर नया हो जायगा।

अपच अक्सर पेट के बड़े होने और नीचे लटकने से भी बना रहता है। इसके लिए उपवास और कसरत लाभदायक हैं। कसरतों में सर्वांगासन विशेष लाभदायक है। यह आसन आगे बताया जायगा।

आँव

जब तक आँव गिरती रहे तब तक सिर्फ रसाहार और सुबह-शाम पेडू पर मिट्टी की पट्टी और शक्ति के अनुसार एक या दोनों पट्टियों के बाद एनीमा प्रयोग, ऐंठन ज्यादा होने पर पेडू और पेट पर गर्म गर्म टढी सेंक या कभी कभी मिट्टी की गर्म पट्टी। आँव के बिल्कुल निकल जाने पर पहले दो दिन हल्की बिना छिलके की पकी भाजी, फिर दो दिन इसके साथ पतला मठा और फिर साधारण भोजन पर आना चाहिए।

दर्द

पेट का दर्द—

पेडू पर मिट्टी और उसके बाद गुनगुने पानी का हल्का एनीमा। अगर जरूरत हो तो आध घंटे के बाद फिर पट्टी को

दुहरा दीजिए। पुराने और बहुत दिनों तक चलने वाले दर्द में दिन में दो-तीन बार पेडू पर मिट्टी की पट्टी, एक बार एनीमा और एक या दो बार पेडू-नहान भी लेना चाहिए। गर्म और ठंडी सेंक भी आजमाइए।

जब तक दर्द रहे कुछ नहीं खाना चाहिए। बहुत दिन तक चलने वाले दर्द में रसाहार या सूप-पान और पीछे मठा पीकर रहना अच्छा होता है। गरम या ठंडे पानी के साथ नींबू या सन्तरे का रस सभी हालतों में लाभ के साथ दिया जा सकता है।

सिर और कान के दर्द—

पेडू पर (और गर्दन के पीछे के हिस्से पर) मिट्टी की पट्टी और एनीमा। सिर का दर्द अक्सर पेट की खराबी से ही होता है। इसलिए पेडू पर मिट्टी रखने के बाद अगर एनीमा दे दिया जाय तो अच्छा होगा। पुराने सिर-दर्द में कई दिनों तक पेडू-नहान और मेहन-नहान या रीढ़ की गीली पट्टी भी जरूरी हैं।

भोजन के लिए बहुत तेज दर्द में सिर्फ रसाहार, कम तेज दर्द में फलाहार या शाकाहार और हल्के दर्द में रोटी-भाजी भी ले सकते हैं।

किसी भी दर्द में, चोट में और मोच में, दर्द के स्थान पर *मिट्टी की पट्टी या गर्म-और-ठंडी सेंक (यह सिर में नहीं) या* दोनों बीच बीच में अन्तर देकर तब तक जारी रखना चाहिए जब तक दर्द दूर न हो जाय। अगर गहरी चोट और तेज या पुराना दर्द है तो भोजन-सुधार पर भी ध्यान देना चाहिए। नींबू

का रस किसी भी हालत में इस्तेमाल कर सकते हैं। कान के दर्द में तिली के तेल में नींबू का रस मिला कर और उसे जरा गर्म कर थोड़ा थोड़ा कान में छोड़ना चाहिए। कान के ऊपर और जड़ में चारो तरफ मिट्टी की पट्टी भी बाँध सकते हैं। कान में भाप दी जा सकती है।

अपेन्डिसाइटीस

जहाँ पर छोटी आँत बड़ी आँत से मिलती है वहीं पर पास में ही, एक छोटी सी चीज रहती है, जिसे अँगरेजी मे अपेन्डिक्स वर्मीफोरम (appendix vermiforum) कहते हैं। उसकी जलन-सूजन और उससे उभड़ी तकलीफ को 'अपेन्डिसाइटीस' कहते हैं। इसमे बड़ी परेशानी होती है, पेट की दाहिनी तरफ भयानक दर्द उठता है। विद्वान डाक्टरो की राय में नश्तर देकर अपेन्डिक्स को निकाल देना ही इसका इलाज है। लेकिन प्राकृतिक चिकित्सकों की राय में अपेन्क्सि एक जरूरी अंग है, और यह बीमारी अपने दोष से होती है। इस के शुरू होते ही पूरा उपवास करना चाहिए। बीच-बीच मे सिर्फ गर्म पानी पीना चाहिए। दर्द की जगह पर गर्म सेंक जब-जब दर्द बढ़े देनी चाहिए। सहने लायक गर्म पानी का हल्का एनीमा, अगर बन सके, तो सुबह-शाम या एक समय देना चाहिए। तीसरे रोज तक एक पूरा एनीमा दिया जा सकता है। जब दर्द शान्त हो जाय तो तीन-चार दिन रस पर रहकर तब रसदार फल खाना शुरू करना चाहिए।

अन्न देर से शुरू करना चाहिए। अन्न शुरू करने पर नहान भी शुरू कर देना चाहिए।

नश्तर तभी जरूरी है, जब कि बहुत दिनों की लापरवाही या गलत इलाज से अपेन्डिक्स में मवाद आ गया है। अगर शुरू-शुरू में ही ठीक इलाज हुआ तो एक हफ्ते में तकलीफ बिल्कुल जाती रहती है, लेकिन शरीर को ठीक करने के लिए महीने डेढ महीने का संयम और नहान इत्यादि जरूरी हैं।

जख्म

चार बातों पर ध्यान दीजिए :--

(१) जख्म को साफ रखना। उसे हर रोज गर्म पानी में, जिसमें चार-छः बूँद नींबू के रस (ज्यादा नहीं) पड़े हों, धो दीजिए।

(२) दिन में एक बार मिट्टी की पट्टी जरूर रखिए और पट्टी हटाने के बाद जख्म को ठंडे पानी से धो दीजिए। अगर जख्म पुराना और गंदा है तो मिट्टी की पट्टी के बाद उस पर भाप नहान भी दीजिए।

(३) जख्म को बराबर छिपा कर न रखिए। नारियल के तेल में चार-छः बूँद नींबू का रस डालकर ऊपर से मरहम की तरह जब तब लगाइए। मक्खी नहीं बैठेगी।

(४) पुराने जख्मों के इलाज में भोजन-सुधार भी करना होता है।

दाँतों के रोग

दाँत भी शरीर के अंग है। सारे शरीर की खराबी के कारण और उसी के साथ-साथ दाँतो की जड मे खराबी पैदा हो जाने से दाँतो के बहुत से रोग होते है। दाँतों की खराबी का एक खास कारण है मुलायम चीजो का खाना, जिससे दाँतो की कसरत नहीं हो पाती और दाँतों की जड़ में काफी खून नहीं पहुँचता। इन रोगों में मसूढों से खून निकलना और पायरिया मशहूर हैं। विद्वान डाक्टर तो दाँतो को उखडवा कर ही दम लेते हैं। लेकिन क्या दाँतो के उखडवा देने से शरीर के अन्दर की खराबी दूर हो जाती है?

गठिया के रोगी के दाँत भी अक्सर खराब रहते हैं। उनसे कहा जाता है, 'दाँतों से पीप इत्यादि जहरीले पदार्थ निकलते है, जो पेट में जाकर खून को खराब करते है—इसलिए दाँत उखडवा दो।' ऐसा कहने वाले यह नहीं सोचते कि दाँतों मे खराबी कैसे आई। प्राकृतिक चिकित्सा से दाँतो की बीमारी और गठिया दोनों एक ही बार मे खत्म हो जाते है। इसका कारण यही है कि सारा शरीर साफ सुथरा हो जाता है और फिर उसमें किसी तरह की खराबी नहीं रह जाती।

दाँतों की खराबी सारे शरीर की खराबी से होती है, पर इनके विशेष कारण यह भी हैं—ज्यादा मिठाई, खासकर चीनी, खाना, गर्म गर्म चीजें खाना, गर्म चीज खाने के बाद

ठंडा पानी पी लेना; बर्फ, आइस-क्रीम और ऐसी ही ठंडी चीजों का इस्तेमाल; बहुत मात्रा में पान और उसके साथ तम्बाकू खाना; दाँतों को हर रोज साफ नहीं करना; बाजारू दवाइयों और मंजनों से दाँत धोना इत्यादि।

दाँतों को अच्छी हालत में रखने के लिए शरीर के अन्दर का खून अच्छा होना चाहिए और खून में 'कैलशियम' (calcium-चूना) और 'सिलिकोन' (silcon) नाम के दो पदार्थों का होना जरूरी है। इसीलिए जो अपने दाँतों को अच्छा रखना या उनकी खराबियों को दूर करना चाहता है उसे चाहिए कि वह इस किताब में बताये ढंग से पहले फलाहार से अपना शरीर शुद्ध करे और तब अपने भोजन को ठीक करे। याद रखना चाहिए कि 'कैलशियम' गाजर, सभी तरह के साग, हरी मटर, मूली, नींबू, चुकन्दर, सन्तरा, अंगूर इत्यादि में और 'सिलिकोन' बिना छने आटे की रोटी, खीरा, ककड़ी, बे-छटे चावलों के भात (*जिसमें माँड़ नहीं निकाला गया है*) अंजीर, किशमिश और खजूर इत्यादि में पाया जाता है। अगर कोई पहले तीन दिन के उपवास या रसाहार और एनीमा-प्रयोग के बाद १५ दिन सिर्फ फलाहार करे और फिर १५ दिन तक एक वक्त रोटी-साग और दूसरे वक्त सिर्फ फल खाकर ही रहे तो वह दाँतों की बहुत सी बीमारियों को भगा सकता है। बहुत दिनों के पुराने पायरिया में कुछ महीने इसी तरह रहना पड़ेगा, लेकिन इसमें कुछ सन्देह नहीं कि वह अपने दाँतों को फिर से अच्छा कर लेगा।

दुखते हुए मसूढ़ो और दातों की हालत मे मुँह और दाँतो को हर रोज कुछ दिनों तक भाप-नहान देना चाहिए। मसूढ़ों की उँगलियों से हल्की हल्की मालिश करनी चाहिए। साथ ही साथ अगर पेड़ू-नहान और मेहन-नहान लिये जायँ तो दाँतों के कठिन रोग भी जल्द ही दूर होंगे।

दाँतों को साफ करने के लिए बबूल, नीम और आम इत्यादि की दातुन काम में लाना चाहिए। कुछ लोग दाँतों की जड़ के कालापन को दूर करने के लिए उसे रेत रेत कर साफ कराते हैं। यह ठीक नहीं है, क्योंकि इससे दाँत कमजोर पड़ जाते हैं।

दाँत तभी उखड़वाये जाँय जब कि उनकी जड़ बिल्कुल ढीली पड़ गई हो और दाँतों पर कालापन और पीलापन बुरी तरह छा गये हों।

टॉन्सिलाइटीस

गले की घंटी या कौड़ियों की सूजन के लिए अंगरेजी मे इतना बड़ा नाम है। इस बीमारी में खाँसी भी रहती है। डाक्टर इसमें भी नश्तर का ही सहारा लेते हैं और उस हिस्से को काट कर इस भ्रम में पड़जाते हैं कि रोग जाता रहा। वह बेचारा हिस्सा तो सिर्फ यह बताता था कि शरीर में विकार है, जिसका असर (प्रभाव) उस पर पड़ रहा है। भला उसके काट देने से शरीर का विकार क्योंकर दूर हो जायगा? देखा गया है कि जिनकी घंटी इस तरह काट दी जाती है उन्हे

यक्ष्मा

शुरू शुरू की यक्ष्मा (तपेदिक़, थाइसिस) प्राकृतिक चिकित्सा से निश्चय ही जाती है, लेकिन अगर रोगी की जीवन-शक्ति का ह्रास हो गया है या उसका फेफड़ा या शरीर का कोई जरूरी अंग इतना खराब हो गया है कि वह सुधर नहीं सकता तो ऐसा रोगी अच्छा नहीं हो सकता।

यक्ष्मा के रोगी की चिकित्सा में इन बातों पर पूरा ध्यान दीजिए :—

(१) वह बराबर ही ऐसी खुली जगह में रहे, जहाँ उसे सोते जागते साफ हवा मिले। इसी से यक्ष्मा के रोगियों को नदी में नाव पर रहना बताया जाता है। अगर यह न हो सके तो ऐसा प्रबन्ध (इन्तजाम) जरूर करना चाहिए कि रोगी अच्छी, साफ और खुली जगह में रहे। जाड़ों में भी रात के समय उसे रजाई या कम्बल से अच्छी तरह ढक कर खुले बरामदे में रखना चाहिए।

(२) उसके सारे नंगे शरीर में जितनी ज्यादा देर तक हो सके साफ हवा और रोशनी (धूप नहीं) लगे।

ताक़त होने पर धूप-नहान शुरू करना चाहिए।

हवा, रोशनी और धूप में ही यक्ष्मा रोग को भगाने की सर्वा शक्ति है।

(३) रोगी को काफी आराम देना चाहिए।

(४) कमजोर रोगी को उपवास नहीं कराना चाहिए। शक्ति के

अनुसार एक वार थोड़ा गाय या वकरी का कच्चा दूध, फिर दूसरी वार कुछ फल और दूध, तीसरी वार किसी फल का थोड़ा सा रस या सब्जी का सूप और चौथी वार एक छोटी रोटी या भात और थोड़ी सी पकी भाजी हर रोज देना चाहिए। यह खयाल रहे कि मात्रा इतनी ही हो जो पच जाय। अच्छा हो अगर रोगी तीन वार भोजन करे—एक वार, सिर्फ दूध; दूसरी वार, रोटी और एक भाजी, तीसरी वार, फल और दूध, लेकिन अगर कमजोरी ज्यादा है तो थोड़ा थोड़ा भोजन कई वार देना चाहिए। रोग शुरू होते ही उपवास कराया जा सकता है। यक्ष्मा में रोगी का वजन जल्दी जल्दी घटता है, इसलिए वाद में या कमजोरी में उपवास वर्जित है।

(५) वन सके तो हर रोज एक वार, नहीं तो एक दिन वीच देकर, एनीमा देना चाहिए।

(६) वीच वीच में जव कभी छोटे चमचे के आधे जितने शहद में प्याज या लहसन के चार छः वूँद डालकर रोगी को देना चाहिए।

(७) भोजन, धूप-नहान और पेड़ू-नहान इत्यादि का एक अच्छा कार्य-क्रम हर रोज के लिए बना लेना चाहिए, जैसे (जाड़ों में)—

७ वजे सुवह—मेहन-नहान।

८ वजे सुवह—एक पाव दूध और एक संतरे का नाश्ता।

८ वजे से १०-३० वजे तक—हवा और रोशनी में लेटना।

जुकाम या कोई न कोई दूसरा रोग बना रहता है। इसलिए इस बीमारी को भी उपवास, फलाहार और भोजन-सुधार और दूसरे प्राकृतिक ढंगों के प्रयोग से दूर करना चाहिए। और उपायों के साथ-साथ कुछ दिनों तक हर रोज एनीमा का प्रयोग जरूरी है। कभी-कभी गर्दन और गले के भाप-नहान से जल्द लाभ होता है। घंटी तभी कटवाई जाय जब कि उसमें पीप पड़ गई हो, लेकिन ऐसी हालत में भी नश्तर के बाद भोजन-सुधार इत्यादि से शरीर को साफ-सुथरा कर लेना चाहिए। इस बीमारी के दूर होने में कुछ समय लगता है, घबराना न चाहिए।

बवासीर

भोजन-प्रणाली (वह नाली जो एक सीध में लेकिन टेढ़ी-मेढ़ी होती हुई मुँह से लेकर पाखाने के रास्ते तक है) के शरीर के हिस्से में खून के दौरान (रक्त-संचार) में बाधा (रुकावट) पड़ने से यह बीमारी होती है। पुराने कब्ज और पाखाने के समय जोर लगाने से यह तकलीफ अक्सर हो जाती है। इसकी दो किस्में हैं—*खूनी और बादी। बवासीर चाहे खूनी हो या बादी* इलाज एक ही है। इसके इलाज में इन बातों पर ध्यान देना चाहिए :—

(१) तकलीफ शुरू होते ही उपवास और तब फलाहार पर रहना चाहिए।

(२) पुराने रोग में फलाहार की अवधि के बाद बहुत दिनों

तक एक वक्त रोटी-साग और दूसरे वक्त फलाहार करना चाहिए। दाल खाना तब तक छोड़ देना चाहिए, जब तक कि बीमारी बिल्कुल अच्छी न हो जाय। कोई भी कब्ज करने वाली चीज न खानी चाहिए।

(३) शुरू में लगातार एनीमा-प्रयोग और जभी कब्ज हो एनीमा का सहारा लेना चाहिए।

(४) पेड़ू-नहान से बहुत लाभ होता है। सुबह-शाम पेड़ू-नहान लेना चाहिए।

(५) तकलीफ की जगह पर मिट्टी की पट्टी या भाप-नहान या कभी-कभी दोनों (पट्टी के बाद भाप-नहान) पहले हर रोज और आगे चलकर हर तीसरे-चौथे रोज लेना चाहिए।

(६) सोने के समय अगर पाखाने के रास्ते से आध पाव बहुत ठंढा पानी (गर्मी मे थोड़ी सी बर्फ मिलाई जा सकती है), जिसमें आधे नींबू का रस निचोड़ दिया गया है, आँत मे चढ़ा दिया जाय और वहीं रोक लिया जाय तो बहुत फायदा होगा। इसके लिए 'ग्लिसरीन सिरिंज' (glycerine syringe) काम में लाना चाहिए। वह न हो तो एनीमा के यंत्र मे भी काम लिया जा सकता है।

यह बीमारी जरा देर से जाती है, लेकिन जाती जरूर है। नश्तर से सच्चा लाभ नहीं होता। नश्तर लेने के बाद फिर हो जाती है। लेखक ने एक ऐसे रोगी को अच्छा किया है, जिसने ५ बार नश्तर लिया, फि[illegible] भी अ[illegible] न [illegible] स[illegible] था।

१०-३० बजे सुबह—पूरा नहान या गीले कपड़े से बदन को अच्छी तरह पोंछ लेना।

११ बजे सुबह—फलाहार या रोटी-भाजी खाना।

१ बजे दोपहर—पानी पीना।

२ से ३ बजे तीसरे पहर—हवा और रोशनी में लेटना। अगर सर्दी मालूम हो तो एक पतली चद्दर ऊपर से डाल सकते हैं।

३ बजे—पेडू-नहान या पेडू पर मिट्टी। अगर ताक़त हो तो ताक़त भर खुले मैदान में टहलना।

४-३० बजे—सन्तरे का रस या थोड़ा दूध के साथ आधा टमाटर या आधा सेव।

६-३० बजे—शहद और प्याज या लहसन का रस चाटना।

८-३० बजे—थोड़ा दूध या तरकारी का सूप।

कहने की ज़रूरत नहीं कि ऐसे अनेकों रोगी, जिनकी हालत बहुत खराब नहीं हुई थी, प्राकृतिक चिकित्सा से अच्छे हो गये हैं। कुछ वर्ष हुए लेखक एक कठिन रोग से बहुत दिनों तक बुरी तरह पीड़ित रहकर और सब चिकित्सा-प्रणालियों से निराश होकर प्राकृतिक चिकित्सा से धीरे धीरे अच्छा हो रहा था। उन्हीं दिनों लेखक के पड़ोस में एक लड़की यक्ष्मा से पीड़ित थी। उसका भी सभी तरह का इलाज हो चुका था, पर किसी से कुछ भी लाभ न हुआ था। अन्त में एक दिन उसकी माँ ने लेखक से आकर कहा, 'क्या प्राकृतिक चिकित्सा से यक्ष्मा भी दूर होती है ?' लेखक ने चारपाई पर लेटे ही लेटे प्राकृतिक चिकित्सा संबंधी दो-तीन

किताबें पढ़ डाली थीं और उसे विश्वास हो गया था कि इस चिकित्सा से सभी रोग अच्छे हो सकते हैं। इसलिए उसने उत्तर दिया, 'जी हाँ, प्राकृतिक चिकित्सा से आप की लड़की जरूर अच्छी हो जायगी।' लड़की की माँ थोड़ी देर के लिए अपने घर गई और फिर वापस आकर बोली, 'बताइए, क्या करना होगा?' लेखक जरा घबराया, क्योंकि उसने सोचा कि जो ख़ुद बीमार है वह दूसरों को क्या अच्छा कर सकता है। लेकिन फिर उसने सोचा कि सिद्धान्त तो समझ ही लिए हैं और प्रकृति की शक्ति भी अचूक है, इसलिए चिकित्सा-क्रम बताने में हर्ज नहीं। उसने सोच-समझकर कुछ बता दिया। लड़की चार महीने में ही काफ़ी भली-चंगी हो गई और साल भर के बाद बिल्कुल स्वस्थ हो गई।

रक्त-चाप का बढ़ना

इसे अंगरेजी में हाई-ब्लड-प्रेशर (high blood-pressure) कहते हैं। यह अमीरों की बीमारी है और ज्यादातर उन्हीं के होती है, जो चाय, कहवा, शराब, कबाब, अंडे, तम्बाकू, सिगरेट आदि बहुत मात्रा में इस्तेमाल करते हैं और सुस्ती-काहिली की जिन्दगी बिताते हैं। ख़ून ले जाने वाली नली में विकारों के इकट्ठा हो जाने से ख़ून के दौरान में रुकावट होती है। इसीलिए दिल को ज्यादा काम करना पड़ता है। इसी से ख़ून का दबाव बढ़ जाता है—सिर में चक्कर, दिल में घबराहट और कई तरह की परेशानियाँ होती हैं।

इसके लिए पहले उपवास, फिर कुछ दिनों (लगभग तीन हफ़्ते) के लिए फलाहार या शाकाहार, तब नियमित भोजन और फिर बीच-बीच में उपवास करना चाहिए। कुछ दिनों के बाद पेड़ू-नहान और मेहन-नहान (या रीढ़ की गीली पट्टी) दोनों ही साथ शुरू किये जा सकते हैं। एनीमा का समय ठीक करके शुरू से ही एनीमा कुछ दिनों तक रोज लेना चाहिए। तकलीफ़ कम होने के बाद प्राकृतिक भोजन पर ही रहना चाहिए। इसमें धूप-नहान या भाप-नहान वर्जित है। सिर का चक्कर, परेशानी, नींद न आना इत्यादि लक्षण पहले उपवास और फलाहार और फिर मेहन-नहान या रीढ़ की गीली पट्टी से जड़ से चले जाते हैं। इसमें रोगी को शान्त रहना चाहिए।

दिमाग़ की ख़राबी

सभी दिमाग़ की ख़राबियों के लिए और मृगी इत्यादि के लिए भी वही इलाज करना चाहिए जो रक्त-चाप के बढ़ने के संबंध में बताया गया है। भरसक मेहन-नहान शुरू से लेना चाहिए।

फ़ालिज, लक़वा

शुरू में तीन से पाँच दिन तक रोगी को उपवास और तब रसाहार पर रखकर दिन में दो या एक बार एनीमा का प्रयोग करना चाहिए। फिर फलाहार और बीच-बीच में एक-दो दिन के लिए र [illegible] या उप [illegible]। और सभी इलाज ऊपर दिए रक्त-चाप के

इलाज की तरह होंगे। इसमें बहुत दिनों तक जम के इलाज करना चाहिए। माँस का शोरवा, अंडा इत्यादि बिल्कुल वर्जित है।

मैं एक ऐसे सज्जन को जानता हूँ, जिन्हें लगभग ६० की उम्र में बुरी तरह फ़ालिज का शिकार होना पड़ा। तब से उन्होंने अन्न खाना छोड़ दिया। सिर्फ फलाहार से ही वे स्वस्थ हो गये। दूसरा कोई भी इलाज नहीं किया।

बात यह है कि ज्यादातर बीमारियाँ खाने-पीने की बद-परहेज़ी और इसी तरह क़ुदरत के दूसरे क़ानूनों को तोड़ने से होती हैं। जैसे ही आदमी अपने को सम्हालता है वैसे ही शरीर के अन्दर की प्राकृतिक शक्तियाँ खराबी को निकालने और शरीर की मरम्मत करने में लग जाती हैं। इस बात को अच्छी तरह समझना चाहिए—*शरीर के अन्दर ही वह ताकत है, जिससे अपने आपको वह ठीक कर ले सकता है। उसके सामने की अड़चनों को दूर कर देना चाहिए।*

वीर्य-दोष

(१) शरीर में ताक़त हो तो १ से तीन दिन का उपवास या रसाहार और दिन में दो बार एनीमा-प्रयोग।

(२) पन्द्रह दिन के लिए फलाहार और दिन में एक या दो बार एनीमा का प्रयोग।

(३) फिर पन्द्रह दिन के लिए फलों के साथ थोड़ा-थोड़ा कच्चा दूध या मठा लेना। जरूरत होने पर एनीमा प्रयोग।

(४) फिर एक समय रोटी और एक-दो भाजी और दूसरे समय फल और दूध। कुछ दिनों के बाद दोनों समय रोटी-भाजी।

(५) फल दूध के भोजन के समय से ही एक महीने के लिए दोनों समय पेड़ू-नहान और फिर एक बार पेड़ू-नहान और दूसरी बार मेहन-नहान। कुछ दिनों के बाद दोनों समय मेहन-नहान। अगर मेहन-नहान न बन सके तो सुबह में पेड़ू-नहान और तीसरे पहर रीढ़ की गीली पट्टी लेनी चाहिए।

(६) धूप-नहान और ताकत भर कसरत या टहलना।

समय छः महीने से लेकर दो-ढाई वर्ष तक लग सकता है।

इस रोग में अक्सर लोग हतोत्साह रहते हैं। कुछ लोग और पुस्तकें भी इस रोग की भयानकता का वर्णन करके रोगी को पस्त-हिम्मत बनाये रहते हैं। यह ठीक नहीं। वीर्य-दोष खराब चीज जरूर है, लेकिन हतोत्साह होने का भी कोई कारण नहीं है। ब्रह्मचर्य के पालन के लिए पेट का बिल्कुल साफ रहना बहुत जरूरी है, नहीं तो शरीर के अंदर ही उत्तेजना होती है, जिससे ब्रह्मचर्य-भंग के कई उपाय सूझते हैं। पेट साफ रखना, सत्संग, खुले स्थान में रहना और काफी कसरत करना जरूरी है।

गंजापन, चंदलापन

सिर के बालों के गिर जाने को गंजापन कहते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा से यह ऐब भी दूर हो जाता है। अमेरिका के प्रोफेसर आर्नोल्ड एहरेट के सिर के बाल बिल्कुल गिर गये थे। दो वर्ष के

सिर्फ फलाहार और बीच-बीच के उपवास से उनके बाल पहले की तरह उग गये, साथ ही शरीर पूरे तौर से स्वस्थ हो गया। नीचे लिखी बातों पर ध्यान दीजिए :—

(१) नहानों से, खासकर पेडू-नहान से, बहुत मदद मिलती है।

(२) सिर को, जब कभी फुर्सत मिले तो, उँगलियों की नोक से धीरे धीरे रगड़ना चाहिए।

(३) नीबू को काटकर उसके आधे टुकड़े से नहाने के पहले सिर को मलना चाहिए।

(४) रात में सोते समय नारियल के तेल में नीबू का थोड़ा रस मिलाकर उससे सिर की हल्की-हल्की लेकिन कुछ देर तक मालिश करनी या करानी चाहिए।

(५) भोजन-सुधार इत्यादि से सारे शरीर की तनदुरुस्ती को बढ़ाइए, सिर के बाल उग आयेंगे।

(६) सर्वांगासन के अभ्यास से बहुत फायदा होता है। यह और कसरतों के साथ आगे बताया जायगा।

इसी तरह बालों का कुसमय ही सफेद होना भी रोका जा सकता है।

मुटापा, दुबलापन

दोनों असल में एक ही रोग के दो रूप हैं। उपवास, १५ दिन का फलाहार, बीच-बीच में उपवास, एक महीना सिर्फ दूध पर

ही रहना, (दिन में पाँच-छः बार), पेड़ू-नहान और मेहन-नहान, कसरत, इत्यादि उपचारों से काम लीजिये। दुबले होने के लिए दूध के बदले मठे का व्यवहार करना चाहिए। लेखक ने कई मोटे आदमियों को दुबला और कम से कम तीन दुबले आदमियों को मामूली तौर पर मोटा होने में सहायता दी है।

दिल की धड़कन

यह बीमारी ज्यादातर दिल की खराबी या कमजोरी से नहीं बल्कि पेट की खराबी से होती है। पेट की वायु का असर दिल पर पड़ता है। अगर दिल की कमजोरी भी हो तो भी इलाज वही है। पहले फलाहार से शुरू कीजिए। उपवास बहुत लाभदायक है, लेकिन कमजोर दिलवालों को उपवास से घबराहट होती है। इसलिए कुछ दिन के फलाहार, पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी और एनीमा प्रयोग के बाद एक-दो दिन रसाहार पर रहना ठीक होता है। इस तरह पन्द्रह-बीस दिन फलों पर रहकर फल और मठा या दूध पर रहना चाहिए। फिर तनदुरुस्ती के दिनों के भोजन और नहान। दिल की बीमारियों में धूप या भाप-नहान वर्जित हैं।

स्नायविक दुर्बलता

इसको अँगरेजी में न्यूरसथीनिया (neurasthenia) या नर्वस ब्रेक डाउन (nervous breakdown) कहते हैं। इसमें सारे शरीर में बहुत सुस्ती, दिमाग में सुस्ती, चिड़चिड़ापन, नींद का न आना या कम आना इत्यादि लक्षण प्रकट होते हैं। पेट की

खराबी, काफी आराम न करना, हल-चल की जिंदगी, ब्रह्मचर्य के अभाव इत्यादि से ऐसी दशा होती है। इसका इलाज वैसा ही करना चाहिए जैसा कि रक्त-चाप के बढ़ने पर लेकिन इसमें काफी दिनों तक शारीरिक और मानसिक आराम बहुत जरूरी है। रोगी के संबंधियों को चाहिए कि वे उसे आराम दें और किसी भी तरह चिढ़ने-कुढ़ने का मौका न दें।

कोप-वृद्धि

कोप-वृद्धि या आंत-नजूल एक ऐसा रोग है, जो कमजोरी के कारण होता है और शरीर को काहिल बनाये रहता है। यह रोग भी, अगर कई साल का पुराना न हुआ हो तो, प्राकृतिक उपचारों से जाता है। मैंने देखा है कि अक्सर उपवास और फलाहार के दिनों में ही मेरे मरीजों की कोप-वृद्धि बहुत कुछ कम हो गई है। इसलिए इस रोग की चिकित्सा पहले तीन दिनों के उपवास, १० दिन के फलाहार और फिर फल और दूध के भोजन और साथ ही साथ एनीमा-प्रयोग से शुरू करना चाहिए। फल और दूध खाने के दिनों से पेडू-नहान इत्यादि और हर हफ्ते भाप-नहान भी शुरू करना चाहिए।

बच्चों के रोग

बच्चों के रोगों के प्राय वही इलाज हैं जो बड़ों के लिए हैं। छोटे बच्चों के दूध पिलाने का समय बँधा होना चाहिए। डेढ़ साल से पहले उन्हें अन्न न देना चाहिए।

इस विषय पर 'बच्चों का पालन-पोषण' नामक खंड, जो आगे है, उसमें सभी बातें विस्तार-पूर्वक बताई गई हैं।

स्त्री-रोग

इस संबंध की बातें एक अलग खंड में आगे बताई गई हैं।

× × × ×

ऐसे बहुत से छोटे-मोटे रोग बच रहे हैं, जिनका इलाज यहाँ नहीं बताया गया है, लेकिन अगर पाठक ने पहले के पृष्ठों को अच्छी तरह पढ़ा है तो वे जरूर समझ सकेंगे कि किस रोग का इलाज किस तरह होना चाहिए। रोगी की शारीरिक अवस्था को अच्छी तरह समझ कर इस किताब में दिये उपायों को नियम के साथ लगाना चाहिए।

—

पुराने रोगों का इलाज

इसके पहले जो बीमारियों के इलाज बताये गये हैं उनमें जीर्ण (पुराने) रोगों के इलाज भी हैं। लेकिन ऐसे रोगों पर खास रोशनी डालने के लिए यह अध्याय लिखा जा रहा है।

पुराना रोग किसे कहते हैं—

उम्मीद है कि पाठक अब तक यह समझने लगे हैं कि पुराना या जीर्ण रोग (chronic disease) किसे कहते हैं, लेकिन उसके लक्षण फिर भी यहाँ दुहराये जाते हैं। जिस रोग में बहुत तेज तकलीफ नहीं रहती, जो बहुत दिनों तक, अक्सर मरने तक, चलता है और जिसके कारण आदमी न तो जल्दी मरता ही है और न जीते रहने का ही आनन्द पाता है, उसे पुराना या जीर्ण रोग कहते हैं। जब शरीर में काफी मात्रा में जीवन-शक्ति रहती है तब तो शरीर अपने अन्दर के विकारों को नये या तीव्र रोग (acute disease) के रूप में बाहर निकाल देता है। नये रोग कुछ दिन रह कर चले जाते हैं और, अगर उनकी उचित चिकित्सा हुई तो, शरीर को पहले से ज्यादा अच्छी हालत में छोड़ जाते हैं। लेकिन अगर नये रोग दवा और भोजन या और गलत तरीकों से बार-बार शरीर के अन्दर ही दबा दिए जाते हैं, और साथ ही जब शरीर में काफी जीवन-शक्ति नहीं रहती, तो

पुराने रोग खड़े हो जाते हैं। कोई भी रोग पुराना हो सकता है, पर मशहूर पुराने रोगों में दमा, बवासीर, पुराना गठिया, रक्त-चाप का बढ़ना, बहुमूत्र, दिल और गुर्दे की बीमारी, एक्जिमा, फेफड़े के रोग इत्यादि की गिनती है। इनमें से बहुतों के इलाज का तरीका पिछले अध्याय में बताया गया है। जिन रोगों के नाम पिछले अध्याय में नहीं हैं उनका इलाज भी और रोगों की ही तरह किया जाता है।

क्या पुराने रोग भी अच्छे हो सकते हैं—

जरूर। जब तक शरीर के अन्दर इतनी जीवन शक्ति है जितनी कि उचित ढंगों से जगाई जाने पर रोग के पुरानेपन को नयापन में बदल दे तब तक कोई भी रोग दूर किया जा सकता है। विद्वान डाक्टर अक्सर इन बीमारियों को असाध्य (ला-इलाज) कहकर छोड़ देते हैं, पर प्राकृतिक-चिकित्सा वाले इन को निर्मूल कर शरीर को फिर से नया बना देते हैं। शर्त यही है कि शरीर में जीवन-शक्ति बच रही हो, जिसे जगाया और पुष्ट किया जा सके। बहुतों के अन्दर, जिन्हे असाध्य रोग के रोगी कहकर छोड़ दिया जाता है, काफी जीवन-शक्ति बची रहती है। अगर जीवन-शक्ति का बहुत ह्रास हो चुका है और शरीर का कोई जरूरी कल-पुर्जा बिल्कुल ही खराब हो गया है तो रोग दूर नहीं हो सकता। इसी से कहा जाता है कि उचित चिकित्सा से सभी रोग अच्छे हो सकते हैं पर सभी रोगी अच्छे नहीं हो सकते। जिनकी जीवन-शक्ति करीब करीब खत्म हो चुकी है वे

'अच्छे नहीं हो सकते। लेकिन ऐसे रोगियों को भी प्राकृतिक चिकित्सा से काफी आराम मिलता है और उनके अन्तिम दिन कुछ सुख से बीतते हैं, लेकिन उनके मरने के लिए सारा दोष प्राकृतिक चिकित्सक के मत्थे मढ़ा जाता है ! खैर, इस ऊपर वाली बात को—जीवन-शक्ति को जगाकर रोग के दूर करने को—अच्छी तरह समझना चाहिए। जीवन-शक्ति ही वह शक्ति है, जो मनुष्य को जीवित और तनदुरुस्त रखती है, जो शरीर की भलाई के लिए, उसके अन्दर के विकारों को निकालने की गरज से, नये रोग पैदा करती है और फिर से शरीर को भला-चंगा बना लेती है और जिसके कमजोर पड़ जाने से पुराने रोग शरीर में अपना घर बना लेते हैं। अगर इस जीवन-शक्ति को फिर से मजबूत किया जाय तो वह इन पुराने रोगों को भी बाहर निकाल देती है।

पुराने रोगों का इलाज—

पुराने रोगों के इलाज में जीवन-शक्ति को बढ़ाने पर ध्यान देना चाहिए। इसके लिए इतनी बातें जरूरी हैं :—

(१) *उपवास, फलाहार, सुधरा भोजन, बीच बीच का उपवास और पेट की सफाई।* इससे शरीर के अन्दर के विकार निकलेंगे और शरीर इस लायक होगा कि उसमें जीवन-शक्ति का पूरा संचार हो पावे। जरूरत से ज्यादा किये गये भोजन को पचाने में जीवन-शक्ति का ह्रास होता रहता है। भोजन-सुधार और बीच-बीच के उपवास से यह पचाने का काम हल्का हो जाता

है, और बची हुई जीवन-शक्ति रोग के बाहर निकालने में लग जाती है।

अगर रोगी बहुत ज्यादा कमजोर है तो उसे पहले उपवास न करा के फलाहार पर रखते हैं और उसे धीरे धीरे उपवास के लिए तैयार करते हैं।

(२) *कसरत या टहलना और सांस की क्रियाएं।* इनसे जीवन-शक्ति बढ़ेगी और भोजन के पचने में और पेट के साफ रहने में मदद मिलेगी। इससे खून अच्छा हो जायगा और रोग को शरीर के बाहर निकाल सकेगा। लेकिन कसरत तभी करनी चाहिए, जब कि शरीर मे ताकत हो। कसरत की मात्रा धीरे धीरे बढ़ानी चाहिए।

(३) *धूप-नहान,* जिससे भी जीवन-शक्ति बढ़ेगी और साथ ही शरीर के विकार दूर होंगे। इसे भी बहुत कमजोरी की हालत में नहीं लेना चाहिए।

(४) *मिट्टी और पानी का इस्तेमाल।* इससे भी वही बात होगी।

(५) *आराम।* यह बहुत जरूरी है। आराम और बे-फ़िक्र होकर सोने के समय में ही जीवन-शक्ति अपने भंडार से उतर कर दिमाग़ में इकट्ठा होती और शरीर में फैलती है।

(६) *विचार और भावों का अच्छा होना।* रोगी को खुश रहना चाहिए और उसे इस बात की पूरी आशा रहनी चाहिए कि वह जरूर ही अच्छा हो जायगा। पुराने रोग के रोगी

अक्सर चिड़चिड़े हो जाते हैं, गुस्सा करते हैं और ऐसी ही ऐसी बातों से अपनी स्नायविक अवस्था को और भी खराब करते हैं। उन्हें अपने ऊपर क़ाबू रखना सीखना चाहिए और उनके रिश्तेदार (सम्बन्धी) और दोस्तों को भी चाहिए कि जहाँ तक बन सके उन्हें खुश रखें और उम्मीद बँधावें कि वे अच्छे हो जायँगे।

ऊपर की सभी बातों को बताते हुए लेखक का पूर्ण विश्वास है कि सैकड़े नब्बे पुराने रोग में रोगी अगर (१) सिर्फ़ फलाहार करे, (२) अपनी शक्तिभर कसरत और (३) जरूरत भर आराम करे तो वह अपने रोग को भगा सकता है। लेखक ने बहुत से ऐसे आदमी देखे हैं, और खुद भी कुछ की चिकित्सा की है, जो सिर्फ़ फलाहार पर रह कर (या साग-भाजी खाकर) अच्छे हो गये हैं। इसका कारण यही है, जैसा कि बार बार दुहराया गया है, कि शरीर के अन्दर ही वह शक्ति है, जिससे वह अपने आप को अच्छा कर ले सकता है। शुद्ध भोजन से शुद्ध खून बनेगा और शुद्ध खून से स्नायु अच्छा होगा और शरीर के सब हिस्सों को जरूरी खूराक मिलेगी— बस, इतने से ही तनदुरुस्ती का मसला हल हो जाता है। तो क्या पानी का इस्तेमाल और दूसरी दूसरी बातें, जो इस किताब में बताई गई हैं, जरूरी नहीं हैं ? हैं, उनसे मदद मिलती है और साल भर का काम नौ महीने में ही पूरा हो सकता है। कभी कभी पानी का इस्तेमाल बिल्कुल जरूरी भी होता है। लेकिन ऐसा नहीं समझना चाहिए कि अगर टब नहीं है तो इलाज हो ही नहीं सकता।

पुराने रोगों को दूर करने में कुछ समय लगता है—

कुछ लोग ऐसे होते हैं कि अगर प्राकृतिक चिकित्सा के शुरू होने के पहले ही दिन उन्हें फ़ायदा न मालूम हो तो वह हताश हो जाते हैं और कहते हैं कि इलाज करने का यह तरीक़ा भी ठीक नहीं है। इन लोगों में बहुत से तो ऐसे होते हैं जो पहले और सब तरीक़ों को आज़माने के बाद, सब से हैरान होकर, प्राकृतिक चिकित्सा की तरफ़ झुकते हैं। अगर वे शुरू से ही प्राकृतिक चिकित्सा करने लग जाते तो उन्हें यह हैरानी न उठानी पड़ती। यह समझने की बात है कि रोगों का दूर करना कोई 'छुः मनतर' की बात नहीं है, और यह भी कि जितने साल का पुराना रोग है कम से कम उतने महीने तो देना चाहिए। बहुत से पुराने रोग इससे कम समय में ही अच्छे हो जाते हैं, लेकिन कुछ हठी रोग और ऐसे रोग, जिनमें पहले ज़हरीली दवाओं का इस्तेमाल किया गया है, दो-तीन साल तक का अर्सा (अवधि) ले सकते हैं। समय चाहे जितना भी लग जाय, लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि अगर शरीर में जीवन-शक्ति है—बहुतों के यह शक्ति रहती है—और अगर चिकित्सा भी उचित है तो रोग ज़रूर जाता रहेगा। समय इसलिए लगता है कि बहुत से पुराने रोगों में शरीर के अंग अंग और कोष कोष—ख़ून, रग, रेशे सभी—विकार-युक्त हो जाते हैं, और इन सब को साफ़ करने में समय लगेगा ही। इसके अलावा अगर ज़हरीली दवाओं का इस्तेमाल हुआ है तो रोग के साथ-साथ दवा के ज़हर को निकालने का काम भी

प्राकृतिक चिकित्सा के मत्थे पड़ जाता है। लेकिन जैसे ही शरीर साफ़ होकर अपनी असली हालत में आ जाता है वैसे ही रोग निर्मूल हो जाता है और शरीर एक बार फिर से नया हो जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा से पुराने रोग को अच्छा करना मानो अपनी काया-पलट करनी है।

चिकित्सा के लिए एक कार्य-क्रम बना लेना चाहिए—

पुराने रोगों में इस पुस्तक में बताए गए सभी उपायों को काम में लाना पड़ता है, पर सभी उपायों को एक साथ नहीं लगाते। जल्दीबाज़ी करने से कोई लाभ नहीं होता बल्कि नई कठिनाइयां खड़ी हो जाती हैं। इन कठिनाइयों का ज़िक्र आगे किया जायगा। यहाँ इतना ही कहा जाता है कि किसी भी पुराने रोग के इलाज में अच्छी तरह समझ-बूझ कर हर रोज़ के लिए एक कार्य-क्रम बना लेना चाहिए।

कुछ प्राकृतिक चिकित्सक शुरू से ही मामूली भोजन-सुधार के साथ साथ पेड़ू-नहान या मेहन-नहान या दोनों शुरू करा देते हैं। इससे लाभ ज़रूर होता है, लेकिन इससे भी अच्छा तरीका है कि (१) अगर रोगी कमज़ोर नहीं है तो शुरू में ही उसे तीन दिन का उपवास करा दिया जाय या तीन दिन उसे रसाहार पर रखा जाय। इन दिनों उसे सुबह और शाम दोनों समय और चौथे दिन भी सुबह को एनीमा देना चाहिए और इसके बाद चौथे दिन से लेकर दस-पन्द्रह दिनों तक उसे फलाहार या पकी

भाजी सादी पर रखना चाहिए। अगर ऐसा न हो सके या रोग बहुत पुराना नहीं है तो उपवास के बाद तो एक समय के भोजन में आधा हिस्सा ताजे फल या कच्चे सलाद का रहे और आधे हिस्से में रोटी और एक पकी भाजी। दूसरे समय अगर रोगी फल ही खाय तो अच्छी बात है। अगर रोगी ने जहरीली दवा नहीं खाई है तो तीन दिन के उपवास या रसाहार के बाद जब रोगी फलाहार शुरू करे तो उसे पहले कुछ दिनों तक सुबह में पेडू पर मिट्टी की पट्टी और पेडू-नहान, तीसरे पहर पेडू पर मिट्टी की पट्टी और उसके बाद एनीमा और शाम को फिर पेडू-नहान लेना चाहिए। मिट्टी की पट्टी लगातार पन्द्रह-बीस दिनों तक ली जा सकती है। फिर सात-आठ दिनों का अन्तर देकर उसे जारी कर सकते हैं। हो सकता है कि इन दिनों मुँह का स्वाद खराब हो जाय। जब शरीर अपने अन्दर के विकारों को निकालने पर तुल जाता है तो और लक्षणों के साथ मुँह का स्वाद भी खराब हो जाता है। जब तक मुँह का स्वाद खराब रहे तब तक दोनों समय पेडू-नहान ही देना चाहिए। जब मुँह का स्वाद ठीक हो जाय तो, या अगर मुँह का स्वाद खराब नहीं हुआ हो तो, पन्द्रह बीस दिनों तक दोनों समय पेडू-नहान लेकर, एक समय पेडू-नहान और दूसरे समय मेहन-नहान या रीढ़ की गीली पट्टी देने लग जाना चाहिए। बहुत से पुराने रोग तीन-चार महीने में ही चले जाते हैं लेकिन बहुत से ज्यादा समय भी लेते हैं। ऐसे रोगों के इलाज में धीरज रखना चाहिए। नहानों को एक-डेढ़ महीने के बाद आठ-दस दिनों के

लिए छोड़ देना चाहिए, लेकिन इन दिनों भी भोजन और कसरत के नियमों का पालन करना चाहिए।

फालिज, लकवा, यक्ष्मा, दिल के रोग, रक्त-चाप का बढ़ना, बहुत कमजोरी और दिमागी रोगों को छोड़कर और सब रोगों मे इलाज के शुरू से ही कुछ देर नंगे बदन धूप में बैठने या लेटने के बाद या टहलने के बाद सारे बदन को नहला देना चाहिए। अगर धूप तेज हैं तो सिर को ढक लेना चाहिए। मान लीजिए कि रोगी अगर ६ बजे सुबह को पेडू-नहान लेता है तो आठ से नौ बजे तक धूप मे रहकर वह तुरन्त ही नहा ले। बताया गया है कि धूप-नहान के बाद सिर से नहाकर पेडू-नहान भी लेना चाहिए। अगर रोगी सुबह-शाम दोनो समय पेडू-नहान या मेहन-नहान ले रहा है तो धूप-नहान के बाद फिर तीसरी बार पेडू-नहान लेने की कोई खास जरूरत नहीं है। लेकिन अगर धूप-नहान के बाद पेडू-नहान लेना रोगी पसंद करता है तो पेडू-नहान बहुत सबेरे न लेकर वह धूप-नहान के बाद नौ, साढ़े नौ, बजे ले सकता है। शाम का नहान पहले की तरह जारी रहेगा।

नहानों के बारे में यह खयाल रखना चाहिए कि सुबह का नहान, जितना सवेरे हो सके, ले लिया जाय। कुछ हालतो में जरा देर से ही नहान लेने मे सुविधा होती है। इन हालतों मे नहान लेने के पहले भरसक कुछ न खाया जाय और अगर कुछ खाया भी जाय तो बहुत हल्की चीज। फल का रस पीकर ही अगर रोगी रह जाय और फिर साढ़े दस ग्यारह बजे के लगभग (नहान

के एक-डेढ़ घंटे बाद) वह भोजन करे तो भी अच्छा है। नहाना के जो नियम पहले बताये गये हैं उनका पालन अच्छी तरह करना चाहिए और यह भी देखना चाहिए कि नहान इत्यादि का एक ही निश्चित समय हर रोज के लिए रहे।

इलाज के तरीकों को समय समय पर जरूरत देखकर बदलते जाना चाहिए। मान लीजिए कि इलाज के दिनों में ही कब्ज हो गया। ऐसी हालत में दोनों समय के नहानों में एक नहान को बन्द कर या इनके अलावा एनीमा का प्रयोग शुरू करना चाहिए। जब कब्ज चला जाय तो एनीमा बन्द करके फिर से नहान को जारी करना चाहिए। अगर बीच में बुखार या और कोई तेज रोग हो जाय तो भोजन बन्द कर उपवास करना या रसाहार पर रहना चाहिए। अगर चमड़े पर फुन्सियाँ निकल आयें या पित्ती उछल जाय तो एक या दोनों नहान के बदले सारे शरीर की गीली पट्टी से काम लेना चाहिए। अगर सिर में परेशानी सी रहने लगे तो दोनों समय मेहन नहान या रीढ़ की गीली पट्टी का प्रयोग करना चाहिए। जब कभी भोजन में भी हेर-फेर करने की जरूरत पड़ती है। अगर इलाज के बीच पतले दस्त आने लगें तो रोगी को सिर्फ रसाहार पर रहना चाहिए। फिर एक-दो दिन मठा पिलाना चाहिए। इसी तरह समझदार और चतुर चिकित्सक अवसर देखकर इलाज के भिन्न भिन्न ढंगों से फायदा उठाते हैं।

पिछले अध्याय में नमूने के बतौर कुछ कार्य-क्रम बताये गये हैं। हर बीमारी के इलाज के लिए एक उचित कार्य-क्रम बनाना चाहिए।

भोजन का क्रम—

पुराने रोगों में भोजन पर बहुत ध्यान देना पड़ता है। सच्ची बात तो यह है कि जब तक रोग दूर न हो फलाहार करके ही रहना चाहिए। जहाँ फल न मिले या फल खाते खाते जी ऊब जाय तो कच्ची और सादी पकी भाजी से काम चलाना चाहिए। दूध का इस्तेमाल शुरू में कुछ दिनों तक न करना चाहिए। जब दूध शुरू किया जाय तो कच्चा ही दूध लिया जाय। अगर दूध अच्छा न मिले तो दूध न लिया जाय। अगर पतले दस्त आते हों या यकृत का विकार हो तो दूध के बदले बिना मक्खन का पतला मठा लेना चाहिए। दूध या तो अकेला या फलों के साथ पीना चाहिए—रोटी या चावल के साथ नहीं। आगे चल कर रोटी खाने के बाद पाव भर मठा पी सकते हैं।

जिन्हें दिन में कोई काम-काज नहीं करना हो उनके लिए भोजन का क्रम इस तरह होना चाहिए:—

सुबह ७-३० और ८-३० बजे के बीच—एक तरह का फल। तीन चार हफ़्ते के बाद, जब रोग सम्हाल से आ जाय तब, इसके साथ एक पाव दूध या मठा।

लगभग एक बजे दूसरे पहर—कच्ची भाजी का सलाद (या फल) और एक मोटी रोटी। सलाद या फल की मात्रा इतनी हो कि उसके बाद एक रोटी के खा लेने से पेट भर जाय। इतना कभी न खाना चाहिए कि पेट कसम-कस हो जाय। मोटी रोटी पतली के बनिस्बत अच्छी है। मोटी रोटी को चबा चबाकर खाने से

कब्ज यों ही जाता रहता है। कुछ हफ्तों के बाद रोटी के साथ बहुत थोड़ा सा मक्खन या अच्छा घी लिया जा सकता है।

लगभग सात बजे शाम—एक या दो पकी शाक-भाजी या हरी भाजी (कन्द-भाजी नहीं) और सात आठ दाने मुनक्के या दो-तीन अंजीर या पिन-खजूर। भाजी बनाने में बहुत थोड़ा घी और शुरू शुरू में सिर्फ जीरा का इस्तेमाल करना चाहिए। जब रोग बहुत कुछ दूर हो जाय तो हल्दी धनिया का इस्तेमाल कर सकते हैं।

इन्हीं तीन समय के भोजनों के पहले और बीच बीच में और और उपायों का प्रयोग होशियारी से करना चाहिए।

अगर रोगी को स्कूल-कालेज या दफ्तर जाना होता है तो सुबह में सिर्फ भिगोये किशमिश का पानी, ९ बजे सलाद और रोटी-भाजी और रात में सिर्फ फल या भाजी खाना चाहिए। याद रहे कि जब आदमी कोई दिमागी काम करने लगता है तो सारी जीवन शक्ति खिंचकर दिमाग में चली जाती है और भोजन पचाने के लिए बहुत कम रह जाती है। इसलिए अगर अन्न जैसे कठिन पदार्थ के खाने के तुरन्त बाद दिमागी काम शुरू किया जायगा तो खाया हुआ पदार्थ ठीक तरह नहीं पचेगा। इन दिनो जो अपच और कब्ज की शिकायत इस तरह फैली है उसका एक कारण यह भी है कि भर पेट खाने के बाद लोग दिमागी काम करने लगते हैं। यह अच्छा है कि अन्न जैसा भारी पदार्थ दिन में ही खाया जाय, लेकिन अगर दिमागी काम करना है तो

अन्न खाने के कम से कम एक घंटे बाद दिमागी काम शुरू किया जाय।

ऊपर जो खाने का क्रम बताया गया है वह नमूने के लिए है।

इलाज में कमज़ोरी—

शुरू से ही तगड़ बनने की फ़िक्र न होनी चाहिए। पुराने रोगों में यह जरूरी है कि शरीर के हर हिस्से से विकार निकाला जाय और बाहरी और अन्दरूनी सफाई की जाय। विकार निकलने के समय दुबला होना स्वाभाविक और जरूरी है। उन दिनों सिर्फ इतना ही चाहिए कि शरीर के साधारण तौर पर चलने के लिए कुछ भोजन उसे मिलता जाय। जब रोग दूर हो जायगा तो शरीर किसी भी अच्छे भोजन पर रहकर तगड़ा और मोटा हो जायगा। रोग को दूर करना रोगी और उसके संबंधियों की पहिली चिन्ता होनी चाहिए। इसलिए जरूरी है कि भोजन बहुत हल्का हो। इससे पेट के पचाने का काम हल्का रहेगा और पचाने से बची हुई जीवन-शक्ति विकारों को निकालने और रोगों को दूर करने में लग जायगी। ऊपर जो रोटी-भाजी का एक साथ खाना बताया गया है वह दूसरे दर्जे का पथ्य है। अच्छा हो अगर एक वक्त सिर्फ रोटी या सिर्फ भाजी खाई जाय। अगर ऐसा बराबर न बन सके तो कम से कम चिकित्सा के शुरू में जरूर करना चाहिए।

अक्सर रोगी बहुत घबराते हैं और बिगड़ी आदत के कारण

तरह-तरह की चीजें माँगते हैं। तरह-तरह की चीज, और अधिक मात्रा में, खाने से बीमारी हुई थी पर वे बेचारे इस अनियमित भोजन और रोग के बीच कोई सम्बन्ध नहीं समझते। उन्हें समझाना होगा।

इसे न भूलिए कि भोजन के साथ पानी न पीना चाहिए। दो-ढाई घंटों का अन्तर जरूरी है। फिर यह भी कि नींबू बहुत अच्छा फल है और उसके रस का प्रयोग प्रायः सभी हालत में किया जा सकता है। उसे पानी में मिलाकर बार बार पीने से खून क्षारमय और साफ होता है, ठंढे पानी के साथ पीने से पतले दस्तों में फायदा होता है और गर्म पानी के साथ पीने से क़ब्ज़ दूर होता है। नींबू का रस दाल में छोड़कर और फिर उस दाल को रोटी या चावल के साथ न खाना चाहिए। रोटी या चावल में श्वेतसार है, जो लार से पचता है। नींबू का रस लार के इस गुण को नष्ट कर देता है। लोग नींबू का इस्तेमाल ज्यादातर ऐसा ही करते हैं, पर यह ग़लत तरीका है। हाँ, दूध या मठा पीने के तुरन्त पहले या बाद थोड़े से पानी के साथ नींबू का रस पी लेना या आधा या एक नींबू या सन्तरा चूस लेना बहुत हितकर है।

दबे रोगों का उभाड़—

प्राकृतिक-चिकित्सा में अक्सर दबे और छिपे रोगों का उभाड़ होता है, जिसका मतलब यह है कि अगर पुरानी खाँसी का इलाज हो रहा है तो कभी कभी बुखार भी हो आता है और

कुछ दिनों तक चलता है या अगर पुराने अपच का इलाज होता है तो फोड़े-फुन्सियाँ निकल पड़ती हैं। नहीं जानने वाले इन उभाड़ों से डरते हैं, लेकिन जानने वाले रोगी को बधाई देते हैं, क्योंकि इन उभाड़ों के कारण खून के अन्दर गहरा छिपा हुआ विकार निकल जाता है। इन्हीं दबे हुए विकारों के कारण तो पुराने रोग हो जाते हैं और इन्हीं विकारों के दूर होने पर पुराने रोगों का अच्छा होना निर्भर है।

पूछा जा सकता है कि उभाड़ क्यों होता है। जवाब यह है कि प्राकृतिक जीवन के कारण खून साफ होने लगता है और धीरे धीरे जीवन-शक्ति बढ़ने लगती है। बढ़ी हुई जीवन-शक्ति छिपे विकारों को बाहर ला लाकर दूर करती है और अन्त में शरीर को बिल्कुल साफ-सुथरा और निरोग बना देती है।

फिर पूछा जा सकता है कि क्या उभाड़ों में खतरा भी है। खतरा तभी है जब कि रोगी बहुत ज्यादा कमजोर है और इलाज करने वाले ने पानी इत्यादि के बहुत और बेढंगे इस्तेमाल से छिपे रोगों को इस तरह उभाड़ दिया कि रोगी के लिए उसका सहना और चिकित्सक के लिए उसका सम्हालना मुश्किल है। सिर्फ एक इस हालत को छोड़कर और किसी हालत में जरा भी खतरा नहीं है। अगर विकार अन्दर दबे हैं तो उभाड़ होना ही चाहिए और ज्यों ज्यों उभाड़ होता जाय त्यों त्यों समझना चाहिए कि रोगी तन्दुरुस्ती की तरफ बढ़ता जा रहा है।

. क्या नये रोगों में उभाड़ नहीं होता? नया रोग तो खुद ही

प्रकृति की तरफ से एक उभाड़ है। उसमें और उभाड़ क्या होगा। हाँ, अगर पहिले से खून में विकार छिपे और दबे हैं और अगर इसी हालत में कोई नया लक्षण प्रकट हो जाय, जैसा कि बच्चों और लड़कों के अक्सर होता है, और इस लक्षण के प्राकृतिक चिकित्सा से दूर होने के बाद भी कुछ और दिनों तक अगर प्राकृतिक चिकित्सा इस मतलब से जारी रखी जाय कि शरीर और भी साफ-सुथरा हो जायगा तो पुराने दबे विकार उभड़ पड़ते हैं। एक बार लेखक अपने एक छोटे बच्चे का इलाज नई खाँसी को दूर करने के लिए कर रहा था। खाँसी अच्छी हुई, पर पतले दस्त आने लगे। पतले दस्तों के लिए इलाज किया गया। जब दस्त रुके तो बुखार हो आया। जब बुखार अच्छा हो गया तो बच्चा भला-चंगा और कुछ ही दिनों में तगड़ा हो गया। लोग ऐसी हालत में घबरायेंगे और कहेंगे कि यह अजीब इलाज है, पर जाननेवाले खुश होंगे और कहेंगे कि शरीर के अन्दर छिपे हुए विकारों का निकलना ही अच्छा है।

लेखक को उभाड़ के और भी बहुत से दिलचस्प अनुभव हैं। एक दमा के रोगी की चिकित्सा करते समय उसे टाइफॉयड बुखार हो गया, जो हफ़्ता चला। एक गठिया के रोगी का दर्द दूर हुआ, पर बवासीर की तक्लीफ उभड़ आई, जो पन्द्रह दिन रहकर चली गई। एक बुखार के रोगी को एक्जिमा हो गया, जो एक हफ़्ते में ही अच्छा हो गया। एक मेम साहबा को बताया गया कि उन्हें आँतों की टी० बी० है। जब लेखक उनका इलाज करने लगा, तो

बुखार हो आया, जो पूरे तीस दिन चला। बुखार अच्छा होने के एक हफ़्ते बाद उन्हें ज़ुकाम हो गया। इन उभाड़ों के बाद रोगियों के रोग जड़ से दूर हो गये और अब वे सब के सब तन्दुरुस्त हैं। पहले वे घबराते जरूर थे, पर समझाने पर सच्ची बात समझ गये।

उभाड़ में क्या करना चाहिए? उसे एक नया रोग समझकर उसका इलाज करना चाहिए। अगर ज़ुकाम या बुखार या कोई तेज़ तकलीफ है तो भोजन छोड़कर उपवास करना चाहिए या फलों के रस पीकर रहना चाहिए। अगर बुखार ज्यादा दिन चले तो एक दो दिन उपवास करके दिन में तीन-चार बार फलों के रस पीकर रहना चाहिए। ऊपर जिन मेम साहबा का जिक्र आया है उन्हें मैंने ३० दिनों तक फल के रस पर ही रखा। उनके दोस्त और रिश्तेमंद मुझे भला-बुरा कहते रहे पर मेम साहबा दृढ़ रहीं। अगर बुखार बहुत दिन चले तो दिन में एक दो बार पतला मठा या पानी मिलाकर दूध भी दे सकते हैं। अगर ज़ुकाम या बुखार को छोड़ कर कोई ऐसा लक्षण प्रकट हो जाय, जिसमें तकलीफ ज्याद हो तो उस हालत में भी एक दो दिन उपवास करना या रस पीकर रहना चाहिए। अगर तकलीफ़ न हो तो भी एक दिन का उपवास अच्छा होता है। अगर फोड़े-फुन्सी निकल आवें तो चार-पांच दिन फलाहार करके रह जाना चाहिए।

भोजन को छोड़ने या कम करने के अलावा दिन में एक या दो बार एनीमा भी तब तक लेना चाहिए जब तक लक्षण बिल्कुल

शान्त न हो जाय। साथ ही पेडू-नहान या मेहन-नहान इत्यादि का प्रयोग भी शुरू करना या जारी रखना चाहिए। ज्यादातर उभाड मामूली ही होते हैं और हफ्ते भर के अन्दर ही अन्दर अपना काम पूरा करके निकल जाते हैं। ऊपर जो उभाड की हालतें मैंने बताई हैं वे उन रोगियों की हैं, जिनके रोग बहुत पुराने थे और जिन्होंने जहरीली दवाओं को खा खाकर रोगों को खून के अन्दर गहरा छिपा रखा था। कुछ लोग उभाड होते ही घबराकर इलाज बदल देते हैं और विकारों को कुछ दिनों के लिए फिर से दबाकर सन्तुष्ट हो जाते हैं। कहने की जरूरत नहीं कि ऐसा न करना चाहिए।

जो चिकित्सक पुराने रोगों का इलाज रोगी की अवस्था देख कर तीन दिन के उपवास और फिर फलाहार से शुरू कराते हैं और इन दिनों एनीमा से पेट भी साफ करते रहते हैं उन्हे बहुत मामूली उभाडों का सामना करना पडता है।

उभाडों से डरना न चाहिए। उभाड होना जरूरी है, उसी में शरीर की भलाई है, पर इतना ख्याल जरूर रखना चाहिए कि अपने उतावलेपन से उभाड न आने पावें। अगर अपनी ही गलती से उभाड आ जाय और रोगी अगर मामूली (बहुत नहीं) तौर से कमजोर है तो भी कोई हर्ज नहीं। कुछ दिनों के अनुभव के बाद चिकित्सक खुद ही दबे लक्षणों को बाहर निकालना सीख जाता है और जरूरत के मुताबिक (अनुसार) विकारों को निकाल निकाल कर दूर कर देता है।

उभाड़ का समय—

अनुभवी चिकित्सकों का कहना है कि अगर उभाड़ आने को होता है तो ६–७ वें दिन या ६–७ वें हफ़्ते या महीने या समय के किसी ६–७ वें विभाग में आता है। तीस साल के पुराने अपच रोग के एक रोगी का उभाड़ मैंने ७ वें महीने में आते देखा। उसकी तबियत धीरे धीरे अच्छी हो रही थी, पर छठे महीने के शुरू से ही गड़बड़ी शुरू हुई और सातवें महीने में पतले दस्त आने लगे। रोगी ने ख़ुद ही सब बातों को समझ लिया था, इस-लिए नहीं घबराया। दस्त बंद होने के बाद उसकी तबियत और अच्छी हो गई, लेकिन इक्कीसवें दिन फिर गड़बड़ी शुरू हुई। इस उभाड़ के शान्त होने पर रोगी की तबियत और ज्यादा अच्छी हो गई।

एक दिलचस्प बात यह भी है कि उभाड़ उसी क्रम (सिल-सिले) में आते हैं, जिस क्रम में रोग दबाये गये हैं। एक दूसरी मेम साहबा का इलाज मैं गठिया दूर करने के लिए कर रहा था। उन्हें पहले फोड़े निकले, फिर पतले दस्त आने लगे और अन्त में कानों में दर्द हो गया। पूछने से मालूम हुआ कि बचपन में मेम साहबा के कानों में दर्द हुआ था। इस बार का दर्द बिल्कुल वैसा ही, लेकिन तेज़ी में पहले से कम, था। कुछ साल के बाद उन्हें पतले दस्त आने लगे थे और उसके कुछ साल के बाद उन्हें खारिश भी हुई थी। जब उनके सभी तरह के दबे विकार निकल गये तो मेम साहबा बिल्कुल तनदुरुस्त हो गई।

चिकित्सक और रोगियों से लेखक की प्रार्थना है कि वे उभा[ड़] से न घबरायें। पुराने रोगों में दिन में कई बार और बहुत देर तक पेडू-नहान लेने से या पानी के और इस्तेमाल से उभाड़ जल[्दी] आता है। बस, इसी को बचाना चाहिए। अगर पानी का इस्ते-माल शरीर को थोड़ा-थोड़ा सहाकर किया जाय तो उभाड़ अपने ठीक समय पर और हल्का आयेगा। नये रोगों में इसका डर नहीं है, क्योंकि वे तो खुद ही उभाड़ हैं। उन रोगों में जब जब जरूरत पड़े रोगी की शक्ति देखकर पानी का इस्तेमाल कीजिए।

चिकित्सक को इशारा—

पुराने रोगों के इलाज में यह तय करना चाहिए कि रोगी को पहले उपवास कराया जाय या फलाहार, या रोटी-भाजी दी जाय। एनीमा हर हालत में शुरू कराया जा सकता है। अगर रोगी बहुत थोड़ा कमजोर है तो उपवास से डरना न चाहिए। अगर कुछ ज्यादा कमजोर है तो फलाहार से शुरू करा के आगे उपवास के लिए तैयारी करनी चाहिए। अगर बहुत ज्यादा कम-जोर है तो पहले एक समय सिर्फ रोटी या रोटीभाजी और दूसरे समय फल चलना चाहिए। फिर फलाहार और उपवास। अगर रोगी ने जहरीली दवाइयाँ नहीं खाई हैं तो शुरू से ही एनीमा के पहले या जब सुविधा हो पेडू पर मिट्टी भी रखनी चाहिए।

रोगी और रिश्तेदारों की परेशानी—

पुराने रोगों के इलाज में अक्सर रोगी कुछ दिनों तक दुबले होते जाते हैं और भीतर से अच्छा मालूम करते हुए भी कमजोर

दिखते हैं। इससे रोगियों को और उनके रिश्तेमन्दो को घबराहट होती है। वे डरते हैं कि कहीं रोगी इतना कमजोर न हो जाय कि फिर उसका सम्हलना कठिन हो जाय। दूसरे दूसरे लोग भी बहुत डरवाते हैं। लेकिन यह घबराहट और डर बे बुनियाद हैं। शुरू शुरू मे दुबला होना जरूरी है। जब रग-रेशे, मांसपेशी और कोषों से, और साथ ही आँतों से, मल और विकार निकाले जा रहे हैं, तो रोगी का दुबला होना स्वाभाविक है। लेकिन दुबले दिखते हुए भी रोगी का चित्त प्रसन्न रहता है, और फिर जब विकार दूर हो जाते हैं, खून साफ हो जाता है, और आदमी साधारण अच्छे भोजन पर आ जाता है तो वह बात की बात में पहले से कहीं ज्यादा तगड़ा और हट्टा-कट्टा हो जाता है।

साधना —

पुराने रोगों से छुटकारा पाना एक साधना है। जिसे पुराने रोग होते हैं उसका सिर्फ शरीर हीं नहीं बल्कि विचार और भाव भी त्रुटि-पूर्ण रहते हैं। उसकी इच्छा-शक्ति (कुव्वते-इरादा) कमज़ोर हो जाती है और उसका सारा नैतिक बल जाता रहता है। इसलिए वही मनुष्य पुराने रोग को दूर कर सकता है जो शरीर के धर्म और हालत को समझे, खाद्य-अखाद्य को जाने, और तन-दुरुस्ती के सभी नियमों का अच्छी तरह पालन करे। इस काम में चिकित्सक और रिश्तेमन्दों को बहुत होशियारी और हमदर्दी (सहानुभूति) से चलना चाहिए और धीरे धीरे रोगी के नैतिक बल को बढ़ाना चाहिए। जब रोगी स्वयं समझदार होकर अपनी

चिकित्सा अपने हाथ में ले लेता है तभी वह सच्चे तौर पर तन दुरुस्त हो सकता है। जो आदमी अपने पुराने रोग को बिल्कुल भगा देता है वह सिर्फ शरीर की ही तनदुरुस्ती नहीं बल्कि दिलो-दिमाग़ की तनदुरुस्ती और बेहतरी भी हासिल करता है। वह एक ऊँचे दर्जे का और बिल्कुल नया आदमी हो जाता है। इसी से दवा पी पीकर किसी का भी पुराना रोग नहीं जाता और दवा पीने और पिलाने वालों की सूची (फेहरिस्त) में *असाध्य (ला-इलाज)* रोगों की तादाद दिनों दिन बढ़ती जा रही है। याद रखिए कि अगर कोई तनदुरुस्त रहना चाहता है तो उसे *प्राकृतिक जीवन बिताना* चाहिए, लेकिन अगर कोई पुराने रोग को भगाकर फिर से तनदुरुस्त बनना चाहता है तो उसे *योगी बनना* पड़ेगा।

अचानक की तकलीफ़ें

अचानक की तकलीफों और बीमारियों के इलाज के बारे में कुछ बताना ज़रूरी है। इन तकलीफों को अंगरेज़ी में accidents (दुर्घटनाएँ) कहते हैं और उनकी शुरू की चिकित्सा को first aid (फर्स्ट एड) कहते हैं। चतुर चिकित्सक मिट्टी-पानी के इस्तेमाल से सभी तकलीफों की प्राथमिक चिकित्सा (पहली इमदाद, first aid) अच्छी तरह कर सकते हैं, लेकिन फिर भी कुछ इशारे यहाँ दिये जाते हैं।

फ़ालिज—

फालिज (पक्षाघात) का आना अचानक होता है, यद्यपि उसके असली कारण बहुत पहले से अपना असर फैलाते हैं। फालिज के शुरू होते ही रोगी के सिर और कधों को कुछ ऊचा रखते हुए उसे चित लिटा देना चाहिए। फिर पेडू पर एक मिट्टी की ठडी पट्टी और गर्दन के पीछे कपडे की एक गीली पट्टी रखकर रोगी के शरीर और हाथ-पैरों को हल्के हल्के पर तेज़ी के साथ कुछ मिनटों तक ऊपर से नीचे रगडना चाहिए। इन तरकीबों से खून सिर से नीचे की तरफ खिंच आता है। पट्टियों को २० से ३० मिनट तक रखना चाहिए और जरूरत होने पर आधे घटे या एक घटे के बाद फिर दुहराना चाहिए। पहली पट्टी के बाद अगर

रोगी की हालत अच्छी हो तो सहने लायक गरम पानी का एक हल्का एनीमा बहुत लाभदायक होगा। जभी रोगी की हालत सुधरे एनीमा दे देना चाहिए।

अगर रोगी को कहीं ले जाना हो तो स्ट्रेचर या डोली पर ले जाना चाहिए, किसी गाड़ी पर नहीं।

पूरे इलाज के लिए उपवास शुरू कराना चाहिए।

बनावटी सांस—

दम घुटने पर, जैसा कि पानी में डूबने, फांसी लटकने या कभी-कभी बेहोशी के समय होता है, बनावटी सांस देनी चाहिए। इसकी दो-तीन तरकीबें हैं।

(१) रोगी के ऊपरी कपड़ों को जल्दी लेकिन सहूलियत से हटा कर उसे पेट के बल लिटा दो। एक छोटा हल्का गद्दा या तकिया उसके सिर के नीचे रखो, जिस से उसकी नाक और मुँह जरा ऊपर उठे रहें। फिर रोगी के पैरों के पास घुटने टेक कर बैठो और अपने दोनों खुले हाथों को कमर के ऊपर पीठ पर दोनों तरफ रखो और इसी हालत में हल्के हल्के पर मजबूती के साथ पीठ के उस हिस्से को दबाओ। सयानों में एक एक दबाव चार-चार सेकंड के लिए हो और बच्चों में तीन-तीन सेकंड के लिए। कुछ देर तक बारी-बारी इसी तरह दबाना और दबाव को ढीला करना चाहिए।

(२) रोगी को पीठ के बल लिटाओ। कमर के ऊपर पीठ

के निचले हिस्से के नीचे एक छोटा गद्दा रखो, जिससे सिर सीने से नीचा हो जाय । फिर टाँगों के आर-पार घुटने टेक कर बैठते हुए दोनों तरफ सीने पर (स्तनों के नीचे) दोनों हाथों को खोल कर रखो और १, २, ३, ४ गिनो। १, २ गिनते समय सीने को हल्का लेकिन मजबूती से दवाओ और ३, ४ गिनते समय दवाव को ढीला करो। ऐसा तब तक करो, जब तक सांस वापस न आ जाय। सांस वापस आते समय सीने में हल्की थर्राहट सी होती है। सीने दवाते समय हाथों में कलाई के पास से हल्का कंपन देना चाहिए।

(३) रोगी को नं० २ की हालत में इस तरह लिटाओ कि सीना ऊपर उठा रहे। तब झुक कर रोगी के हाथ को कलाई के पास पकड़ पूरे बाजुओं को ऊपर और पीछे की तरफ ले जाओ और तब उसी तरह पूरे खुले बाजुओं को वापस लाकर शरीर के बगल के पास से कोहनियों को मोड़ते हुए सिर्फ बाजुओं के अगले हिस्सों को सीने पर मोड़ो। इस तरह सयानों में फी मिनट १५ बार और बच्चों में २० बार तब तक करना चाहिए जब तक सांस वापस न आ जाय।

पानी में डूबने के मौके पर जब दम घुटता है तो नं० १ वाली तरकीब को काम में लाना ज्यादा अच्छा है। उससे पानी बाहर निकल आता है। पानी को बाहर निकालने के लिए दूसरी तरकीब है पेट के बल लेटे हुए रोगी के पेट और पेड़ू पर हाथ रखना और उसे हल्का हल्का दवाना, फिर उसी तरह पेट और पेड़ू

को दबाये हुए रोगी को बीच-बीच में थोड़ा ऊपर उठाना और उसके ऊपरी अँग को नीचे की तरफ़ कुछ झुकाना।

ज़हरीले कीड़ों की डंक—

बिच्छू, बर्रे की डंकों पर एक बार या बार बार की मिट्टी की ठंडी पट्टी से ही काम निकल जाता है। सांप के डसने पर डसने की जगह पर × ऐसा चीरा देकर उंगलियों से दबा दबा कर खून जितना हो सके निकाल देना चाहिए। अगर हो सके तो मुँह से भी चूस चूस कर खून फेंक देना चाहिए। चूसने वाले के मुँह में कोई जख्म न हो और चूस कर खून फेंकने के बाद कुल्ला कर कर के मुँह को अच्छी तरह साफ करना चाहिए। जख्म को नींबू के रस से (अगर मिले तो, नहीं तो पानी से) अच्छी तरह धो कर उस पर मिट्टी की पट्टी चढ़ा देनी चाहिए। साथ ही पेडू पर भी मिट्टी की पट्टी देनी चाहिए। अच्छा हो अगर जख्म पर मिट्टी चढाने के बाद ही पहले एनीमा से पेट साफ कर तब पेडू पर मिट्टी की पट्टी दी जाय। जख्म को धोने और उस पर मिट्टी चढ़ाने के बाद उसके कुछ ऊपर एक मजबूत कपड़े के टुकड़े से अच्छी तरह कस कर बांध देना चाहिए। फिर उसके एक-डेढ फुट ऊपर भी बांधना चाहिए। यह दोनों बंधन पन्द्रह मिनट से ज्यादा देर तक न बंधे रहें। यह सब काम जल्द होने चाहिए। साथ ही उधर भाप-नहान के लिए पानी गर्म हो। पानी तैयार होते ही रोगी को भाप-नहान और उसके बाद मामूली नहान और पेडू-नहान देने चाहिए। इसके बाद रोगी को गर्म कपड़ों से ढक कर

लिटा दीजिए, लेकिन सोने न दीजिए। एक डेढ़ घंटे बाद, अगर जरूरत हो तो, भाप-नहान और पेड़ू-नहान दिये जा सकते हैं। रोगी को सोने न देना चाहिए। अगर दो बार पेड़ू-नहान के बाद भी शक रहे तो रोगी के सारे शरीर को, चेहरा और गर्दन छोड़ कर, जमीन मे गाड़ दीजिए। सारे शरीर के चारों तरफ अच्छी तरह गीली मिट्टी रहे। इस हालत में रोगी सो न जाय, इसका खयाल रहे। एक-डेढ घंटे के बाद रोगी को नहला कर लिटा दीजिए।

रोगी को तब तक कुछ भी खाने को न देना चाहिए, जब तक कि जहर का अन्देशा बिल्कुल दूर न हो जाय। फिर रसाहार पर एक-दो दिन रखकर फल देना चाहिए। एनीमा का प्रयोग भी चलना चाहिए। शराब, चाय इत्यादि भूल कर भी न देना चाहिए।

कुत्ते का काटना—

अक्सर इसका असर कुछ दिनों बाद होता है। काटने के बाद से ही शरीर को उपवास, रसाहार, फलाहार, सुथरा भोजन, बीच-बीच में भाप-नहान और पेड़ू-नहान से शुद्ध कीजिए।

बुख़ार में बर्राना—

इसे अंगरेजी में डिलीरियम (delirium) कहते हैं। १०३ डिग्री या इससे ज्यादा बुखार होने पर रोगी या तो बर्राता है या बे-होशी की हालत मे हो जाता है। दोनों हालतों में पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी और (जरूरत हो तो) गर्दन के नीचे गीले कपड़े की पट्टी

देनी चाहिए। सिर पर भी कपड़े की गीली पट्टी दी जा सकती है। अगर गर्दन के नीचे पट्टी दी जाय तो गर्म कपड़े से लपेट देना चाहिए। सिर की पट्टी को नहीं लपेटना चाहिए। पट्टी गर्म होते ही बदली जानी चाहिए। बुखार कुछ भी कम होते ही पट्टी हटा देनी या बिल्कुल बंद कर देनी चाहिए। अगर बुखार कम भी न हो लेकिन हालत कुछ सुधर जाय तो पट्टी रुक रुक कर देनी चाहिए। बर्फ का इस्तेमाल वर्जित है।

चोट से खुरचना, किसी अंग का कटना--

कपड़े की गीली पट्टी से काम लो। खुरचने पर दिन भर में तीन-चार पट्टी काफी है। दूसरे दिन सिर्फ दो या तीन।

कट जाने पर अगर खून ज्यादा निकलता हो तो जरा मोटा गद्दा अच्छी तरह भिगो कर कटे स्थान पर बांधना चाहिए और जब तक खून बंद न हो इस गद्दे को तर रखना चाहिए। खून बंद हो जाने पर दिन भर में एक दो गीली पट्टी की और जरूरत पड़ेगी। मामूली कटने पर मामूली गीली पट्टी से काम निकल जायगा।

जलना--

अगर कपड़े में आग लग जाय तो भागना न चाहिए। जमीन में लोट-लोट कर आग को बुझा देना चाहिए। ऊपर से अगर कोई मोटा और भारी कपड़ा (मोटा कंबल, दरी) डाल दिया जाय और तब लोटा जाय तो आग जल्द बुझ जाती है।

अगर शरीर भी जल गया है तो कपड़ा उतारते समय होशियारी से काम लेना चाहिए। काट काट कर कपड़े को हटाओ। अगर कपड़ा चिपक गया है तो चारों तरफ से क़ैंची से काट दो और चिपके कपड़े को हटाने की कोशिश न करो।

जले हुए स्थान पर सोडा बाइकारबोनेट (bicırbonate of soda) और तिल या जैतून के तेल का लेप या सिर्फ नारियल का तेल या मिट्टी की गीली पट्टी लगाने से लाभ होता है। बुरी तरह जल जाने पर जले हुए अंग को सहने लायक काफी गर्म पानी में देर तक डुबो कर रखने से लाभ होता है।

गले में किसी चीज़ का अटकना--

चेहरा को ज़रा नीचा करते हुए रोगी को बैठा दो। फिर कंधों के बीच (गर्दन के नीचे ही) घूसे लगाओ। मुंह में उंगलियों को डाल कर कोई होशियार आदमी अटकी हुई चीज़ को निकाल सकता है। अगर रोगी बचा है तो उसके नथनों को दबा कर बंद करने से वह मुंह खोल देगा और तब उंगलियों से अटकी चीज़ निकाली जा सकती है।

कान में किसी चीज़ का पड़ जाना--

अगर कीड़ा है तो कान में तेल डालने से वह मर जायगा और तब वह निकाला जा सकता है। किसी चीज़ को निकालने के लिए कान के बाहरी हिस्से को खींच कर पीछे की तरफ ले जाना चाहिए। तब कान के अंदर की चीज़ के निकालने में

सहूलियत होती है। बहुत सी चीजें पिचकारी देने से निकल आती हैं। कुछ को कान साफ करने वालों से निकलवाना पड़ता है।

बे-होशी--

पहले यह ठीक कर लो कि रोगी जीता है। जीते रहने की हालत में नाक के पास शीशे का टुकड़ा रखने से उस पर भाप सी जमती है।

फिर यह जानने की कोशिश करो कि रोगी ने जहर तो नहीं खाया है (आगे देखो)। अगर जीभ कटी है तो मृगी है। अगर आँखें छूने पर या रोशनी से चौंकती-तिरमिराती हैं तो दिमागी खराबी नहीं है। पुतलियों का ना-बराबर सिकुड़ा रहना दिमाग की खराबी बताता है। पुतलियों का सिकुड़ कर सुई की नोक की तरह बन जाना अफीम खाया जाना बताता है। रुक रुक कर धीरे धीरे सांस का आना-जाना सख्त सदमा या एकाएक कमजोरी की हालत में होता है। नाक का बजना या सांस की खर्राहट और कमजोर नब्ज फालिज जैसी हालत या और दिमागी खराबी में रहती है। बहुत गर्म बदन और बहुत तेज नब्ज जोरदार बुखार या लू लगने की हालत में होती है। ठंडा शरीर और कमजोर नब्ज ठंड से या मामूली बे-होशी की हालत में होती है। इन सब बातों को अच्छी तरह समझना और जानना चाहिए।

रोगी के कपड़े ढीले कर दो। मामूली बे-होशी में रोगी को आराम की हालत में लिटा कर उसका सिर कुछ नीचा कर दो। उसके शरीर और चेहरे में हवा लगने दो। धीरे धीरे हवा करो।

पेडू पर जल्दी से मिट्टी की गीली पट्टी रखो, सीने पर कपड़े की गीली पट्टी दो और चेहरा और गर्दन पर हल्के हल्के पानी का छींटा दो। रीढ़ को भी तौलिया भिगो कर रगड़े दो। साथ ही पैर-हाथ को हल्के हल्के दबाओ और ऊपर से नीचे की तरफ रगड़ो। अगर सांस धीमी, कमजोर और रुक रुक कर आती हो तो बनावटी सांस दो। होश होने और हालत सुधरने पर गुनगुने पानी का एनीमा दो।

बे-होशी की हालत में पानी या कुछ भी पीने को न दो। उससे गला घुटने का डर रहता है। होश हो जाने पर थोड़ा थोड़ा पानी या फल का रस, थोड़ी थोड़ी मात्रा में, चूसने को दिया जा सकता है। नशीली चीज किसी भी हालत में न दो।

मृगी की मूर्च्छा--

जब मूर्च्छा हो तो उसे हो लेने दो; रोकने या दबाने की कोशिश करना हानिकर होता है। रोगी को जितने आराम से हो सके रखो, सिर को कुछ ऊँचा कर दो। रोगी को हवा लगने दो। नीचे के जबड़े को हल्के हल्के खींच कर कुछ आगे करो, जिससे हवा जा सके और दम न घुटे। फिर यह भी देखो कि दाँतों से जीभ न कटे। इसके लिए रूमाल या किसी साफ कपड़े के टुकड़े को दाँतों के बीच में दिया जा सकता है। बँधी मुट्ठियों को खोलने की चिन्ता या कोशिश बेकार है। रीढ़ को गीले कपड़े से हल्के हल्के रगड़ना चाहिए।

मृगी के रोगियों को धीरज के साथ अपना इलाज कई महीनों

तक करना चाहिए। उपवास, रसाहार, फलाहार, फिर सुधरा भोजन, लगातार कुछ हफ्तों तक एनीमा-प्रयोग और तीन-तीन महीने पर या पहले इसी क्रम को दुहरा देना बहुत लाभदायक होता है। नहान, खास कर मेहन-नहान, मिट्टी का प्रयोग, रीढ़ की मालिश और रीढ़ की गीली पट्टी से काम लेना चाहिए।

मृगी के रोगियों को शान्त और संयम का जीवन बिताना चाहिए। समझदारी से इलाज करने पर साल भर में सैकड़े ९५ रोगी बिल्कुल चंगे हो सकते हैं।

हड्डी का टूटना—

इसके लिए हड्डी बैठाना जानना चाहिए। किसी अच्छे जानकार से काम लेना चाहिए, नहीं तो खींच-खांच में गड़बड़ी होगी। जब तक जानकार न मिले रोगी और उसके जख्मी अंग को आराम से रखना चाहिए और अगर खून बहता हो तो कपड़े की गीली गद्दियों से खून को बंद करने की कोशिश करनी चाहिए। दर्द रहने पर गर्म और ठंडी सेंक हल्के हल्के देनी चाहिए।

मुँह से खून का आना—

यह जानना चाहिए कि खून कहाँ से आ रहा है। अगर खून कुछ नीलापन लिये है या गदा लाल है और उसमें कुछ भोजन का अंश है तो समझना चाहिए कि खून पेट के अन्दर से पुराने फोड़े (कैन्सर, cancer) के कारण आ रहा है। अगर खून चमकीला लाल है और उसमें भोजन का अंश भी है तो भी समझना चाहिए कि पेट के अन्दर से आ रहा है लेकिन मामूली जख्म के

कारण है। दोनों हालतों में रोगी को आराम से लिटाकर थोड़ी थोड़ी देर पर नींबू का रस मिला १-२ चम्मच (छोटे) पानी पीने को देना चाहिए। साथ ही पेडू पर मिट्टी की गीली पट्टी रखनी चाहिए। जरूरत रहने पर मिट्टी की पट्टी आध आध घंटे के बाद कई बार दी जा सकती है।

अगर खून चमकीला लाल है और उसमें फेन भी है लेकिन भोजन का अंश नहीं है तो उसे फेफड़ों से आता हुआ समझना चाहिए। घबराने की बात नहीं, क्योंकि कभी कभी यक्ष्मा के रोगियों को आराम के उभाड़ के समय भी ऐसा होता है। चाहे जब हो, रोगी को आराम से लिटाकर पेडू पर गीली मिट्टी और सीने पर गीले कपड़े की पट्टी देनी चाहिए। उपवास जरूरी है। उपवास के बाद कुछ दिनों तक रसाहार चलना चाहिए।

अगर नाक से खून आता हो तो सिर के नीचे बिना तकिया दिये लेटना चाहिए। नींबू का रस मिले ठंडे पानी को नाकों से जब तब सिड़कना चाहिए। भौंहों के बीच (नाक के ठीक ऊपर) और गर्दन के पीछे कपड़े की गीली पट्टी से लाभ होता है।

अगर नींबू न मिल सके तो सिर्फ ठंडे पानी का इस्तेमाल करना चाहिए। खून रोकने के लिए नींबू का रस एक बहुत अच्छी चीज है।

गर्मी से बहुत कमज़ोरी—

इसमें भी बेहोशी सी होती है, शरीर ठंडा हो जाता है, नब्ज बहुत कमजोर लेकिन तेज हो जाती है।

सदमा—

अक्सर चोटों के मौक़ों पर चोट तो कम रहती है, लेकिन सदमे से हालत ख़राब हो जाती है। ऊँचे से गिरने पर, किसी अँग के बुरी तरह कट जाने पर, जल जाने पर या वैसे भी किसी बीमारी में सदमे का अन्देशा रहता है। लेखक ने एक ऐसे आदमी को एक बार देखा, जो दरख्त से गिर गया था। वैसे उसका भीतरी हाल अच्छा था, पर सदमे से उसका बाहरी हाल बहुत बुरा था। लेखक ने कहा कि यह आदमी बहुत बहादुर है। अगर कोई दूसरा आदमी दरख्त से गिरा होता तो उसका बदन चकनाचूर हो गया होता। यह सुनकर वह आदमी सम्हल गया और लगा बोलने। इस घटना से ज़ाहिर (स्पष्ट) होता है कि सदमे में हिम्मत दिलाने वाली हमदर्दी (सहानुभूति) की बातें रोगी से कहनी चाहिए। साथ ही नींबू का रस मिले गर्म पानी या अगर और कोई ख़राबी न हो तो गर्म दूध पीने को देना चाहिए और रोगी को गर्म कपड़ों से ढकना चाहिए।

ज़हर खाना—

ज़हर खाने पर ज़रा नमक मिले गरम पानी को पिला कर अच्छी तरह क़ै करानी चाहिए। पानी पीने के बाद हलक में उँगली डाल कर या चिड़िया के मुलायम पर से हलक को गुदगुदाने से क़ै हो जाती है। इस तरह थोड़ी थोड़ी देर के बाद बारम्बार क़ै करानी चाहिए। थोड़ा नमक मिला कर गुनगुने पानी का एनीमा भी एक-दो बार देना चाहिए। अगर रोगी कमज़ोर नहीं हुआ है तो भाप-

नहान और पेडू-नहान से बहुत लाभ होगा। एक दो बार कै और एनीमा से पेट साफ हो जाने के बाद दूध या शक्कर मिला पानी पीने को देना चाहिए।

अक्सर लोग तेज़ाब पी जाते हैं। उससे ओठों में दाग़ हो जाता है। इसे देख लेना चाहिए और ऐसी हालत में कै नहीं करानी चाहिए। रोगी को दूध या थोड़ा गरम पानी में अंडे की सफ़ेदी अच्छी तरह मिला कर पीने को देना चाहिए। साथ ही थोड़े दूध का एनीमा इस तरह देना चाहिए कि वह पेट में ही रह जाय।

अगर बेहोशी है और साँस घुटी है तो चेहरे और गर्दन को भीगे कपड़े से पोंछना चाहिए और बनावटी साँस देनी चाहिए।

ज़हर खाने की हालत में तब तक उपवास और एनीमा-प्रयोग की ज़रूरत है, जब तक कि शरीर से ज़हर बिल्कुल निकल न जाय। फल का रस पानी के साथ मिला कर बीच बीच में दिया जा सकता है।

आख़री हिदायतें—

(२) ऊपर जो कुछ बताया गया है वह अचानक की तकलीफ़ की हालतों में प्राथमिक चिकित्सा या पहली इमदाद की तरह बताया गया है। कुछ तकलीफ़ों में पहले से कोई रोग चलता रहता है या कुछ तकलीफें आने वाले रोग की सूचना सी रहती हैं। ऐसी तकलीफ़ों का इलाज जब तक ज़रूरी हो नियम-पूर्वक चलना चाहिए।

रोगी को ठंडी जगह में रखो। कपड़ा भिगोकर सारे शरीर को हल्के हल्के लेकिन तेजी से रगड़ो। सिर को अच्छी तरह ठंडे पानी से धोओ, साथ ही गर्म पानी नींबू के रस के साथ पीने को दो, जिससे शरीर में गर्मी आ जाय। अगर कमजोरी बहुत ज्यादा है और पैर ठंडे पड़ गये हों तो सहने लायक काफी गर्म पानी में कम्बल अच्छी तरह निचोड़ कर टांगों में लपेट दो और ऊपर से दो-चार कम्बल और डाल दो। थोड़ी थोड़ी देर पर नींबू के रस के साथ गर्म पानी पीने को दो।

हिचकी—

हिचकी पेट की खराबी से होती है। मामूली हिचकी में धीरे धीरे पानी चूसना चाहिए। गहरी सांस लेने से भी हिचकी बंद होती है। कभी कभी जोरदार हिचकी में उपवास की भी जरूरत पड़ती है। मरने के समय की हिचकी बुरी होती है, पर उसका कोई इलाज नहीं।

लू लगना—

इसके लक्षण हैं एकाएक तबियत का खराब होना, परेशानी और कुछ बेहोशी, चेहरे का पीला पड़ना, शरीर गर्म, नब्ज कमजोर और कभी कभी नब्ज का बहुत कमजोर हो जाना।

रोगी का कपड़ा हटाकर उसके सिर और सारे शरीर को अच्छी तरह ठंडे पानी से धोकर पोंछ देना चाहिए। तुरन्त ही मिट्टी की गीली पट्टी पेडू पर देनी चाहिए। अगर फिर भी जरू-

रत हो तो आध घंटे के बाद रोगी को अच्छी तरह नहलाना चाहिए। ज्यादा परेशानी में सारे शरीर की गीली पट्टी विना कम्बल लपेटे देनी चाहिए और ऊपर से पानी डालना चाहिए, लेकिन अगर कमजोरी बहुत ज्यादा है तो नहलाकर या गीली पट्टी देकर कम्बल से अच्छी तरह ढक देना चाहिए। मौक़ा देख-कर और होशियारी से काम करना चाहिए।

मोच--

मोच में कपड़े की गीली पट्टी से फायदा होता है। इसे थोड़ी थोड़ी देर का अन्तर देकर कई बार देना चाहिए। एक तरीक़ा आराम पहुँचाने का और है। पहले काफी गर्म पानी में उस हिस्से को डुबोकर रखना या ऊपर से गर्म पानी गिराना और फिर ठंडे पानी में डुबोना या ठंडे पानी को ऊपर से गिराना। दिन में दो-तीन बार करना चाहिए। अक्सर मोच खाये अंग को भाड़ने की जरूरत पड़ती है। इसके लिए कोई जानकार चाहिए।

दाँतों का दर्द--

गर्म पानी में जरा नमक मिलाकर दिन में दो-तीन बार कुल्ला करना चाहिए। आम और महुए की छाल को पानी में उबालकर उसी पानी से क़ुल्ला करने से भी लाभ होता है, लेकिन अगर दर्द के साथ मसूढ़ों में गर्मी और जलन भी है तो मुँह में मामूली ठंडा पानी लेकर उसे कुछ देर तक रखना चाहिए। जब पानी गरम हो जाय तो उसे फेंक कर फिर से ठंडा पानी मुँह में लेना चाहिए।

सदमा—

अक्सर चोटों के मौक़ों पर चोट तो कम रहती है, लेकिन सदमे से हालत खराब हो जाती है। ऊँचे से गिरने पर, किसी अँग के बुरी तरह कट जाने पर, जल जाने पर या वैसे भी किसी बीमारी में सदमे का अन्देशा रहता है। लेखक ने एक ऐसे आदमी को एक बार देखा, जो दरख्त से गिर गया था। वैसे उसका भीतरी हाल अच्छा था, पर सदमे से उसका बाहरी हाल बहुत बुरा था। लेखक ने कहा कि यह आदमी बहुत बहादुर है। अगर कोई दूसरा आदमी दरख्त से गिरा होता तो उसका बदन चकनाचूर हो गया होता। यह सुनकर वह आदमी सम्हल गया और लगा बोलने। इस घटना से जाहिर (स्पष्ट) होता है कि सदमे में हिम्मत दिलाने वाली हमदर्दी (सहानुभूति) की बातें रोगी से कहनी चाहिए। साथ ही नींबू का रस मिले गर्म पानी या अगर और कोई खराबी न हो तो गर्म दूध पीने को देना चाहिए और रोगी को गर्म कपड़ों से ढकना चाहिए।

ज़हर खाना—

ज़हर खाने पर ज़रा नमक मिले गरम पानी को पिला कर अच्छी तरह कै करानी चाहिए। पानी पीने के बाद हलक में उँगली डाल कर या चिड़िया के मुलायम पर से हलक को गुदगुदाने से कै हो जाती है। इस तरह थोड़ी थोड़ी देर के बाद बारम्बार कै करानी चाहिए। थोड़ा नमक मिला कर गुनगुने पानी का एनीमा भी एक-दो बार देना चाहिए। अगर रोगी कमज़ोर नहीं हुआ है तो भाप-

नहान और पेडू-नहान से बहुत लाभ होगा। एक दो बार कै और एनीमा से पेट साफ हो जाने के बाद दूध या शक्कर मिला पानी पीने को देना चाहिए।

अक्सर लोग तेजाब पी जाते हैं। उससे ओठों में दाग हो जाता है। इसे देख लेना चाहिए और ऐसी हालत में कै नहीं करानी चाहिए। रोगी को दूध या थोड़ा गरम पानी में अंडे की सफेदी अच्छी तरह मिला कर पीने को देना चाहिए। साथ ही थोड़े दूध का एनीमा इस तरह देना चाहिए कि वह पेट में ही रह जाय।

अगर बेहोशी है और साँस घुटी है तो चेहरे और गर्दन को भीगे कपड़े से पोंछना चाहिए और बनावटी साँस देनी चाहिए।

जहर खाने की हालत में तब तक उपवास और एनीमा-प्रयोग की जरूरत है, जब तक कि शरीर से जहर बिल्कुल निकल न जाय। फल का रस पानी के साथ मिला कर बीच बीच में दिया जा सकता है।

आखरी हिदायतें—

(२) ऊपर जो कुछ बताया गया है वह अचानक की तकलीफ की हालतों में प्राथमिक चिकित्सा या पहली इमदाद की तरह बताया गया है। कुछ तकलीफों में पहले से कोई रोग चलता रहता है या कुछ तकलीफें आने वाले रोग की सूचना सी रहती हैं। ऐसी तकलीफों का इलाज जब तक जरूरी हो नियम-पूर्वक चलना चाहिए।

(२) प्राथमिक चिकित्सक को होशियारी से काम करना चाहिए। उसे यह ध्यान में रखना चाहिए कि रोगी की तकलीफ कम हो जाय और आने वाले खतरे का अन्देशा दूर हो जाय।

(३) जब कोई बात अच्छी तरह समझ में न आवे या जभी कोई गड़बड़ी मालूम हो तो पेडू पर और तकलीफ के स्थान पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करना न भूलो।

(४) प्राकृतिक चिकित्सा में किसी भी तरह जहर का प्रयोग—अन्दर पीने के या जख्म पर लगाने के रूप में—मना है। इस चिकित्सा में टिंक्चर आयडीन के बदले नींबू का रस या पानी मिला नींबू का रस या सिर्फ पानी या मिट्टी की पट्टी ज्यादा लाभ के साथ काम में लाई जाती है।

(५) अगर कुछ जानी-समझी जड़ी-बूटी, जो जहरीली नहीं है, काम में लाई जाय तो हर्ज नहीं।

कसरत और आराम

कसरत और आराम

यह दोनों भी अचूक चिकित्सा के ढग हैं, लेकिन इनकी गिनती चिकित्सा-विधियों मे इसलिए नहीं की कि यह तो हर रोज की जिन्दगी के भी जरूरी हिस्से हैं। फिर भी नये रोगों में 'आराम' की जरूरत रहती है और पुराने रोगों में 'कसरत' और 'आराम' दोनों की जरूरत होती है।

कसरत

कसरत की ज़रूरत---

सच पूछिए तो अलग से कसरत करना जरूरी न होता, अगर हम लोगों के रहने और अपने काम करने की आदतें नहीं बिगडतीं। जो लोग सुबह उठकर मील दो मील बाहर मैदान में जाकर पाखाने के लिए बैठते हैं और फिर मील दो मील वापस आते हैं और आते-जाते खुली हवा मे साँस लेते हैं उन्हे कसरत की क्या जरूरत? जो किसान खेतों में दिन भर जी तोडकर मेहनत करते हैं उन्हें कसरत की क्या जरूरत? जो नहाने के लिए बद कमरे के अन्दर नहीं घुस जाते बल्कि नदी या तालाब में जाकर घंटे आध घटे अच्छी तरह तैर कर नहाते हैं या कुआ से पानी निकाल निकालकर नहाते हैं उन्हें कसरत की क्या जरूरत?

जो औरतें अपने घर के काम-काज खुद ही करती हैं, चक्की पीसतीं, धान कूटतीं और ऐसे ही सब काम करती हैं, उन्हें कसरत की क्या जरूरत ? लेकिन कसरत की जरूरत उन्हें जरूर है, जिनके काम नौकर या और कोई दूसरा कर देता है, जिनका रोजगार उन्हें बहुत देर तक बैठे रहने के लिए विवश करता है, जो देश और संसार के ऊँचे ऊँचे कामों के करने में इतना व्यस्त रहते हैं कि अपने आप रोजमर्रे (दैनिक जीवन) के कामों को खुद नहीं कर सकते और जो निरी सभ्यता और फैशन के कारण अपने कामों के लिए कल-पुर्जों का या दूसरों का मुँह ताका करते हैं। ऐसों के लिए कसरत नहीं करना अपने शरीर में बीमारी इकट्ठा करना, अपनी योग्यता को घटाना और अपने जीने के दिनों को कम करना है। हिन्दुस्तानी और यूरप-अमेरिका के लोगों में यही अन्तर है। सच्ची बात यह है कि एक औसत दर्जे का हिन्दुस्तानी ज्यादा अच्छी तरह रहता है, ज्यादा प्राकृतिक जीवन बिताता है बनिस्बत (अपेक्षा) एक यूरोपियन या अमेरिकन के, लेकिन यूरोपियन या अमेरिकन इस बात में बढ़ा-चढ़ा है कि वह नियमित कसरत करता है या कोई खेल खेलता है या बहुत दूर पैदल चलता है। आज तक मैंने एक भी ऐसा अँगरेज नहीं देखा, जो हर रोज किसी न किसी तरह की कसरत न करता हो। क्या लड़के, क्या जवान, क्या अधेड़, क्या बुड्ढे, क्या औरत, क्या मर्द, सभी दिन के किसी न किसी समय अपनी ताकत भर कोई कसरत जरूर कर लेते हैं। तभी तो वे चाय, सफ़ेद डबल रोटी,

मांस, शराब और ऐसी ही बहुत सी हानिकारक चीज़ों का इस्तेमाल करते हुए भी बहुत दिनों तक जीते और हट्टे-कट्टे बने रहते हैं। अपने हिन्दुस्तानी भाइयों को इन विदेशियों से यह सबक सीखना पड़ेगा।

कसरत के फ़ायदे —

(१) कसरत से शरीर के विकार पसीना के रूप में बाहर निकल जाते हैं।

(२) कसरत से शरीर का रक्त-संचार (ख़ून का दौरान) तेज़ होता है और जिन जिन अंगों की कसरत होती है उन्हें एक तरह का रक्त-नहान मिल जाता है, जो उनके लिए बहुत अच्छा है।

(३) कसरत से अंग मज़बूत और सुडौल होते हैं।

(४) कसरत से शरीर में लचीलापन और फुर्ती आती है, जिससे जवानी बनी रहती है।

(५) कसरत से शरीर की सुन्दरता बढ़ती और बनी रहती है।

(६) कसरत करते समय, ज्यादा मात्रा (अन्दाज़) में हवा और उसके साथ ऑक्सीजन नाक के रास्ते शरीर में लिया जा सकता है, जिसका फायदा पहले बताया जा चुका है।

(७) ख़ास-ख़ास कसरतों से ख़ास ख़ास रोग दूर किये जा सकते हैं, जैसे कब्ज़ को दूर करने के लिए पेट और पेडू की कसरतें।

(८) कसरत अनेकों खराबियों को दूर करती है।

एक ही कसरत सबों के लिए नहीं है—

इसे समझाने की जरूरत नहीं, क्योंकि यह मामूली बात है है कि जो कसरत लड़कों के लिए ठीक है वह जवान के लिए नहीं और जो जवान के लिए ठीक है वह अधेड़ों और बुड्ढों के लिए नहीं, और इसी तरह जो बुड्ढों या जवानों के लिए ठीक है वह जवान या लड़कों के लिए ठीक नहीं है।

बच्चों और छोटे लड़कों के लिए सिवा दौड़-धूप के और कोई कसरत उपयुक्त नहीं है। बड़े लड़कों के लिए कसरतें ठीक हैं और ज्यों-ज्यों वे बड़े होते जायँ त्यों-त्यों उनकी कसरतों को भी सख्त (कठिन) और ज्यादा देर तक चलने वाली होनी चाहिए। जवानों के लिए डंड-बैठक, जिमनास्टिक इत्यादि सभी उपयुक्त हैं। फिर ज्यों-ज्यों उम्र ढलती जाय त्यों-त्यों कसरत की मात्रा को कम करना चाहिए और टहलने की मात्रा को बढ़ाना चाहिए। साथ ही बागीचे मे काम करना, घूम घूमकर खेत-खलिहान देखना, बाजार करना, अंगरेजी खेल गाल्फ खेलना (अगर हो सके) इत्यादि चलने-फिरने वाले कामों को जारी रखना और बढ़ाना चाहिए। बुढ़ापे में सिर्फ टहलना ही टहलना बन सकता है, लेकिन जो शुरू से कसरत करते आते हैं उनकी कसरतें बुढ़ापे में भी, कुछ कम मात्रा में, जारी रह सकती हैं।

पुराने रोग से पीड़ितों के लिए, जब उपवास और फलाहार के बाद उन्हें मामूली काफी ताकत हो जाय तो, अपनी शक्ति भर

कसरत करना जरूरी है। उससे उनके रोग जल्द जायँगे। नये रोगों में तो प्रकृति आराम करने को विवश करती है, इसलिए उस हालत में कसरत वर्जित है। साधारण तनदुरुस्ती में रोज कसरत करनी चाहिए। जो ऐसा नहीं करते वे अपने शरीर को बहुत दिनों तक अच्छी हालत में नहीं रख सकते।

बदन की मालिश—

बहुत से पुराने रोगों के रोगी इस हालत में रहते हैं कि वे हल्की से हल्की कसरत भी नहीं कर सकते और न वे टहल ही सकते हैं। कभी कभी गठिया के रोगियों की यही हालत होती है। ऐसों के लिए बदन को, खास कर तकलीफ वाले अंग की, मालिश जरूरी है। मालिश में उतनी ही ताकत लगानी चाहिए जितनी कि रोगी आसानी से सह सके। मालिश करते समय रीढ़ और जोड़ों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इन जगहों पर दोनों ओर से हल्की-हल्की मालिश करते हुए हड्डी और जोड़ की तरफ हाथ ले जाना चाहिए। मालिश जरा देर तक हो, जिससे खून में अच्छी और काफी हरकत हो जाय।

अपने देश में बहुत से होशियार मालिश करने वाले हैं, जो इस हुनर को अच्छी तरह जानते हैं। मालिश में सारे शरीर को धीरे धीरे कूटना, ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर की तरफ रगड़ना, सारे बदन को पूरी तलहथी से नीचे-ऊपर की तरफ गोला गोला मलना, तकलीफ की जगह को बहुत हल्के हल्के सारी उँगलियों की चुटकियों से दबाना इत्यादि बातें सम्मिलित हैं।

ध्यान रहे कि रोगी को मालिश करते समय (तक्लीफ़ नहीं) आराम और आसूदगी मालूम हो और साथ ही सारे बदन में ख़ून की रफ़्तार (चाल) बढ़ जाय।

मालिश करते समय सरसों के तेल का इस्तेमाल करना बहुत अच्छा है, लेकिन अगर कोई खाल की बीमारी है तो तिल या नारियल का तेल इस्तेमाल करना चाहिए। सब से अच्छी मालिश धूप में ही होती है। रोगी जितनी कड़ी धूप सह सके उतनी कड़ी धूप में उसके बदन की मालिश करनी चाहिए। अगर धूप ज्यादा कड़ी है तो सिर को अच्छी तरह ढक देना चाहिए। उन हालतों में भी धूप में नहीं बैठना चाहिए, जिनमें धूप नहान मना है। मालिश के बाद नहा लेना या गीले कपड़े से बदन को अच्छी तरह पोंछ देना भी ज़रूरी है। साबुन का भरसक इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। बहुत से साबुनों में ऐसी ऐसी चीजें रहती हैं, जिनका बुरा असर खाल पर पड़ता है। सिर में सरसों का नहीं तिल का तेल देना चाहिए।

टहलना—

मालिश के बाद टहलने का नम्बर आता है। जिन्हें ताक़त है लेकिन इतनी नहीं कि कसरत करें उनके लिए टहलना ज़रूरी है। जिन्हें काफ़ी ताक़त है उन्हें कसरत करना और टहलना दोनों ही चाहिए। सच पूछिए तो टहलना सब से अच्छी कसरत है। इससे कसरत के सभी फ़ायदे हासिल हो जाते हैं और कसरत की जो ख़राबी है—दिल पर बहुत ज्यादा ज़ोर का पड़ना—वह नहीं

होती। कसरत का पूरा फायदा टहलने से मिल जाता है, अगर तेजी के साथ खूब दूर तक टहला जाय।

देखिए, टहलने से किस तरह फायदा पहुँचता है। कसरत से एक फायदा है खून के दौरान को तेज करना और शरीर के सभी अंगों में खून पहुँचाना। यह काम टहलने से अच्छी तरह हो जाता है, क्योंकि मामूली तेजी से भी टहने से दिल की धड़कन बढ़ जाती है, जो नब्ज (नाड़ी) की धड़कन से मालूम होती है। एक मिनट में एक साधारण तनदुरुस्त आदमी की नब्ज ७२ बार चलती है। अगर वह मामूली तेजी से चले तो एक मिनट में नब्ज ८२ बार चलने लगती है। इसका मतलब है कि दिल की धड़कन या नब्ज की गति (चाल) एक मिनट में १० बार बढ़ गई। पाठकों को यह जानना चाहिए कि दिल की धड़कन का मतलब है दिल से खून का फेंका जाना। यही खून सारे शरीर में जाता है। एक धड़कन में दिल लगभग आधी छटाँक खून फेंकता है। इस हिसाब से टहलते समय जो १० धड़कन और बढ़ जाती है उससे पाँच छटाँक ज्यादा खून शरीर में जाता है। अगर कोई आदमी एक घंटा टहले तो इसका मतलब है कि उसके शरीर का रक्त-संचार ६०×५=३०० छटाँक=लगभग १९ सेर ज्यादा खून के कारण तेज हो जाता है। यह एक बहुत बड़ा लाभ है। कसरत से थोड़ी ही देर में यह लाभ हो सकता है, लेकिन कसरत करते समय इस काम में दिल पर ज्यादा जोर पड़ता है। टहलते समय भी यह जोर पड़ता है लेकिन उतना नहीं। फिर टहलते समय

नाकों के रास्ते ज्यादा हवा फेफड़े में पहुँचती है, जिससे ज्यादा मात्रा में ऑक्सीजन खून के अन्दर जाकर खून को शुद्ध करता है। इस तरह दो काम—खून का साफ होना और उसका तेजी से शरीर भर में दौड़ना—एक ही साथ होते हैं।

ऊपर बताये फायदे के अलावा तेजी से टहलने में शरीर से काफी पसीना भी निकलता है, जिसका मतलब है कि शरीर का विकार निकल गया। साथ ही खुले मैदान में घूमते समय जो प्राकृतिक सुन्दरता देखने को मिलती है उसका असर दिलो-दिमाग पर बहुत अच्छा पड़ता है।

कुछ लोग कहते हैं कि टहलने में मांसपेशियों (muscles) *की कसरत नहीं होती। ऐसा समझना भूल है। टहलते समय* सिर से लेकर पाँव तक की ७०० मांसपेशियों की हल्की-हल्की स्वाभाविक कसरत हो जाती है।

टहलने से पूरा फायदा उठाने के लिए नीचे लिखी बातों पर ध्यान दीजिए :—

(१) टहलना हर रोज नियमित-रूप से जारी रहे।

(२) ऐसी खुली जगह में टहलना चाहिए, जहाँ साफ हवा मिल सके।

(३) टहलने का फासला (दूरी) धीरे धीरे बढ़ाना चाहिए, एक-ब-एक बहुत थकान न हो। एक साधारण तनदुरुस्ती वाले को कम से कम ४-५ मील हर रोज टहलना चाहिए।

(४) टहलते समय हल्के और आराम देने वाले कपड़े हों।

जाड़ों में भी बहुत भारी लबादा पहनने की जरूरत नहीं, क्योंकि तेजी से टहलते समय तो बदन में गर्मी आ ही जाती है। जूते भी ऐसे हों कि चलने में कठिनाई न हो। अगर जमीन पथरीली या बहुत कड़ी नहीं है तो नंगे पाँव चलने में ज्यादा फायदा है। पृथ्वी से पैरों के जरिए शरीर को बहुत फायदे की चीजें मिलती हैं।

(५) काफी तेजी से टहलना चाहिए, जिससे शरीर में हरकत हो।

(६) टहलते समय बदन सीधा और कुछ आगे को झुकता हुआ रहे। चेहरा सामने रहे लेकिन तना हुआ न हो।

(७) नाकों से गहरी साँस लेनी चाहिए।

(८) टहलते समय चिन्ताओं को दूर रखिए। ऐसा न हो कि उसी समय अपनी सारी समस्याओं और कठिनाइयों के हल करने में आप लग जांय।

(९) अगर अकेले टहलने में तबियत ऊबती हो तो अपने मन का एक साथी ढूँढ़िए और उसको अपने संग ले जाइए। ऐसा न हो कि एक गपोड़-मंडल के सदस्य बनकर आप टहलने जायँ।

थोड़े ही अभ्यास से अकेले टहलने की आदत पड़ जाती है और उसी में आनन्द आने लगता है।

(१०) टहलने के बाद, अगर पसीना निकला हो तो बन्द कमरे में सारे बदन को गीले कपड़े से पोंछ दीजिए। अगर बदन में अच्छी ताकत है और गर्मी के दिन हों तो बंद कमरे में नहा लीजिए।

लेखक ने कितने रोगियों को भोजन-सुधार के साथ-साथ टहला-टहला कर भला-चंगा किया है।

कसरत—

जैसा कि ऊपर बताया गया है, जिस आदमी के साधारण बल भी है उसे टहलने के साथ साथ कसरत भी करनी चाहिए। कसरतें बहुत तरह की हैं पर सभी कसरतें सब के लिए ठीक नहीं हैं। इसलिए अपनी शक्ति के लायक कसरतों को ही करना चाहिए। आजकल हठयोग की भी बहुत सी कसरतें चली हैं। उन्हें आसन कहते हैं। आसनों से बहुत लाभ होता है, खासकर अगर वे प्राकृतिक जीवन के अंग बनाये जायँ तो, लेकिन बिना किसी अच्छे जानकार की सलाह लिये आसन नहीं शुरू करना चाहिए। इन दिनों आसन सिखाने वाले बहुतेरे हो गये हैं, पर इनमें से बहुत से उस विषय को अच्छी तरह नहीं जानते।

जो कसरतें यहाँ बताई जा रही हैं वे सीधी-सादी हैं। इन्हें हर कोई कर सकता है। इन कसरतों के सहारे कोई पहलवान नहीं बन सकता, पर वह तनदुरुस्त ज़रूर रहेगा। शरीर के अन्दर के कल-पुर्ज़ों को इन कसरतों से बहुत मदद मिलेगी और वे अपना अपना काम अच्छी तरह कर सकेंगे।

कसरतों से फायदा उठाने के लिए ज़रूरी है कि वे हर रोज़ और बँधे समय पर ही की जाँय। किसी किसी को हर रोज़ एक ही तरह की कसरतों में तबियत नहीं लगती या उनके लिए फ़ुर्सत नहीं मिलती। ऐसों को एक रोज़ अपनी शक्ति भर तेज़ी से टह-

बर्नर मेकफेडन

न्यू-यार्क (अमरीका)-निवासी। शारीरिक योग्यता के सिद्धान्तों के उत्साही प्रवर्त्तक और प्राकृतिक चिकित्सक

लना और दूसरे दिन कसरत करनी चाहिए। इससे भी बहुत फायदा होगा, लेकिन इसमें नाग़ा न हो।

कसरतों के सम्बन्ध में नीचे दी हुई बातों पर ध्यान दीजिए :—

(१) खाने के बाद ही कसरत नहीं करनी चाहिए। कम से कम ढाई घंटे का अन्तर देना जरूरी है।

(२) सुबह या शाम में से कोई भी समय कसरत के लिए अच्छा है। जो टहलता है और कसरत भी करता है उसे सुबह में कसरत करनी चाहिए और शाम को टहलना, लेकिन अगर सुबह को ही टहला जाय और शाम को कसरत की जाय तो भी कोई हर्ज नहीं।

(३) कसरत के बाद ही खाना या पानी पीना न चाहिए। कम से कम आध घंटे का अन्तर दीजिए।

(४) कसरत, जहाँ तक हो सके, खुले मैदान या खुले कमरे में और बिना कपड़ा पहने या बहुत हल्का और ढीला कपड़ा पहनकर, करना चाहिए।

(५) हर दो तरह की कसरतों के बीच में तीन-चार बार गहरी साँस लेनी चाहिए।

(६) कसरत करते समय अगर पसीना निकल आया हो तो कसरत खत्म करने के बाद बंद कमरे में गीले कपड़े से बदन को अच्छी तरह पोंछ लेना या अगर ताकत हो तो नहा लेना चाहिए।

अगर कसरत करने वाला कमजोर है तो उसे बदन को गीले कपड़े से सिर्फ पोंछकर कपड़ा पहन लेना चाहिए।

(७) कसरत की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाई जाय, पहले ही थकान न हो जाय।

(८) अगर सिर में चक्कर रहता हो या ऐसी ही कोई और तकलीफ हो तो कसरत करने के बदले टहलना ही अच्छा है।

अब कुछ आसान, लेकिन बहुत फायदेमंद, कसरतें बताई जाती हैं।
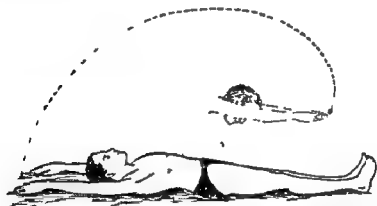
(१) पीठ के बल लेटकर सिर के अगल-बगल में फैले हुए हाथों को धीरे-धीरे सिर के ऊपर से लाकर अँगूठों को छूना और फिर वापस ले जाना। पहले-पहल एक या दो बार काफी है। धीरे-धीरे संख्या बढ़ाइए। घुटने न मुड़ें और हाथों के ऊपर आते समय पैर न उठें।

कुछ दिनों के बाद कोशिश कीजिए कि सिर हाथों के साथ साथ उठे और आगे को झुके।
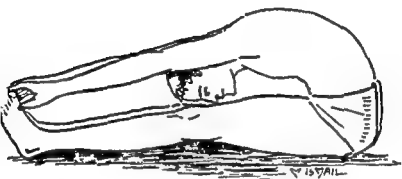
(२) कोशिश कीजिए कि इसी ऊपर वाली कसरत में सिर घुटनों को छू ले। समय लगेगा, लेकिन जब ऐसा होने लगेगा तो यही कसरत *पश्चिमोत्तान आसन* हो जायगी।

इन दोनों से पेट, हाथ, सीना और रीढ़ की मांसपेशियाँ ठीक और मज़बूत होती हैं, क़ब्ज़ दूर होता है; मुटापा घटता है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि दुबले लोग इसे न करें।

(३) सीधे खड़े होकर हाथों को सिर के अगल-बग़ल ऊपर से नीचे लाना और अँगूठा छूना और फिर ऊपर ले जाना।

कोशिश कीजिए कि सिर हाथों के साथ नीचे आवे।

फिर कोशिश कीजिए कि सिर घुटनों को छू ले।

फिर अँगूठों को छूने के बदले तलहथियों को जमीन पर रखने की कोशिश कीजिए। घुटने किसी भी हालत में न मुड़ें। इस कसरत को दो बार से ही शुरू करना चाहिए।

इससे सिर से पैर तक की मांसपेशियाँ पुष्ट होती हैं।

ऊपर की तीनों कसरतों से पेट और पेड़ू के अन्दर के कल-पुर्जे ठीक रहते हैं और रीढ़ भी, जिसके अन्दर स्नायु का मुख्य तार है, ठीक रहती है।

(४) पीठ के बल लेट कर तने पैरों को एक साथ धीरे-धीरे ऊपर ले जाना और फिर नीचे वापस लाना। एक या दो बार से शुरू कीजिए।
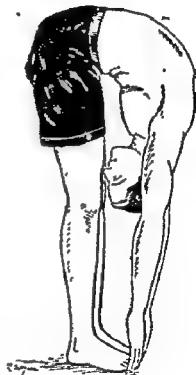
इसको सख्त बनाने के लिए हाथों को नीचे धड़ के पास आराम से रखकर पैरों को बहुत धीरे-धीरे ऊपर ले जाते हुए ३०, ६० और ९० डिग्री के कोनों (angles) पर एक-एक या दो-दो

सेकंड के लिए रोकिए और फिर वापस लाते समय उन्हीं कोनों पर रोक-रोक कर वापस लाइए। घुटने तने और सीधे रहें।
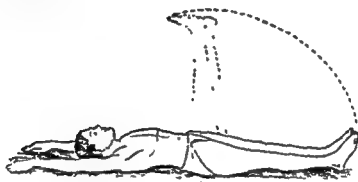
इस कसरत से पेट, रीढ़ का निचला हिस्सा और टाँगों की कसरत होती है। इससे कब्ज दूर होता है।

(५) इसी ऊपर वाली कसरत में अगर पैरों को ऊपर ९० डिग्री के कोण पर ले जाने के बाद ही उन्हें इस तरह और भी ऊपर उठाया जाय कि कमर से नीचे का हिस्सा भी आगे तस्वीर में दिखाये गये की तरह पूरी सीध में हो जाय, सिर्फ सिर और कंधे जमीन पर रहें, हाथों की तलहथियों से कमर के पास टेक लगाई जाय और ठुड्डी (ठोढ़ी) सीने को छू ले तो यही कसरत *सर्वांगासन* हो जाती है। पैरों को ऊपर ले जाने या वापस लाने के समय झटका न दीजिए। धीरे-धीरे ऊपर से पीछे ले जाइए और फिर नीचे लाइए। नीचे लाते समय टांगें धड़ से जमीन पर आ जाती हैं, ऐसा न होना
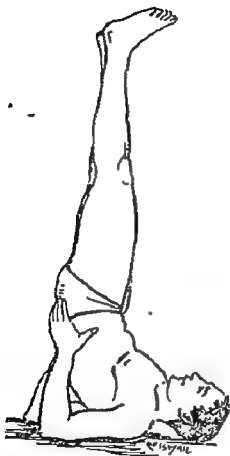
चाहिए। पैरों को
की तरफ़ आगे झु
हुए धीरे-धीरे न
लाना सीखिए। पह
पहल पैरों को १ से
मिनट तक ही रोकि
फिर बहुत धीरे-धी
समय बढ़ाकर
मिनट तक उसी हाल
में रख सकते हैं।

सर्वांगासन के बहु
फ़ायदे हैं। इसं
स्नायविक बल (ner
vous strength)
मिलता है, भूख तेज़
होती है, क़ब्ज़ दूर
होता है और लगातार
करते रहने से शरीर
नया हो सकता है। लेकिन पहले दिन से ही इसे न करने लगिए।

(६) बारह इंच के फ़ासले पैर दोनों पैरों को रखते हुए सीधे खड़े हो जाइए और दोनों हाथों को कंधों के बराबर अपने

सामने लाइए। अब उनको जितना भी बन सके दाहिनी ओर ले जाइए और सामने वापस लाइए। कोहनी न मुड़ें। आखिरी बार एक झटके के साथ दाहिनी ओर ज़रा और ज़्यादा ले जाने की कोशिश कीजिए। पैर अपनी जगह पर रहें। इसी तरह फिर सीधे आकर हाथों को बाईं ओर ले जाइए और आखिरी बार झटके के साथ ज़रा और ज़्यादा उधर ले जाने की कोशिश कीजिए। पहले चार बार से शुरू करके पन्द्रह बार तक कर सकते हैं।
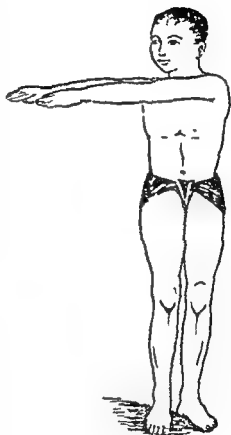
इससे ऊपरी रीढ़ के अगल-बगल, कन्धों और ऊपरी बाँह की मांसपेशियाँ मजबूत होंगी।

(७) एड़ियों को मिलाते हुए सीधे-खड़े होइए। दोनों हाथों को कंधों के बराबर अगल-बगल में कंधों की ही सीध में रखिए। अब बायें हाथ को नीचे बायें घुटने तक लाइए और दाहिने हाथ को ऊपर ले जाइए। फिर सीधे खड़े हो और हाथों को कंधों की सीध में लाकर दाहिने हाथ को नीचे दाहिने घुटने तक लाइए और बायें हाथ को ऊपर ले जाइए। इस कसरत को तीन बार से शुरू करके पन्द्रह बार तक कर सकते हैं।

इससे कमर के आस-पास की मांसपेशियों और हाथ पर ज़ोर पड़ेगा। साथ ही रीढ़ भी तनेगी और मज़बूत होगी।

(८) हाथों को ऊपर फैलाते हुए सीधे खड़े होइए। सामने झुकिए और फिर हाथों को ऊपर-ऊपर गोलाकार में ले जाकर धड़ को जहाँ तक बन सके पीछे झुकाइए। फिर वापस ले जाइए। पहले-पहल दो बार से ही शुरू कीजिए।
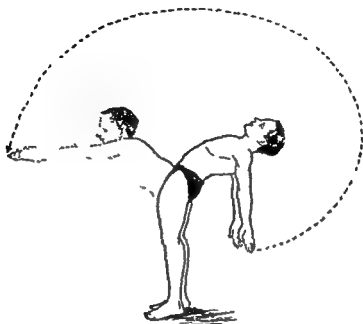
इससे रीढ़, सीना कमर और पेड़ू की मांस-पेशियाँ मजबूत होती हैं।

इतनी कसरतों से शरीर के अन्दर के कल-पुर्जे ठीक रहेंगे और शरीर भी सुडौल रहेगा। लेकिन अगर तीन कसरतें और भी कर ली जाँय तो अच्छा है। वे नीचे दी जाती हैं :—

(१) आराम से सीधे खड़े हो जाइए। पहले दाहिने हाथ की मुट्ठी बांधकर उसको सख्त करते जाइए और साथ ही कोहनी को मोड़ते हुए मुट्ठी को बहुत धीरे-धीरे कंधे की तरफ लाइए। फिर मुट्ठी को सख्त करते जाइए और वापस ले जाकर हाथ को

बिल्कुल सीधा कर दीजिए। शुरू शुरू में एक-दो बार दाहिने हाथ से इस तरह कर फिर उतनी ही बार बायें हाथ की मुट्ठी

बांध कर बहुत धीरे धीरे बायें कंधे को छूइए। इसमें जैसे-जैसे हाथ ऊपर जाय या नीचे आवे वैसे ही वैसे मुट्ठी को सख्त और उससे भी ज्यादा सख्त करने की कोशिश कीजिए और हाथ को बहुत धीरे-धीरे ऊपर या नीचे लाइए। हाथ कँपते हुए ऊपर या नीचे जायँगे। पहले एक या दो बार से शुरू कर दस-बारह बार तक ले जाना चाहिए। इस कसरत से हाथ मजबूत होंगे और बाँह की मासपेशियाँ बनेंगी।

(१०) इसी तरह एक और कसरत से पैरों को भी मजबूत किया जा सकता है, लेकिन उम्मेद की जाती है कि कसरत के

साथसाथ टहलना भी जारी रहेगा और टहलने से पैर मजबूत होंगे ही। फिर भी अगर इच्छा हो तो पैरों की कसरत इस तरह

कीजिए। खड़े होकर आराम से हाथों को कमर पर रखिए। फिर

बायें पैर पर खड़े होकर दाहिने पैर को सीधा सामने ले जाइए और सामने से वापस लाकर जहाँ तक हो सके सीधा पीछे ले जाइए। ६-७ बार इस तरह करके दाहिने पैर पर खड़े हो जाइये और बायें पैर को उतनी ही बार आगे-पीछे ले जाइए। धीरे-धीरे कसरतों की संख्या बढ़ाइए।

(११) गर्दन की कसरत भी जरूरी है, क्योंकि गर्दन से होकर बहुत से जरूरी स्नायु सिर से आते और वापस जाते हैं।

तस्वीर में बताये गये की तरह सिर को (अ) ऊपर-नीचे और (ब) दायें-बायें ले जाइए। शुरू-शुरू में दस-दस बार, या इससे भी कम, हरकतें काफी हैं, फिर धीरे-धीरे बढ़ाकर चालीस-चालीस बार तक हर एक को कर सकते हैं।

कब्ज़ दूर करने की खास कसरत—

अगर जोरदार कब्ज़ की शिकायत रहती हो तो आँख खुलते ही बिस्तर पर लेटे-लेटे यह कसरत कीजिए। शरीर को सिर्फ सिर, कंधे और पैरों के सहारे बिस्तर पर रखते हुए कमर के

ऊपर-नीचे के हिस्सों को काफ़ी ऊपर उठाकर पहले दाहिनी ओर फिर बाईं तरफ़ लगातार १०-१० बार ले जाइए। इसके बाद आराम कीजिए और पेट और पेडू की मालिश इस तरह कीजिए। जहाँ पर छोटी आँत बड़ी आँत से मिलती है वहाँ से हाथ ले जाकर पसली तक लाइए। फिर सीधे बाईं तरफ़ ले जाकर नीचे लाइए। भोजन-प्रणाली की तस्वीर को देखकर बड़ी आँत वाली सारी जगह की हल्की-हल्की लेकिन मज़बूती के साथ मालिश कीजिए। ४-५ बार कमर को उठा उठाकर दांयें बांयें जाइए और बीच बीच में मालिश कीजिए।

ऊपर बताया गया है कि इन कसरतों को थोड़े-थोड़े से ही शुरू करना चाहिए। जो कमज़ोर हैं उन्हें चाहिए कि वे दो दिनों में इन कसरतों को पूरा करें, यानी ५-६ कसरत आज करें और दूसरी ५-६ कसरत कल करें।

इन कसरतों में दो आसन भी बताये गये हैं। ये दोनों ही बहुत फ़ायदेमन्द हैं, लेकिन इनको धीरे-धीरे सीखना चाहिए। जब ये आ जाँय या अगर पहले से ही आते हों तो और सब कसरतों को करके १० मिनट का अन्तर देकर इन आसनों को अलग से ही करना चाहिए। या सुबह में या शाम को इन दो आसनों को करके टहलने जाना चाहिए और दूसरे समय और सब कसरतें करनी चाहिए।

याद रखिए—भोजन-सुधार और कसरत, बस यही दो चीज़ें शरीर को अच्छी हालत में रख सकती हैं।

औरतों के लिए कसरत—

ऊपर बताई कसरत औरतें भी कर सकती हैं, लेकिन उनके लिए और भी कसरतें आगे बताई जायँगी।

आराम

शरीर को ठीक रखने के लिए आराम भी बहुत जरूरी है। आराम का मतलब काहिल बनकर लेटे रहना नहीं है बल्कि आराम का मतलब काम और मेहनत के खिंचाव के बाद शरीर को बिल्कुल ढीला करना और छुट्टी देना है। खिंचाव की हालत में बने रहने से शरीर जल्दी ही घिस जायगा। आराम सब के लिए जरूरी है, लेकिन पुराने रोग के रोगियों के लिये यह एक खास दवा है।

सच्चा आराम सोने के ही समय मिलता है। उसी समय शरीर का खिंचाव बिल्कुल ढीला हो जाता है और दिन भर के काम से टूटे-फूटे कल-पुर्जों की मरम्मत होती है। लेकिन हम लोग सोना नहीं जानते। हम में से बहुत से सोते नहीं, गाफिल और बे-होश होकर पड़े रहते हैं। सोने की हालत में भी हम लोग खिंचे और तने रहते हैं। हम लोगों में कुछ ऐसी अ-स्वाभाविकता आ गई है कि हमारे बहुत से अंग ऐंठे और कड़े रहते हैं, जिससे पूरा-पूरा आराम नहीं मिल पाता। जरा बच्चों का सोना देखिए। उनके अंग अंग ढीले होकर 'लोथा-पोथा' से हो जाते हैं और उनके बदन की छाप बिस्तर पर पड़ जाती है। हम लोगों को भी इसी तरह

ोना चाहिए, और अगर हम उसे भूल गये हैं तो फिर से ीखना चाहिए।

सोने के संबंध में कुछ बातों को याद रखना चाहिए--

(१) खाने के तुरन्त बाद ही सोना ठीक नहीं है। कम से कम दो घंटे का अन्तर देना जरूरी है। अगर ज्यादा देर का अन्तर हो तो और अच्छा है।

(२) सोने से पहले पेशाब कर लेना चाहिए।

(३) बिस्तर न बहुत कड़ा हो और न बहुत मुलायम।

(४) खाट तनी हो। अगर तख़्त (चौकी) हो तो अच्छा है। तख़्त पर रीढ़ अच्छी हालत में रहती है।

(५) बिस्तर साफ़ हो और बदन पर या तो कुछ कपड़े न हों, और अगर हों तो बहुत ढीले और साफ़ हों।

(६) जाड़ों में रजाई और कम्बल साफ़ हों। मुँह ढका न हो।

(७) दाहिनी करवट लेटकर सोना चाहिए। दाहिनी करवट लेटकर बायें पैर को दाहिने पैर के पार आगे को रखिए और दाहिने हाथ को बायें कन्धे पर रखिए, फिर आराम से बदन को ढीला करके सोइए। बदन इतना ढीला हो जाय कि उसके किसी अंग में तनाव या सख़्ती न रहे। पैर से लेकर सिर तक हरेक अंग के बारे में सोच जाइए कि वह ढीला हो रहा है और फिर सिर से लेकर पैर की तरफ़ के अंगों के बारे में सोचने लगिए। उम्मेद है कि पैर तक आने के पहले ही आप को सुख की नींद आ जायगी।

बाईं करवट न सोना चाहिए, क्योंकि उससे पेट के अन्दर की थैली और दिल, जो दोनों बाईं तरफ रहते हैं, दबे रहते हैं। चित तो सोना ही न चाहिए।

(८) सोते समय किसी तरह की चिन्ता मन में न रहे। परमात्मा का ध्यान करते हुए या किसी अच्छे विषय को सोचते हुए सो जाइए।

(९) छः से आठ घंटे सोना जरूरी है, लेकिन किसी किसी को इससे कम समय में ही पूरा आराम मिल जाता है।

(१०) जितना सबेर हो सके सो जाइए और जितना सबेर हो सके उठ जाइए और पाखाना जाने, मुँह हाथ धोने, कसरत करने और नहाने इत्यादि के काम में लग जाइए। १२ बजे रात के पहले एक घंटे की नींद १२ बजे के बाद दो घंटे की नींद के बराबर है।

सिर्फ सोने में ही नहीं, हम लोग और बातों में भी बेकार खिंचे तने रहते हैं। लिखते समय हम लोग हाथों से जरूरत से ज्यादा जोर लगाते हैं और सिर्फ हाथों को ही नहीं तनते—मुँह, नाक भी बनाये और खींचे रहते हैं और दूसरे अंगों को भी टेढ़ा मेढ़ा किये रहते हैं। कुर्सी पर बैठते समय हम लोग इस तरह बैठते हैं मानो कुर्सी को जोर से पकड़े हुए हों। कहने की जरूरत नहीं कि ये सभी हरकतें खराब और नुकसानदेह (हानिकर) हैं, क्योंकि इनमें बेकार ताकत खर्च होती है। इसी तरह बैठ कर पैरों को हिलाते रहना, सिर को बेकार इधर से उधर करना इत्यादि खराब हरकतें हैं।

काम के समय जितना ज़ोर ज़रूरी हो लगाइए, लेकिन जब काम न हो तो बेकार ताकत और उसके साथ जीवन-शक्ति का ह्रास न कीजिए।

इस बीसवीं सदी में हम लोग बराबर ही—चलते-फिरते, खाते-पीते, उठते-बैठते, लिखते-पढ़ते, बोलते-सुनते, सोते-जागते, बराबर ही—तनाव की हालत में रहते हैं। कहीं जाना होता है या रेल-गाड़ी पर चढ़ना होता है या और कोई काम करना होता है तो दो घंटे पहले से ही हम तनाव की हालत में हो जाते हैं। इस हालत में यह ज़रूरी है कि शरीर को जब कभी ढीला करके आराम दे दिया जाय। चालीस साल की उम्र पार करने के बाद यह आराम ज़रूरी हो जाता है। दिन में एक या दो बार आराम से पीठ के बल लेट जाइए और फिर चोटी से लेकर तलवे तक अंग-अंग को ढीला कर दीजिए और आँखों को बन्द कर के शांत हो जाइए। पाँच मिनट के ही ऐसे अभ्यास से तबियत ताज़ी हो जायगी और शरीर अच्छी हालत में हो जायगा। बैठे बैठे भी यह अभ्यास किया जा सकता है, पर लेट कर करना ज्यादा अच्छा है।

आराम पर पूरा ध्यान देना चाहिए, तभी कसरत और मेह-नत बन सकेंगी। साथ ही यह भी सच है कि जो कसरत और मेहनत करता है उसे काफ़ी आराम भी चाहिए।

मन को ठीक रखना

मन को ठीक रखना

आदमी शरीर नहीं है—

मालूम नहीं कि कितने आदमी इस बात को समझते होंगे कि वे सिर्फ शरीर ही नहीं है। अगर हम किसी को देखते हैं तो समझते हैं कि उसका ऊपरी शरीर, जिसे हम देख सकते हैं, वह आदमी है। लेकिन सच्ची बात यह है कि शरीर आदमी की सिर्फ ऊपरी, बाहरी, पोशाक है। आदमी तो परमात्मा का अंश जीवात्मा है, वह 'चेतन, अ-मल, सहज सुख-राशी' है, और उसके काम के लिए एक ही पोशाक नहीं, सिर्फ मिट्टी, पानी, आग, हवा और आकाश तत्व का बना हुआ यह *स्थूल शरीर* ही नहीं, बल्कि और भी पोशाक, और भी शरीर हैं, जिन्हें हम इन आँखों से नहीं देख सकते। इन पोशाकों—शरीरों—में दो शरीर ऐसे हैं, जो आदमी के बड़े काम के हैं। इनमें से एक *भाव* का शरीर है और दूसरा *विचार* का। *भाव* प्रेम, घृणा (नफ़रत), ईर्ष्या (डाह), क्रोध (गुस्सा) इत्यादि को कहते हैं। *विचार* वह है जिसके सहारे हम सोचते हैं, अच्छी या बुरी बातों के लिए उपाय रचते हैं और गहरी से गहरी ज्ञान और विज्ञान की बातों का पता लगाते हैं। भाव विचार से अलग हैं। भाव किसी चीज के लिए इच्छा पैदा करता है और विचार उस चीज के पाने की तरकीब (उपाय)

ढूंढ निकालता है। भाव के कारण दूसरों की मदद करने की इच्छा होती है और तब विचार के सहारे धर्मशाले, अनाथालय, विद्यालय इत्यादि बनते हैं। फिर भाव के ही कारण दूसरों को सम्पत्ति छीन लेने की इच्छा होती है और तब उसकी पूर्त्ति के लिए विचार के सहारे घोर से घोर युद्ध होते हैं, जिनमें लाखों-करोड़ों जानें जाती हैं। इस तरह इस संसार में रहने और काम करने के लिए असल आदमी—जीवात्मा—के पास मामूली तौर से तीन शरीर हैं—(१) स्थूल शरीर, (२) भाव शरीर और (३) विचार शरीर। इसके अलावा और पोशाकें—शरीर—भी हैं, पर उनसे यहां कुछ मतलब नहीं।

आदमी मालिक है और यह तीनों शरीर उसके नौकर हैं। अगर नौकर मालिक के हुक्म में रहें तब तो ठीक है, लेकिन अगर मालिक ही नौकरों के हुक्म और बहकाने में रहे तो बड़ी गड़बड़ी पैदा हो। हम में से बहुत से इन नौकरों के बहकाने में रहते हैं और इसी से दुख भोगते हैं। इसकी एक मोटी मिसाल यह है कि हम अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिए सभी तरह की चीजें खा बैठते हैं और बहुत तरह से प्रकृति के नियमों को तोड़ते हैं, जिसका नतीजा यह होता है कि हम तरह तरह की बीमारियों के शिकार बनते हैं। इसलिए इन नौकरों को वश में रखना चाहिए।

इन तीनों शरीरों के बारे में बहुत सी जानने की बातें हैं, पर यहां सिर्फ इतना ही जानना जरूरी है कि भाव बहकाता है,

विचार उपाय बताता है और इन दोनों के फेर में पड़कर स्थूल शरीर अनुचित काम करता है, जिससे विचारा सच्चा मालिक—जीवात्मा, आदमी—बंधन में पड़ जाता है। अगर आदमी अपने को जाने और याद रखे कि मैं जीवात्मा हूँ और इन तीनों का मालिक हूँ तो वह धोखे में नहीं पड़ सकता। अब जो बातें यहाँ बताई जायँगी उनमें तीनों शरीर के अलग अलग नाम न लिये जाकर सिर्फ *शरीर*, जिसका मतलब स्थूल शरीर है, और *मन* जिसका आशय *भाव* और *विचार* दोनों से रहेगा, कहे जायँगे।

रोग का सच्चा कारण—

इस किताब में बताया गया है कि रोग का कारण *विकार* है, लेकिन अगर सच पूछिये तो रोग का सच्चा कारण *शरीर का विकार* नहीं *मन का विकार* है। मन के विकार से ही ऐसी ऐसी बातें होती हैं कि शरीर में विकार आ जाता है। इसलिए अगर कोई बीमारी से छुटकारा पाकर तन्दुरुस्त होना चाहता है तो उसे अपने मन को ठीक करना चाहिए।

सच्चा चिकित्सक—

इस किताब में यह भी बताया गया है कि रोग को, खासकर पुराने रोगों (chronic diseases) को, दूर करने के लिए सिर्फ रोग के लक्षण या रोग की जगह का ही इलाज नहीं बल्कि सारे शरीर का इलाज करना चाहिए। अब बताया जाता है कि रोग को दूर करने के लिए सिर्फ शरीर का ही नहीं बल्कि शरीर और मन दोनों

का इलाज करना चाहिए। सच्चा चिकित्सक वही है, जो सिर्फ लक्षणों को नहीं, सिर्फ खास-खास अंगों को नहीं, सिर्फ सारे शरीर को ही नहीं, बल्कि शरीर और मन, दोनों को देखकर अर्थात् पूरे मनुष्य को जानकर, अपनी चिकित्सा-विधि ठीक करता है। पुराने रोगों में, जिसमें रोगी सभी तरह कमजोर पड़ जाता है, इसकी खास जरूरत पड़ती है।

शरीर और मन—

शरीर का मन से गहरा संबंध है। शरीर मन की ही प्रेरणा से रहता है। मन के विचारों का असर उसी समय शरीर पर पड़ता है। जानने वाले बताते हैं कि 'डर' का असर खून के दौरान (रक्त-संचार) पर वैसा ही पडता है जैसा पानी पर बहुत ज्यादा ठंड का। जिस तरह बहुत ठंड से पानी जम जाता है उसी तरह डर से खून जम जाता है और शरीर के अन्दर उसका आना-जाना ठीक ठीक नहीं होता। इसी तरह क्रोध से शरीर में ऐसी गर्मी दाह पैदा होती है कि शरीर उससे अन्दर ही अन्दर जल-भुलस सा जाता है। क्रोध के कारण दिल की धड़कन बंद हो सकती है और आदमी मर भी सकता है। बात यह है कि मन और शरीर एक ही ढांचे के दो हिस्से हैं और दोनों का असर एक दूसरे पर पडता है। ज्यादातर पहले मन के ही असर से शरीर में खराबी आती है और फिर शरीर की खराबी से मन की खराबी पैदा होती है और फिर मन की खराबी से शरीर खराब होता है। इस तरह यह अटूट चक्कर भी बना रहता है। एक जानने वाले

ने बताया है कि मन की खराबी के कारण नीचे लिखी बीमारियाँ होती हैं :—

(१) दिल की बीमारियाँ

(२) सांस की बीमारियाँ

(३) हाज्मे (पाचन) से संबंध रखने वाली बीमारियाँ

कुछ मन के विकार—

मन के विकारों की सूची देने की जरूरत नहीं। काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, मात्सर्य के अन्दर सभी तरह के विकार आ जाते हैं और हम लोग इनको अच्छी तरह जानते भी हैं। डर और क्रोध के बारे में ऊपर बताया जा चुका है कि उनसे कैसी खराबी होती है। यहाँ पर सिर्फ दो-चार तरह के विकारों का और जिक्र किया जायगा।

एक विकार है *अपने आप पर तर्स खाना*—अपनी हालत को बहुत ही गया-बीता समझना, ऐसा समझना कि हम बहुत सताये गये हैं, दुखी हैं। यह विकार मन का क्षयी रोग (यक्ष्मा, phthisis) है और इसका शरीर पर बुरा असर पड़ता है।

बराबर *चिन्ता* करते रहना दूसरा विकार है। चिन्ता का मतलब किसी उपाय को सोच निकालना नहीं है। चिन्ता का मतलब यों ही उधेड़-बुन में पड़े रहना और बिना किसी निश्चय (पक्की बात) पर पहुँचे हुए दिमाग खखोरना है। यह मन की घुन है। चिन्ता करने वाले का मन खोखला सा बना रहता है।

मन का मन से खराब विकार है अपनी तै की हुई (निश्चित) बात पर अमल न करना—जैसे, मैंने ठीक किया कि मैं हर रोज कसरत करूँगा पर मैं कसरत नहीं करता। अपने सिद्धान्तों को अपने जीवन का अंग नहीं बनाना मानसिक अपच (mental dyspepsia) या ज्ञान का अजीर्ण है। जो आदमी अपनी तै की हुई बात पर अमल नहीं करता उसे शारीरिक अपच जरूर रहेगा।

इसी तरह सभी विकारों के बारे में कुछ न कुछ कहा जा सकता है और मनों का बुरा प्रभाव शरीर पर पड़ता है।

मन को कैसे ठीक किया जाय—

ठीक उसी तरह जिस तरह शरीर को ठीक किया जाता है। अचूक चिकित्सा की विधि के अनुसार हम रोगों को दूर करने के लिए रोगों से नहीं लड़ते बल्कि शरीर को शुद्ध और सबल करते हैं, जिससे रोग खुद ही अलग हो जाता है। मन को ठीक करने के लिए भी हमें विकारों से लड़ना न चाहिए, बल्कि अपनी असलियत और बड़प्पन को याद करना और याद रखना चाहिए, जिससे मन स्वय ही काबू में रहने लगे। जब हम यह भूल जाते हैं कि हम जीवात्मा हैं, महान हैं, और शरीर और मन न होते हुए दोनों के मालिक हैं, तभी मन बदमाशी करता है और अपने साथ-साथ शरीर को भी बिगाड़ता है। अगर अपनी सच्चाई और यह कि 'हम कौन हैं' बराबर याद रहे तो शरीर और मन दोनों ही हुक्म मानने वाले नौकर की तरह काम करेंगे।

स्टेनली लीफ

इन दिनों इंगलैंड के एक प्रमुख प्राकृतिक चिकित्सक

लेकिन यह याद रखना वैसा आसान नहीं है जैसा कि मालूम होता है। पुरानी आदत के कारण हम अपने को मन का नौकर ही बनाये रखना पसंद करते हैं। फिर भी अपने को बार-बार याद दिलाने से—मन से लड़कर नहीं—हम अपनी असलियत को ठीक-ठीक जान लेंगे, जिससे गड़बड़ी न होगी। इसके वास्ते हर रोज सुबह से उठने के तुरन्त बाद ही और लेटे ही लेटे, रात में सोने से पहिले ही और लेटे लेटे और फिर बीच-बीच में दिन में भी जभी बन सके तभी मन से कहना और समझना चाहिए कि मैं 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखराशी' हूँ। इस आशय का एक बहुत सुंदर श्लोक यों है—

अहं देवो न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्।
सच्चिदानंदरूपोऽहं नित्य मुक्तस्वभाववान ॥

अर्थात्

मैं दिव्य हूँ, दूसरा कुछ नहीं हूँ, मैं ब्रह्म हूँ, दुख-शोक का भुगतनेवाला नहीं हूँ। मैं सच्चिदानन्द का रूप हूँ, और स्वभाव से ही मुक्त हूँ।

इस तरह अपने को बार-बार याद दिलाना जरूरी है। बहुत दिनों तक मन गड़बड़ी करता रह जायगा, लेकिन अगर आदमी तत्परता से अपनी असलियत की याद अपने आपको दिलाता रहेगा तो थोड़े ही दिनों में उसकी जीत जरूर होगी। इस याद के साथ कोशिश करना चाहिए कि अपने दिन के कामों में अपनी तै की हुई बात पर अमल भी किया जाय।

यह तो हुई आदमी की अपनी कोशिश। लेकिन बीमारी की हालत में रोगी अपनी मदद आप करने के लायक नहीं रहता और तब चिकित्सक और सम्बन्धियों का काम है कि वे बीच-बीच में रोगी को समझावें और जिस मन के विकार से उसका रोग सम्बन्ध रखता हो उसकी ओर रोगी का ध्यान होशियारी से खींचते हुए उसके दिल में उत्साह और ताक़त भरें। सची समझ से ही मन का विकार दूर हो सकता है।

जो सच्ची तनदुरुस्ती हासिल करना चाहता है उसे अपने मन को ठीक रखना ही पड़ेगा।

पुराने रोग वालों के लिए—

पुराने रोग वालों के लिए यह बहुत फायदेमंद होगा कि वे रात और सुबह में अपने आप को अपनी असलियत की याद दिलाते हुए यह भी सोचें कि 'अब मैं हर रोज धीरे-धीरे अच्छा होता जा रहा हूँ, सभी तरह तरक्की कर रहा हूँ।' सोचते हुए बहुत दिमाग़ी ताकत नहीं लगानी चाहिए, लेकिन फिर भी ऐसा सोचना चाहिए कि वह दिमाग़ में पैवस्त हो जाय। सोचते सोचते सो जाना चाहिए और आँख खुलने के बाद ही सोचने लग जाना चाहिए। और नियमों के पालन के साथ इसका असर जादू सा होगा।

बच्चों का पालन-पोषण

माँ-बाप का कर्त्तव्य; पैदाइश के बाद बच्चे की देख-रेख; बढ़ते बच्चों का भोजन; हवा, शरीर की सफाई और कपड़े; बच्चों के लिए कसरत; बाल-रोगों की चिकित्सा

माँ-बाप का कर्त्तव्य

बच्चों की तनदुरुस्ती बनाना या बिगाड़ना माता पिता के हा हाथ मे है। माता-पिता यदि चाहे तो बच्चे को निरोग और तगड़ा बना सकते हैं या उसे जन्मभर रोगी और कमजोर बने रहने के लिए भी छोड़ सकते हैं।

यह सच है कि कोई माता-पिता नहीं चाहता कि उसका बच्चा किसी तरह का कष्ट भोगे या निर्जीव सा होकर ससार म रहे, लेकिन नहीं चाहते हुए भी वे अपने ही हाथों सिर्फ अज्ञान के कारण अपने बच्चों को कमजोर और निकम्मा बना देते हैं। बच्चे के लालन-पालन मे वे रोज ही बहुत सी ऐसी बातें करते हैं, जो उसके लिए अच्छा नहीं है और जिनसे बच्चे की तनदुरुस्ती हर रोज खराब होती जाती है। इस तरह माता पिता के अज्ञान का फल विचारा बच्चा जन्म भर भोगता है।

आजकल के अंगरेजी खयाल वाले और रुपये पैसे वाले लोग अपने बच्चो के लिए बहुत खर्च करते हैं और अपनी समझ से उसके पालन-पोषण का बहुत अच्छा प्रबन्ध करते हैं। लेकिन वे बहुत तरह की अप्राकृतिक खाने या पीने की चीजें अंगरेजी दुकानों से खरीद लाते हैं। साथ ही कोई न कोई दवा, जिसे वे बच्चे के लिए हितकर और पुष्टिकारक समझते हैं, पिलाया करते हैं। उसके दूध पिलाने का समय भी अपनी समझ में बहुत अच्छा

निश्चित कर लेते हैं—दिन में घंटे-घंटे या दो-दो घंटे और रात में भी तीन-तीन या चार-चार घंटे पर। इसके अलावा कुछ घरों में किसी न किसी तरह की शराब भी सदा मौजूद रहती है। बच्चे को जहाँ जरा सी सर्दी-जुकाम हुआ कि उसे चम्मच भर ब्रान्डी पिला दी जाती है। इससे काम नहीं चला तो फौरन ही परिवार के डाक्टर (family doctor) बुलवाये जाते हैं। शीशी भर के दवा आती है और उस बिचारे नन्हे से बच्चे का मुँह दबा कर भर भर चम्मच कड़वा कड़वा हलाहल विष पिलाया जाता है। यह सब बातें ये लोग साधारण लोगों के बच्चों से अपने बच्चे को अधिक स्वस्थ बनाने के ख्याल से करते हैं। लेकिन यह बातें उस बच्चे के लिए बिल्कुल उल्टा परिणाम वाली होती हैं। इस तरह अगर साधारण लोग रुपये पैसे की कमी के और अपने अज्ञान के कारण बच्चों के पालन-पोषण में गलतियाँ करते हैं तो बड़े लोग अपने बच्चों को जरा अधिक स्वस्थ और सुन्दर बनाने की कोशिश में ही भूलें करते हैं। यही कारण है कि इन दिनों सैकड़े पांच बच्चे भी मुश्किल से ऐसे देखने में आते हैं जिनके शरीर में किसी प्रकार का रोग न हो और जो पूर्ण रूप से स्वस्थ हों। जिन छोटे छोटे बच्चों का चेहरा खिले फूल की तरह सुन्दर दीखना चाहिए वे अपने ही माता-पिता के अज्ञान के कारण मुर्झाया हुआ और श्री हीन चेहरा लिये फिरते हैं।

प्रत्येक माता-पिता को याद रखना चाहिए कि मनुष्य के स्वस्थ या अस्वस्थ जीवन की नींव बचपन में ही पड़ जाती है।

इसलिए जैसा वे अपने बच्चे को छुटपन में बना देंगे अपने भविष्य जीवन में भी वह वैसा ही रहेगा। अगर बचपन में बच्चा रोगी रहा तो बड़े होने पर उसकी तनदुरुस्ती का सुधरना कठिन ही नहीं असम्भव होता है, और अगर वह बचपन से ही स्वस्थ रहा तो आगे चलकर उसका स्वास्थ्य और भी बन जायगा और रोग होने की सम्भावना बहुत ही कम रहेगी, क्योंकि एक तो उसका शरीर ही स्वस्थ बन जायगा, दूसरे खान-पान तथा रहन-सहन की उसकी ऐसी आदतें रहेंगी कि फिर वह गलत तरीके पर जायगा ही नहीं।

बच्चों के पालन-पोषण में खास कर दो बहुत ही भारी भारी भूलें की जाती हैं, जिनसे कि उनका सारा जीवन ही नष्ट हो जाता है। पहली भूल उनके खिलाने-पिलाने में और दूसरी उनकी बीमारियों के इलाज में होती है। गलत तरीके से खिला-पिला कर बच्चे के अन्दर रोग पैदा करना माता का ही काम है और उस रोग को हटाने की कोशिश में आज कल के प्रचलित दोष-पूर्ण इलाजों द्वारा बच्चे के जीवन को और भी दुखमय बनाना पिता या माता या दोनों का काम रहता है। बच्चों के पालने में सब से अधिक उनके खाने-पीने पर ध्यान देना चाहिए। सभी प्रकार के रोगों से बचाव का उपाय केवल खान-पान का ठीक रखना ही है। अगर इस बात पर ध्यान दिया जाय तो बच्चों को कभी रोग होवे ही नहीं, और यदि बच्चे किसी कारण थोड़ा अस्वस्थ हो भी जायँ—जैसे सर्दी-जुकाम हो जाय या फोड़ा-फुन्सी निकल

आवे—तो उसे औषधियों से अलग ही रखना चाहिए, क्योंकि, जैसा बताया जा चुका है, औषधियां, खास कर जो जहरों से बनी होती हैं, रोग को दूर नहीं करतीं बल्कि उसे बच्चे के छोटे से कोमल शरीर के एक कोने में दबाकर छोड़ देती हैं। यह दबा हुआ रोग आगे चल कर किसी न किसी रूप में फिर उभड़ पड़ता है। यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि प्राकृतिक जीवन और चिकित्सा-विधि के होते हुए भी लोग उससे लाभ नहीं उठाते। अक्सर ऐसा देखने में आता है कि लोग सालों से प्राकृतिक चिकित्सा के विषय में सुनते आते हैं, उसके गुणों को भी समय समय पर देखते हैं, लेकिन फिर भी उसपर विश्वास नहीं करते। जब रोगी बच्चा या जो कोई भी बीमार होकर किसी दवा से अच्छा नहीं होता, जब रोग असाध्य हो जाता है और रोगी की जीवन-शक्ति प्राय नष्ट हो जाती है तब लोग प्राकृतिक चिकित्सा की शरण में आते हैं। नतीजा यह होता है कि जिसकी जीवन शक्ति नष्ट हो चुकती है वह तो अपने कष्टमय जीवन से छुटकारा पा जाता है, लेकिन जिसमें कुछ दम है वह अच्छा हो जाता है, बहुत समय के बाद।

इस खंड में यही बतलाने की चेष्टा की जायगी कि बच्चों के खिलाने-पिलाने का हिसाब किस प्रकार रखा जाय कि वे निरोग रहें। साथ ही साथ यह भी बतलाया जायगा कि बच्चों की साधारण (common) अस्वस्थता को प्राकृतिक जीवन द्वारा किस तरह निर्मूल किया जा सकता है।

पैदाइश के बाद बच्चे की देख-रेख

जन्म से ही बच्चे के साथ माता-पिता अन्याय करना शुरू करते हैं। सबसे बड़ा अन्याय उसके साथ उसको जल्द जल्द दूध पिलाकर ही किया जाता है। लोगों में यह एक गलत विश्वास प्रचलित है कि छोटा बच्चा एक बार में बहुत थोड़ा दूध पीता है, इसलिए उसे जल्द भूख लग जाती है और जल्द जल्द दूध देने की आवश्यकता रहती है। इस तरह बच्चे को पुष्ट बनाने का एक-मात्र उपाय जल्द जल्द दूध पिलाना ही समझा जाता है। पचने का खयाल बिना किये ही एक एक घंटे, या बहुत हुआ तो दो दो घंटे, के बाद दूध पिलाने का समय निश्चित कर लिया जाता है और उसी के अनुसार बच्चे की भूख की बिना परवाह किये ही दूध पिलाया जाता है। यह एक बड़ी भारी गलती है, जो प्राय. सभी घरों में होती है। इस प्रकार दूध पी पी कर बच्चे का पेट खराब हो जाता है और उसकी नींद में भी बाधा पड़ती है। महीने डेढ़ महीने तक के बच्चे की स्वाभाविक नींद २४ घंटे में २०-२१ घंटे होनी चाहिए। वह दूध पीने के लिए घंटे घंटे या दो दो घंटे बाद स्वय जाग नहीं सकता, लेकिन निश्चित समय पर दूध पिलाना आवश्यक समझ कर उसे गहरी नींद से जगाया जाता है और आवश्यकता नहीं होते हुए भी उसके पेट में दूध भर दिया जाता है।

यह ध्यान देने की बात है कि बच्चा चाहे छोटा हो या बड़ा अपनी आवश्यकता भर दूध पी लेता है और फिर दूध के पचने के लिए कम से कम दो-ढाई घंटे का समय जरूरी है। इसके अलावा पेट को कुछ देर तक आराम देने की भी आवश्यकता होती है। इसलिए तीन साढ़े-तीन घंटे से पहले दूध कभी देना ही न चाहिए। अच्छा हो अगर चार-चार घंटे पर दूध दिया जाय। इसकी आदत शुरू से ही डालनी चाहिए। सोते हुए बच्चे को जगा-कर दूध देना न चाहिए। अगर उसके दूध पिलाने का समय तीन तीन घंटे पर निश्चित कर लिया जायगा और उसकी आदत डाली जायगी तो बच्चा स्वयं ही समय समय पर जग जाया करेगा क्योंकि उस समय उसे सच्ची भूख लगेगी। ज्यों ज्यों बच्चा बड़ा होता जाय उसके दूध पिलाने का समय भी बढ़ाते जाना चाहिए और छः महीने के बाद चार चार घंटे का अन्तर जरूर कर देना चाहिए। ऐसे बच्चे का भोजन अच्छी तरह पचने के लिए और उसकी सच्ची भूख जगने के लिए कम से कम चार घंटे का समय देना बहुत ही आवश्यक है। वह भी बच्चा बिल्कुल स्वस्थ हुआ तो, पर अगर बच्चे का स्वास्थ्य जरा भी खराब है तो उसके दूध पिलाने का समय चार घंटे से भी अधिक देर के बाद रखना चाहिए। निश्चित समय के बीच में बच्चे को पानी के सिवा और कुछ नहीं देना चाहिए।

अक्सर ऐसा देखा जाता है कि जहां बच्चा जरा सा रोया कि उसे दूध दे दिया जाता है। इसका कारण यह है कि एक तो

माताएँ समझ नहीं पातीं कि बच्चा क्यों रो रहा है। वे समझतीं हैं कि भूख से ही रो रहा है। दूसरे यदि बच्चे के रोने का कारण मालूम हो भी जाय तो उसके चुप कराने का सब से आसान उपाय दूध पिलाना ही समझा जाता है। बच्चे की भी ऐसी आदत पड़ जाती है कि चाहे किसी भी कारण से वह रोया हो फिर बिना दूध पिये वह चुप नहीं होता।

दूसरी बात यह है कि बच्चों को रात में दूध कभी न देना चाहिए। यदि दिन में उचित ढंग से दूध पिलाया जाय तो रात में पिलाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। उसे आदत लगानी चाहिए कि रात में मां के सोने से पहले दूध पी ले और फिर सुबह तक सोता रहे। इसमें मां तथा बच्चा दोनों ही के लिए अच्छाई है। मां को भी रात भर सोना मिलेगा और बच्चा भी ज़रूरत से ज्यादा दूध नहीं पी सकेगा। इसके लिए अच्छा है कि बच्चे को आरम्भ ही से अलग सुलाया जाय। अलग सुलाने से एक और लाभ यह होगा कि बच्चा खूब हाथ पैर फैलाकर सो सकेगा और मां के शरीर के विकारों से भी दूर रहेगा। रात में यदि बच्चे की नींद खुल जाती है और वह रोता है तो लोग समझते हैं कि उसे भूख लगी है। लेकिन यह ग़लत खयाल है। बच्चा अगर रात में रोता या हाथ पैर छटपटाता है तो भूख से नहीं, हाज़मे की ख़राबी से। ऐसी हालत में ऊपर से दूध दे देना उसकी दशा को और खराब करना है, यद्यपि ऐसा करने से बच्चा थोड़ी देर के लिए शान्त हो जाता है।

बच्चों को निरोग रहने के लिए उन्हें अपनी स्वभाविक भूख की पहचान होना बहुत ही आवश्यक है। आरम्भ से ही जल्द जल्द या अधिक मात्रा में खिलाने का नतीजा यह होता है कि उन्हें सच्ची भूख की पहचान ही नहीं होती, बल्कि यह कहना चाहिए कि उन्हें सच्ची भूख कभी लगती ही नहीं। केवल अपनी आदत के अनुसार या खाने-पीने की चीजें देखने के ही कारण वे खाना मांगते हैं। लेकिन अगर जन्म-काल से ही उनके खाने-पीने का तरीक़ा ठीक रखा जाय तो बिना सच्ची भूख के वे कभी भी खाने की इच्छा प्रकट नहीं करेंगे। ऐसी अवस्था में बच्चे की इच्छानुसार ही उसे भोजन देने की आदत डालना सब से हितकर होगा।

इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि बच्चों को कितनी मात्रा में दूध दिया जाय। मात्रा निश्चित करना कठिन है क्योंकि सभी बच्चों का स्वास्थ्य एक समान नहीं होता, इसलिए सभी की आवश्यकता भी एक समान नहीं होती। यहां पर इतना ही कहा जा सकता है कि कमज़ोर तथा चुप-चाप पड़े रहने वाले बच्चे की अपेक्षा उस बच्चे को अधिक मात्रा में दूध देना चाहिए जो पूर्ण रूप से स्वस्थ है और जो खूब हाथ पैर पटकता है।

बच्चों का प्राकृतिक भोजन—

छोटे बच्चों का प्राकृतिक भोजन मां का दूध है। प्रकृति देवी का दिया हुआ बच्चों के लिए इस बढ़िया भोजन की समता दूसरा कोई भी भोजन नहीं कर सकता। प्रत्येक बच्चे के शरीर के पुष्ट

बनने के लिए जिन जिन चीजों की आवश्यकता है वे सभी उसको मां के दूध से ही मिलती हैं। प्रत्येक मां को इस योग्य होना चाहिए कि वह स्वयं ही अपने बच्चे को तब तक दूध पिला सके जब तक कि बच्चा फल के रस इत्यादि ऊपर की चीजें खाने-पीने के लायक़ न हो जाय।

बच्चे के जन्म के बाद लोग उसे दो एक दिन तक, जब तक कि मां का दूध नहीं आता, किसी दूसरी स्त्री का या गाय-बकरी का दूध पिलाते हैं। ऐसा करना अनुचित है। प्रकृति ने किसी मतलब से ही ऐसा प्रबन्ध किया है कि बच्चे के जन्म के दो-तीन दिनों के बाद मां का दूध आता है। जन्म के बाद बच्चे को तुरन्त ही भूख नहीं लगती। उसका पेट काफी गन्दा रहता है और उसके साफ होने में कम से कम दो-तीन दिन लगते हैं। इस बीच में बच्चे को पानी के सिवा कुछ भी नहीं देना चाहिए। यदि आवश्यकता ही जान पड़े तो ज़रा सा शहद चटाया जा सकता है। बच्चे के पेट मे पहले-पहल माता का ही दूध पड़ना चाहिए क्योंकि माता का प्रथम दूध बच्चे के लिए जुलाब का काम देता है; जिस से उसका पेट साफ होने में बहुत सहायता मिलती है। लेकिन यह बातें तभी सम्भव हैं जब कि मां स्वयं बिलकुल स्वस्थ है। अस्वस्थ माँ का दूध बच्चे को पुष्ट बनाने के बदले उसको अधिक हानि ही पहुंचाता है। ऐसी हालत मे माँ के दूध की अपेक्षा बाहर का दूध देना ही अच्छा है। इन दिनों बेचारे अबोध बच्चों के सारे कष्टों का ५० फी सदी कारण है मां के दूध का विकार।

अब यह देखना है कि बच्चे को किस अन्दाज से दूध देना उचित होगा, जिससे बच्चे के पेट में अधिक न हो जाय। इसके लिए भी प्रकृति ने प्रबन्ध किया है। जन्म से ही बच्चे को अपने पेट का अन्दाज रहता है और वह पेट भर जाने के बाद जरा भी अधिक पीना नहीं चाहता। लेकिन अगर माता की गलती से बच्चा आवश्यकता से जरा भी अधिक दूध पी जाता है तो उसे वह तुरन्त ही फेंक देता है। जब बच्चा दो-चार दिन लगातार दूध फेंकता है तो लोग चिन्तित हो जाते हैं और समझते हैं कि ठंड लग गई या किसी की नजर लग गई या इसी प्रकार के कुछ और कारणों से ऐसा हो रहा है। यह बात उनके ध्यान में नहीं आती कि उसको आवश्यकता से अधिक दूध पिलाया गया है और उसी को वह फेंक रहा है। यह बात अवश्य है कि बीमार होने पर भी बच्चा दूध फेंकता है परन्तु उसकी भी पहचान है—बीमार बच्चे की उल्टी में बदबू रहती है, लेकिन बच्चा जब अधिक पीया हुआ दूध फेंकता है तो उसमें किसी प्रकार की बू नहीं होती और उल्टी होते हुए भी बच्चे का स्वास्थ्य अच्छा ही मालूम पड़ता है। यह प्रकृति का ही प्रबन्ध है कि बिना किसी तकलीफ के या बिना किसी प्रकार के बुरा असर पड़े अधिक पीया हुआ दूध बच्चा अपने आप बाहर निकाल देता है। इस हालत में चिन्तित होने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं और न किसी प्रकार की दवा देने की आवश्यकता है। इसका इलाज है केवल दूध पिलाने के समय को थोड़ा कम कर देना, अर्थात् जितनी देर तक पहले दूध पिलाया

जाता था, उससे थोड़ा कम समय तक पिलाना, जिससे एक बार में बच्चा कम दूध पी सके। इस बात का अन्दाज बच्चे की मां को ही अच्छी तरह हो सकता है।

माँ के दूध को विकार-रहित बनाना—

माँ के दूध का अच्छा या खराब होना उसकी शारीरिक अवस्था पर ही निर्भर है, और चूंकि शारीरिक अवस्था खान-पान के उपर ही निर्भर है, माता के भोजन की ओर ध्यान देना बहुत ही आवश्यक है। भोजन-सम्बन्धी विषय पर दूसरे अध्याय में काफी विचार किया गया है, यहाँ पर केवल इतना ही कहा जाता है कि भय, गुस्सा जैसे वेगवान मनोभावों (strong emotions) का भी असर दूध पर पड़ता है, इसलिए ऐसे मनोविकारों से माँ को बचना चाहिए। अगर इत्तिफाक से ऐसा हो भी जाय तो उस समय बच्चे को दूध नहीं पिलाना चाहिए। ऐसे मौको पर दूध में एक प्रकार का जहर फैल जाता है, जो बच्चे के लिए बहुत ही हानिकारक है, ऐसे समय पर बहुत [illegible] अच्छा हो यदि वह जहरीला दूध पम्प से या किसी तरह निचोड़ कर निकाल दिया जाय और उस समय के लिए बच्चे को [illegible] का ही दूध पिलाया जाय।

यह बात बहुत ही आवश्यक है कि दूध पिलाने [illegible] सदा ही प्रसन्न-चित्त रहना चाहिए। माता की मानसिक [illegible] प्रभाव बच्चे के केवल स्वास्थ्य पर ही नहीं स्वभाव [illegible] है। यहाँ तक कि बड़े बड़े वैज्ञानिकों का कहना [illegible]

दूध पिलाने के लिए अगर किसी गाय को ठीक करना हो तो उसके स्वास्थ्य के साथ ही साथ स्वभाव की भी जाँच कर लेनी चाहिए। जो गाय मारने वाली या मुश्किल से दूध देने वाली हो उसका दूध बच्चे के लिए हानिकारक है। सदा सीधी तथा शान्त स्वभाव की गाय को ही बच्चों के दूध के लिए ठीक करना चाहिए।

माता अगर अपने भोजन मे फलों और कच्ची सब्जियों को, छिलकेदार दाल को और चोकरदार आटे को स्थान दे और मसाले, खटाई और पकवान-मिठाइयों से बचे तो उसका दूध बहुत अच्छा रहेगा। माता को अपने बच्चे के हित के लिए नियमित भोजन करना चाहिए। कब्ज होते ही एनीमा लेना चाहिए।

कम से कम नौ महीने तक बच्चे को माँ के दूध पर ही रखना चाहिए। उसके बाद गाय या बकरी का दूध और फलों का रस देना चाहिए और माँ का दूध कम कर देना चाहिए। इस प्रकार धीरे धीरे माँ का दूध छुड़ा देना चाहिए।

बच्चों के लिए ऊपरी भोजन—

अधिकतर पढ़े लिखे तथा सभ्य लोगों में ही यह देखा जाता है कि कुछ माताएं अपने बच्चे को बिल्कुल ही दूध नहीं पिला सकतीं। गवार या देहाती लोगों में और जानवरों में यह बात बिल्कुल ही नहीं पाई जाती। इससे पता चलता है कि मनुष्य ज्यों ज्यों सभ्यता की ओर बढ़ता जा रहा है वह प्रकृति से उतना ही

दूर होता जा रहा है। खैर, इस विषय को यहाँ पर छोड़कर हमें यह देखना है कि अगर किसी कारण-वश मां का दूध न मिल सके तो बच्चे को क्या भोजन देना चाहिए। मां के दूध से सब से अधिक मिलता-जुलता बकरी का दूध है और उसके बाद गाय का दूध। लेकिन बकरी का दूध का मिलना आसान और कठिन भी है, इसलिए हम गाय के दूध पर ही विचार करेंगे। जो बच्चा कुछ कमजोर है और गाय का दूध हजम नहीं कर सकता हो उसके लिए तो बकरी के दूध का प्रबन्ध करना ही पड़ेगा, लेकिन जो बच्चा पचा सकता है उसे गाय का ही दूध देना चाहिए।

गाय का दूध किस प्रकार बच्चे को देना चाहिए—

बाजारू दूध बच्चे को कभी न देना चाहिए। अपने घर की गाय हो तो कहना ही क्या है, पर अगर घर की गाय न हो तो किसी ग्वाले को ठीक कर लेना चाहिए जो स्वस्थ तथा धूप और हवा में घूम घूम कर घास चरने वाली गाय का दूध दुह जाया करे। दूध साफ़ जगह में अपने घर के साफ़ बर्तन में ग्वाले का हाथ धुलवाकर खूब सफ़ाई से दुहवाना चाहिए। गाय का थन भी हर तीसरे-चौथे दिन गुनगुने पानी से धुलवा देना आवश्यक है।

बच्चे को तुरन्त का दुहा हुआ ताजा ही दूध पिलाना चाहिए। गरम करने से दूध के बहुत से गुण नष्ट हो जाते हैं। साधारणतः लोगों का खयाल है कि कच्चे दूध में कीड़े (जर्म्स-germs) रहते हैं, जिनको मारने के लिए दूध को गरम करना आवश्यक है। लेकिन ताजा और सफ़ाई से दुहे हुए दूध में वैसे कीड़े रहते

ही नहीं। जो कुछ रहते भी हैं वे प्राकृतिक होते हैं और उनका रहना ही आवश्यक है। इसके अलावा गर्म करने से दूध की जीवनी शक्ति (vitamin) नष्ट हो जाती है, दूध भारी हो जाता है और पचने में कठिनाई होती है। औटा हुआ या उबाला हुआ दूध छोटे बच्चे को कभी न देना चाहिए। सुबह-शाम तो ताजा कच्चा दूध आसानी से मिल ही सकता है, दोपहर में देने के लिए भी दूध औटकर नहीं रखना चाहिए। यदि उसी कच्चे दूध को एक बोतल में भरकर बोतल को ठंडे पानी से भरे बर्तन में रख दिया जायगा तो दूध ज्यों का त्यों ताजा बना रहेगा। बोतल को हर रोज अच्छी तरह गरम पानी से साफ कर लेना चाहिए। अगर दूध गरम करना ही हो तो उसे सिर्फ गरम कर लेना चाहिए, उसमें उबाल न आने।

मा के दूध से गाय के दूध में तिगुना अधिक प्रोटीन (protein-मांसवर्द्धक पदार्थ) रहता है और इस कारण बच्चे उसको पचा नहीं सकते। उसका भारीपन दूर करने के लिए और उसको मा के दूध के समान बनाने के लिए उसमें पानी मिलाना आवश्यक है। पानी का अन्दाज बच्चे की अवस्था और उसके स्वास्थ्य के अनुसार ही होना चाहिए। साधारणतः आरम्भ में एक हिस्सा दूध और दो हिस्सा पानी, फिर धीरे धीरे पानी की मात्रा कम करते जाना चाहिए और दूध की मात्रा को बढ़ाते जाना चाहिए। एक वर्ष के बच्चों के लिए बिल्कुल पानी मिलाने की आवश्यकता नहीं रह जाती। दूध में मिलाने के लिए

उबाला हुआ पानी ही इस्तेमाल करना चाहिए। बच्चों को दूध में चीनी मिलाकर कभी न देना चाहिए। यदि आवश्यकता ही पड़े तो थोड़ा सा शहद या दूध का सत (sugar of milk, जो अंगरेज़ी दवाख़ानों में मिलता है) दूध में मिला सकते हैं।

अक्सर ऐसा देखा जाता है कि छोटे बच्चों को जब गाय का दूध दिया जाने लगता है तो उनके पेट में कुछ न कुछ गड़बड़ी हो जाती है। यह कोई चिन्ता की बात नहीं है। गाय का दूध, चाहे वह किसी तरह से भी हल्का किया जाय, बच्चे का प्राकृतिक भोजन नहीं हो सकता, इसलिए उसके पचाने का अभ्यास होने में समय लगता ही है। यह बात भी नहीं होनी चाहिए कि बच्चे को बहुत दिनों तक अपच की शिकायत रहे और अपच को प्राकृतिक समझ कर उसपर ध्यान न दिया जाय। लेकिन जल्दी भी नहीं करनी चाहिए। कुछ दिन देखकर तब या तो पानी की मात्रा कुछ और अधिक या कम करके देखना चाहिए या अगर इससे भी लाभ न हो तो गाय का दूध छुड़ाकर बकरी का दूध देना चाहिए।

बच्चों के भोजन में दूध के अलावा फलों के रस—

हमारे हिन्दुस्तानी घरों में ५-६ महीने के बच्चे का अन्नप्राशन कर दिया जाता है, और उसके बाद से थोड़ा थोड़ा अन्न खिलाना शुरू करते हैं। यह बहुत ही बुरा है। नौ महीने से कम के बच्चों को दूध और फल के रस के सिवा और कुछ भी न देना चाहिए। इस उम्र के बच्चे न तो कुछ चबा ही सकते हैं

और न उनका पेट ही इस योग्य होता है कि अन्न पचा सकें इस कारण इस समय का अन्न उनके लिए जहर के समान होता है। इससे उनकी तनदुरुस्ती खराब होने लगती है। हाँ, नौ-दस महीने के बाद बच्चे को सेब, नाशपाती जैसे सख्त फलों का टुकड़ा हाथ में दे सकते हैं, परन्तु वह भी खाने के लिए नहीं, सिर्फ चबाने के लिए। बिना अच्छी तरह चबाए ऐसे फलों के टुकड़े निगले ही नहीं जा सकते। बच्चा उसे खा नहीं सकेगा, केवल कुचलता रहेगा और साथ ही साथ चबाना भी सीखेगा। जब बच्चे के दाँत निकलने लगते हैं तो ऐसा करना जरूरी होता है, क्योंकि सख्त चीजों के चबाने से दाँत की जगहों में एक तरह की कसरत होती है।

फलों के रस मे सब से अच्छा मीठे संतरे का रस है, साथ ही अंगूर और अनार के रस भी बच्चों को दिये जा सकते हैं। इन फलों के रस से बच्चे को कोई हानि न होगी। पके हुए लाल टमाटर का रस भी बच्चों के लिए लाभदायक होगा।

बच्चों को खाने-पीने के लिए कभी मजबूर मत करो—

हमने कई ऐसी अजीब औरतों को देखा है, जो अपने बच्चों को उनकी इच्छा के विरुद्ध उन्हे जबरदस्ती दूध दिया करती हैं और इस तरह उन पर अत्याचार करके अपना अनोखा प्रेम दर्शाती हैं।

हरेक माता को याद रखना चाहिए कि बच्चों को खिलाने-पिलाने के लिए वह कभी जोर न दे। यदि बच्चे ने भोजन के

लिए अनिच्छा प्रकट की तो यह नहीं समझना चाहिए कि दूध में मिठास कम है या इसी तरह के और कारणों से बच्चे को दूध अच्छा नहीं लग रहा है। असल बात यह है कि उसे उस समय जरूरत न रहने के ही कारण दूध अच्छा नहीं लग रहा है। वह नासमझ बच्चा अनिच्छा प्रकट करता है क्योंकि अभी वह प्रकृति से दूर नहीं हुआ है। इसलिए बच्चे की अनिच्छा इस बात का साफ सबूत है कि उसके शरीर को भोजन की आवश्यकता नहीं। जानवरों में भी हम यह बात पाते हैं कि अगर वे जरा भी बीमार होते हैं तो खाना-पीना बिल्कुल बंद कर देते हैं और जब तक अच्छे नहीं हो जाते कुछ भी नहीं खाते। अगर बच्चा दिन भर भोजन न करे तो भी चिन्ता की कोई बात नहीं। ऐसी हालत में पानी के सिवा कुछ भी न देना चाहिए जब तक कि वह खुद खाने-पीने की इच्छा प्रकट न करे। लेकिन ऐसी अनिच्छा एक-दो दिनों से अधिक नहीं चलनी चाहिए। यदि दो दिनों के बाद भी भूख न जगे तो समझना चाहिए कि उसका पेट कुछ ज्यादा खराब है और उसका उचित इलाज करना चाहिए।

फलों का रस—

तीन महीने के बाद से ही किसी एक मीठे फल का रस बहुत थोड़ी-थोड़ी मात्रा में—छोटी चम्मच से एक चम्मच या शुरू में आधी ही चम्मच—दूध पिलाने के तुरन्त बाद दिया जा सकता है। संतरे का रस पाचन के लिए अच्छा है और अनार का रस ताक़त के लिए। धीरे-धीरे रस की मात्रा बढ़ानी चाहिए।

बढ़ते बच्चों का भोजन

एक साल से १८ महीने तक के बच्चे का भोजन—

बहुत से घरों में जब बच्चा करीब वर्ष भर का हो जाता है और किसी किसी घर में अन्नप्राशन के बाद से ही उसे रोटी, पूरी, चावल, दाल इत्यादि बड़े लोगों के खाने की सभी चीजें दी जाने लगती हैं। लोग समझते हैं कि बच्चा इन चीजों के खाने लायक हो गया और यदि अभी से नहीं खायगा तो उसका पेट कमजोर रह जायगा और बड़े होकर भी इन चीजों को नहीं पचा सकेगा। लेकिन इस अवस्था के बच्चों को इस प्रकार का भोजन देना सच्ची बात न जानने की निशानी है और यह बच्चों को केवल उसी समय खराबी नहीं पहुँचाता बल्कि बड़ी अवस्था में खराब स्वास्थ्य के मुख्य कारणों में से एक हो जाता है। दाँत निकलते समय बीमार होना, आँखें उठना और इसी तरह की दूसरी बीमारियाँ, जो अक्सर सभी बच्चों को हुआ करती हैं, उनके लिए स्वाभाविक समझी जाती हैं। लेकिन सचमुच यह बीमारियाँ इस उम्र में ही अनाज खिलाने से होती हैं। उस बच्चे को, जिसे उचित ढंग से खिलाया-पिलाया जाता है, इन आवश्यक कहलाने वाली बीमारियों में से एक भी छू तक नहीं सकती। अगर किसी बच्चे को कोई रोग हो जाय तो उसे स्वाभाविक नहीं

बल्कि उसके माँ-बाप की गलतियों का फल समझना चाहिए। बच्चे को स्वस्थ और सुखी रखना मां-बाप के हाथो में है और यह तभी हो सकता है जब उनके खाने-पीने पर उचित ध्यान दिया जाय।

इसलिए एक वर्ष तक के बच्चे का प्राकृतिक भोजन सिर्फ दूध और फलो के रस ही है। एक वर्ष तक के बच्चों के खिलाने का क्रम इस प्रकार रखा जा सकता है :—

सुबह ६ बजे के करीब—दूध
साढ़े दस बजे—दूध और अनार का रस
ढाई तीन बजे—दूध और सन्तरे का रस
६ बजे शाम को—केवल दूध

एक वर्ष के बाद सिर्फ इतना बढ़ा सकते हैं कि फल के रस की जगह फल, तरकारियों के सूप और कभी कभी बिना मिर्च-मसाले की पकाई हुई हरी तरकारिया (साग, लौकी, तरोई इत्यादि) भी दे सकते हैं। लेकिन सवा वर्ष तक अन्न किसी भी हालत में न देना चाहिए। ऐसे बच्चों के दाँत तो निकल आते हैं लेकिन फिर भी चबाना बिल्कुल नहीं आता। जो कुछ भी उन्हें दिया जायगा सिर्फ टुकड़े टुकड़े कर के वे पेट में रख लेंगे, जो उनके लिए बहुत ही हानिकारक होगा। अक्सर लोग इस उम्र के बच्चों को हलवा, खीर, जलेबी, मोतीचूर के लड्डू, रसगुल्ले जैसी कुछ मुलायम कुछ कड़ी चीजें या दूध में रोटी-चावल ही मल के दे देते हैं। ये चीजें तो बड़ो के लिए हानिकारक हैं, फिर बच्चों का तो कहना ही क्या।

इसलिए इन चीजों से उन्हें अलग ही रखना चाहिए। ऊपर लिखे अनुसार बच्चों का भोजन दिन में चार बार से भी अधिक न होना चाहिए। इसके बीच में बच्चा प्यासा मालूम पड़े या खाने-पीने की इच्छा प्रकट करे तो केवल पानी ही देना चाहिए।

डेढ़ वर्ष के बाद बच्चों का भोजन—

डेढ़ वर्ष के बाद बच्चों को रोटी और बिना मसाले की तरकारी भी देनी चाहिए। दो वर्ष के बच्चे को इस प्रकार भोजन दे सकते हैं:—

६ बजे सवेरे—फल और दूध,

१०-१०½ बजे-रोटी, यदि हो सके तो थोड़ा मक्खन, और तरकारी जिसमें मिर्च-मसाले बिल्कुल न हों। तरकारियां अधिकतर हरी होनी चाहिए जैसे पत्तीदार साग, लौकी, तरोई, नेनुआ, भिन्डी, इत्यादि। आलू, अरवी, कद्दू (कोहड़ा) जैसी चीजें कम देनी चाहिए। आलू कोई खास हानिकारक नहीं है, लेकिन रोटी या चावल के साथ हानिकर हो जाता है। रोटी, चावल और आलू तीनों में एक ही पदार्थ (स्टार्च) का आधिक्य है। इसकी ज्यादती से खून में खटाई बढ़ती है। इस भोजन के साथ थोड़ी सी कच्ची सब्जी (सलाद) भी जरूर हो। टमाटर, पतली मूली, गाजर, मूली की पत्ती, करमकल्ले की पत्ती, लेटिस की पत्ती, धनिया की पत्ती, पुदीने की पत्ती, खीरा, ककड़ी, चुकन्दर इत्यादि में से दो तीन चीजें थोड़ी थोड़ी सी मिला कर या एक ही देनी चाहिए।

तीसरे पहर ३ बजे के करीब—फल या दूध या दोनों।

७ बजे शाम को—केवल तरकारी और कुछ मुनक्के या अंजीर या फल और दूध। कोई कोई बच्चे मीठा अधिक पसन्द करते हैं और कोई नमकीन। उनको इच्छानुसार ही फल के रस, दूध या तरकारी का सूप देना चाहिए।

३ से ५ वर्ष के बच्चों का भोजन—

तीन वर्ष के बाद बच्चों को दोनों वक्त रोटी दे सकते हैं। फिर भी यह ध्यान रहे कि शाम को हल्के भोजन की ही आवश्यकता रहती है, इसलिए उस समय के भोजन में फल, और सब्ज़ियों की ही प्रधानता रखनी चाहिए, या कुछ फल अवश्य हों और यदि इच्छा हो तो एक-आध रोटी देनी चाहिए। इस उम्र के बच्चों के खिलाने का क्रम इस प्रकार रख सकते हैं :—

सबेरे ६-७ बजे के बीच में कुछ हल्का नाश्ता। नाश्ते में फल और दूध या मेवा और दूध या गर्मी का मौसम हो तो मट्ठा आदि देना चाहिए।

१०-११ बजे दिन में—सलाद, रोटी, दाल, तरकारी, दही इत्यादि।

तीसरे पहर—कुछ फल, दूध, गर्मियों में मट्ठा, फलों के रस के शरबत, ठंढाई इत्यादि।

रात में फल दूध या रोटी और सादी तरकारी। फल दूध ही ज्यादा अच्छा होगा।

बच्चों के भोजन में फलों की प्रधानता दी गई है, इस लिए

पूछा जा सकता है कि कौन कौन से फल बच्चों के खाने योग्य हैं। फलों में नारंगी, संतरा, सेब, नाशपाती, आम, अमरूद, अंगूर, केला, पपीता, खीरा, ककड़ी, खरबूजा तरबूज आदि मौसम के सभी प्रकार के फल तनदुरुस्त लड़के को दे सकते हैं। कोई भी फल खराबी नहीं करता। खराबी केवल तभी करता है जब भरे हुए पेट पर या सड़ा-गला और कच्चा खाया जाय। हाँ, बीमारी की हालत में फल भी नहीं देते। सिर्फ रसदार फलों के रस देते हैं।

बच्चों को मिठाई, पकवान आदि से दूर रखना चाहिए। अक्सर माताएं ऐसा करती हैं कि मठरी, लड्डू, शकरपाले आदि बहुत तरह के पकवान बना के इसलिए रखती हैं कि जिस समय बच्चे की इच्छा हो खा ले। यह हुई साधारण घरों की बात। बड़े घरों में तो घर की बनी हुई ये चीजें भी पसन्द नहीं की जातीं। उन्हें तो रसगुल्ले, बर्फी, समोसे आदि बाजार की चीजें, सफेद या डबल रोटी, केक जैसी होटल की चीजें ही अच्छी लगती हैं। लेकिन यह जितनी अच्छी लगती हैं उतनी ही हानिकारक भी हैं। उनके बनाने में मैदा, चीनी और खराब घी जो इस्तेमाल किये जाते हैं वे और भी खराब हैं। इसके अलावे चार-पाँच साल की ही उम्र की अवस्था में बच्चों और खोंचे वालों में दोस्ती का समय होता है। बच्चों को प्यार के कारण पैसे दो पैसे रोज दिये ही जाते हैं। बच्चे पैसा पाते ही दरवाजे की ओर खोंचे वाले की खोज में दौड़ते हैं और पैसे देकर उससे मिठाई, चाट, दही-बड़े के रूप में अपने लिए रोग मोल लेते हैं। छुटपन ही से ध्यान रखना चाहिए कि

बच्चों को इन सब चीजों की आदत न पड़े। हाँ, यदि घर की बनी हुई अच्छी चीज है और तनदुरुस्ती अच्छी है तो कभी कभी थोड़ी सी दे सकते हैं, लेकिन नाश्ते के समय नहीं, खाने के ही समय।

बच्चों को भोजन चबा कर खाने की आदत लगाना भी बहुत ही आवश्यक है। कहा जा सकता है कि सभी चबा के खाते हैं, कोई राक्षस थोड़े ही है जो बिना चबाये निगल जायगा। लेकिन सचमुच हम लोग खाने को चबाते नहीं। हम चबाना ही नहीं जानते। छुटपन से आदत ही ऐसी पड़ी रहती है कि चबाने की आवश्यकता नहीं समझते और ग्रास को दो तीन बार चला कर, बहुत हुआ तो टुकड़े टुकड़े करके, निगल जाते हैं। इससे ज्यादा देर तक चबाते रहने का धीरज नहीं होता लेकिन इस तरह खाया हुआ भोजन महीन या बारीक नहीं होता। इसका नतीजा यह होता है कि जो काम दाँत का है वह पेट को ही करना पड़ता है, पर उसे वह कर ही नहीं सकता। इससे मेदा कमजोर होने लगता है। अन्त में एक दिन ऐसा आता है कि पचाने की शक्ति बहुत ही कम हो जाती है। इसलिए पाचन-शक्ति को ठीक रखने के लिए भोजन को खूब चबा कर खाना बहुत ही आवश्यक है। प्रारम्भ ही से जब से बच्चे को फल और अन्न जैसी सख्त चीजें दी जाने लगती हैं, उसे चबा कर भी खाना सिखाना चाहिए। उसे आदत लगानी चाहिए कि रोटी सूखी ही चबावे, दाल या दूध में भिगो कर नहीं, जैसा कि अक्सर किया जाता है। इस तरह दाल या दूध में मल कर देने से बच्चे को चबाने का मौका नहीं मिलता।

भोजन खूब चबा कर खाने से एक यह लाभ भी होता है कि पेट से अधिक नहीं खाया जाता।

बच्चों से भोजन करने के लिए कभी आग्रह न करो। वह खुद ही अपने वक्त पर खाने की इच्छा प्रकट करेगा। यदि एक वक्त बच्चे ने भोजन की ओर जरा भी अनिच्छा प्रकट की तो दुबारा उससे खाने को न पूछना चाहिए। यदि दूसरे वक्त भी उसने अनिच्छा दिखलाई तो भी चुप लगा जाना चाहिए। उसे भोजन की ओर ध्यान ही न दिलाना चाहिए, जब तक कि उसे खूब भूख न लग आवे और वह खुद खाना न मांगे। इस तरह की आदत पड़ जाने पर बच्चे को अपनी सच्ची भूख की पहचान हो जायगी और भूख न रहने पर वह अच्छी से अच्छी चीज भी न खायगा। अक्सर ऐसा भी देखा जाता है कि मां अपने अन्दाज से बच्चे को खाना देती है और उसे सारा खाना खिला देना चाहती है। यदि बच्चे का पेट भर जाता है और बची हुई चीजें खाने से वह इन्कार भी कर देता है तो भी अन्न खराब होने के डर से मां उसे फुसला फुसला कर खिला देने की कोशिश करती है। यह बहुत ही बुरा है। इस तरह से बच्चा भूख से अधिक खा जाता है, जो कि हाजमे के लिए बहुत ही खराब है। धीरे धीरे उसकी आदत पड़ जाती है और वह रोज ही भूख से ज्यादा खाने लगता है। छोटे बच्चों के बुखार, खाँसी जुकाम, अनपच, दस्तों का आना आदि सभी बीमारियों का कारण पेट से अधिक खाया हुआ भोजन ही होता है। इस लिए बच्चे को

कभी उसकी इच्छा से अधिक खाने के लिए आग्रह न करना चाहिए। ज्यांही उसने भोजन की ओर से अरुचि दिखलाई कि उसे खिलाना बन्द कर देना चाहिए और फिर एक ग्रास भी न देना चाहिए। उसके स्वास्थ्य के लिए इससे बढ़ कर और क्या हितकर हो सकता है कि उसे स्वयम् अपनी सच्ची भूख की पहचान और पेट का अन्दाज हो जाय। जिस बच्चे में ऐसी आदत पड़ जाती है उसे फिर बीमार होने का कभी मौका ही न आवेगा।

बच्चों को खाते समय पानी न देना चाहिए। इसकी भी शुरू ही से आदत लगानी चाहिए, नहीं तो फिर बाद में बच्चे मानते नहीं। इससे एक तो बच्चे खाना को मन लगाकर चबाते नहीं, दूसरे पचाने वाले रस कमजोर पड़ जाते हैं। कम से कम दो घंटे बाद पानी देना चाहिए। यदि बच्चे का खाना ऊपर लिखे अनुसार सादा तथा बिना मिर्च-मसाले का रहेगा तो बच्चा स्वयम् पानी न मांगेगा।

बच्चों के सामने माता-पिता को अपना उदाहरण रखना आवश्यक है—

भोजन-संबंधी ऊपर लिखी हुई आदतों को बच्चों में डालने के लिए यह आवश्यक है कि माता पिता स्वयम् भी उन बातों को करें और उन्हीं नियमों का पालन करें। उपदेश से उदाहरण लाख गुना अच्छा है। जिस समय से बच्चा कुछ कुछ समझने लायक होता है तभी से वह अपने से बड़ों की सभी बातों की नकल करने की कोशिश करता है। उसके सामने भला या बुरा जैसा भी उदा-

हरएा रहेगा उसी की नक़ल वह करेगा और धीरे धीरे वैसा ही बन जायगा। यदि घर के अन्य लोग दिन भर कुछ न कुछ खाते पीते रहें और बच्चे को सिखलावें कि तुम तीन या चार बार से अधिक मत खाओ तो बच्चा कभी न सीखेगा। यदि वे खुद ही मिर्च-मसालेदार चटपटी चीजें खायेंगे और बच्चे को सादे भोजन का उपदेश देंगे तो उनका उपदेश व्यर्थ हो जायगा। यदि वे नाश्ते में पकवान, मिठाई, पकौड़ी खायेंगे, चाय पीयेंगे और बच्चे से कहेंगे कि तुम फल खालो और दूध पी लो तो भला बच्चा कब मानने वाला है। सम्भव है कि बच्चा अपने पिता के सामने चुप लगा जाय, पर बाद में वह रो-धो कर, छीन-झपट कर, चुरा-छिपा कर उन चीजों को अवश्य ही खायगा। धीरे धीरे उसे भी उन चीजों में स्वाद लग जायगा, फिर बड़े होने पर उसकी आदत जल्द नहीं सुधरेगी। यदि वे स्वयं काम की जल्दी में जल्दी-जल्दी भोजन करके उठ जायंगे और बच्चे से कहेंगे कि खूब चबाते रहो तो भला उसे क्या ग़रज़ पड़ी है कि वह चबाता रहे। वह तो उनसे भी जल्दी खा कर उठ जायगा। इसी प्रकार यदि स्वयं भोजन के समय पानी पियेंगे और बच्चे से दो घंटे बाद पीने को कहेंगे तो भला बच्चा क्यों मानने लगा। वह रोयेगा, चिल्लायेगा और अन्त में पानी पीकर छोड़ेगा। इसी तरह और भी सभी बातें हैं, जिन्हें खुद न करके यदि केवल बच्चे को सिखलाया जायगा तो उसके ऊपर कुछ भी असर न पड़ेगा। इसलिए जिन नियमों पर बच्चे को चलाना है उन पर अगर माता-पिता और

घर के अन्य लोग भी चलेंगे तो बच्चा अपने आप ही सीख जायगा।

चीनी और मैदे की खराबियाँ—

खाने पीने के सिलसिले में यह भी कह देना आवश्यक है कि कौन कौन चीजें बिलकुल छोड़ देने योग्य हैं। वैसे तो नित्य प्रति बहुत सी ऐसी चीजें हम खाते हैं और बच्चों को खिलाते हैं, जिनसे पैसे और तनदुरुस्ती दोनों की बरबादी होती है; लेकिन उनमें मुख्य हैं चीनी और मैदा, और साथ ही घी या तेल के बने पकवान।

चीनी इन दिनों बहुत तरहों से इस्तेमाल की जा रही है। चाय में, दूध में, शरबत में, पकवान में, मिठाई में, खीर में—इसी प्रकार न मालूम कितनी तरह लोग चीनी खाते हैं। विशेष कर बच्चों को तो मीठा बहुत ही प्रिय होता है, इसलिए वे उसे खाते भी अधिक हैं। लेकिन यह उनके लिए बहुत नुकसान की चीज है। इससे बच्चों के कई रोग हो जाते हैं, जिनमें सूखा (सारे शरीर का दुबला और कमजोर होना) मुख्य है। चीनी से हड्डी कमजोर पड़ जाती है, जिससे बच्चों के शारीरिक विकास पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। बच्चों को अपने शरीर में गर्मी और फुर्ती लाने के लिए जितनी चीनी की आवश्यकता होती है उतनी उन्हें मीठे फल और दूध से मिल जाती है। यदि ये चीजें उन्हें उचित रीति से और पर्याप्त मात्रा में दी जायं, फिर ऊपर से

चीनी की आवश्यकता नहीं रहती। लेकिन यदि देना ही पड़े तो गुड़ या भूरी शकर इस्तेमाल कर सकते हैं।

इसी प्रकार मैदा भी हमारे देश में बहुत खाया जाता है। प्रति दिन नाश्ते तथा खाने में मैदा किसी न किसी रूप में इस्तेमाल किया जाता है। मिठाइयाँ, पकवान, डबल रोटी सभी चीजें मैदे की बनाई जाती हैं। मिठाई और पकवान को तो लोग भारी चीज समझ कर कुछ कम भी कर देते हैं पर डबल रोटी को बहुत हल्का समझते हैं और बहुतायत से इस्तेमाल करते हैं।। बच्चे भी उसे दूध में भिगो कर या यों ही खाना बहुत पसन्द करते हैं। लेकिन यह बहुत ही बुरी चीज है। एक तो यह मैदे की बनी होने के कारण बुरी है, लेकिन जो ब्राउन (चोकर की) होती है वह भी बुरी होती है, क्योंकि इसके बनाने का ढंग बहुत ही गन्दा होता है। इस लिए डबल रोटी बिल्कुल ही त्याज्य वस्तु है। मैदा किसी भी रूप में इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। एक तो गेहूँ के असली तत्व जो ऊपर के हिस्से में होते हैं इस में नहीं रह जाते, दूसरे यह इतना महीन और चिकना होता है कि आंतों में चिपक जाता है। सदा मोटा आटा ही इस्तेमाल करना चाहिए और यदि हाथ का पिसा हो तो और अच्छा है।

हवा, शरीर की सफ़ाई, कपड़े

बच्चों के खान-पान के बारे मे कहा गया। अब हमे उनका और बातों की ओर विचार करना है।

बच्चों को ताजी हवा की आवश्यकता—

बच्चों का शारीरिक विकास उचित खान-पान के साथ साथ ताजी खुली हवा पर भी निर्भर है। यदि हम केवल उनके भोजन की ओर ध्यान देंगे और उनके लिए ताजी खुली हवा का प्रबन्ध न करेंगे तो उनकी वही दशा होगी जो एक पौधे की, जिसे पानी मिट्टी देकर एक कमरे में बन्द कर देने से हो सकती है।

हमारे हिन्दुस्तानी घरों मे बहुत कम ऐसे घर हैं जो खूब हवादार हों। दीवारें बहुत ऊँची ऊँची होती, हैं, आँगन बहुत ही छोटा होता है, कमरे छोटे छोटे या बहुत बड़े बड़े बेडौल होते हैं, जिनमें खिड़कियाँ भी ढँग से नहीं बनी होतीं। ऐसे मकानों मे रहने वालों का स्वास्थ्य कभी ठीक नहीं रहता। विशेष कर बच्चों पर तो इसका बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। बड़े बच्चे तो घर के आस पास निकल कर खेल-कूद भी लेते हैं, जिससे उन्हें कुछ खुली हवा मिल जाती है लेकिन छोटे बच्चे, जिन्हें सब से ज्यादा खुली और शुद्ध हवा की जरूरत रहती है, वैसे ही बन्द कमरों मे पड़े रहते हैं। यदि कोई कमरा ऐसा हुआ भी जिसमें थोड़ी बहुत हवा आती हो तो बच्चे उसमें ठंड खाने के डर से नहीं रखे

जाते। गर्मियों में चाहे रख भी लें पर जाड़ों में बन्द कमरा चुन कर ही उसमें बच्चों को रखा जाता है। नतीजा यह होता है कि वे पीले, सुस्त और रोगी बन जाते हैं।

इस लिए यह आवश्यक है कि बच्चों के लिए ऐसा कमरा चुना जाय, जिसमें दरवाजे और खिड़कियाँ काफ़ी हों और जिसमें खूब हवा आती हो। इसके अलावा बच्चों को प्रति दिन शाम सुबह घर से बाहर, बस्ती से अलग, किसी मैदान या बाग़-बगीचे की ओर घूमने भेजना बहुत ही आवश्यक है। जाड़े में लोग बच्चों को इस डर से बाहर भेजते हुए डरते हैं कि कहीं सर्दी जुकाम न हो जाय, पर यह केवल भ्रम है। सर्दी-जुकाम हवा लगने से नहीं पेट की खराबी से होती है। हवा लगने से तो सर्दी-जुकाम और अच्छा हो जाता है। जाड़ों में भी अच्छी तरह कपड़े पहना कर गाड़ी में बिठा कर बच्चे को शाम सुबह दोनों वक्त घंटे आध घंटे के लिए घूमने भेजना चाहिए। घर में भी, जहाँ तक हो सके, बच्चे को कमरे से बाहर खुली जगह में ही रखना चाहिए। जो बच्चा नियमित रूप से ताजी स्वच्छ हवा में घूमने जाता है और घर में भी हवादार जगहों में सुलाया-लिटाया जाता है वह खिला हुआ, तनदुरुस्त और फुर्तीला रहता है।

बच्चों के पेट और शरीर की सफ़ाई—

अक्सर छोटे बच्चे दो-दो तीन-तीन दिन पर पाखाना किया करते हैं और इसी को माताएं अच्छा समझती हैं। अगर बच्चा

राय बहादुर डाक्टर लक्ष्मीनारायण चौधुरी
रिटायर्ड (पेन्शन याफ्ता) सिविल सर्जन, जयपुर। यह इन दिनों भारत देश के एक प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक हैं

इस से जल्द टट्टी करता है तो वे समझती हैं कि उसका पेट खराब हो गया और उसे बन्द करने की कोशिश करती हैं। लेकिन सचमुच पेट खराब होने का लक्षण रोज रोज़ टट्टी होना नहीं बल्कि तीन चार दिन के बाद होना है। बच्चों को दिन में दो बार अवश्य ही टट्टी करानी चाहिए। इसके लिए भी उन्हें शुरू से आदत डालनी चाहिए, जिससे कि बंधे हुए समय पर टट्टी करें। ऐसा करने से नित्य नियमित रूप से उनका पेट साफ़ हो जाया करेगा और कपड़े भी खराब नहीं होंगे। जो बच्चा तीन चार दिन पर टट्टी करता है उसकी माँ को आराम तो अवश्य रहता है और पहले बच्चे के लिए भी कोई खराबी नहीं मालूम पड़ती, लेकिन स्वास्थ्य पर इसका प्रभाव बहुत बुरा पड़ता है। इसलिए यदि कभी ऐसा हो कि बच्चा दो तीन दिन तक टट्टी कर रहा है तो उसका इलाज करना चाहिए।

बच्चे के शरीर की सफाई पर भी ध्यान देना आवश्यक है। अक्सर ऐसा देखा जाता है कि माताएं बच्चों को पानी से अलग ही रखती हैं। वे समझती हैं कि नहलाने से ठंड लग जायगी। जाड़ों में तो कभी नहलाती ही नहीं। गर्मियों में नहलाती भी हैं तो दिन में एक बार, जब धूप खूब तेज हो जाती है और वह भी गरम पानी से। ऊपर से तेल खूब चपोड़े रहती हैं। ये बातें तन्दुरुस्ती के लिए तो खराब हैं ही, बच्चों के शरीर से बू आया करती है और शरीर गन्दा दिखता है। इसलिए बच्चों को नहलाने में कभी नागा न करना चाहिए। गर्मियों के मौसम में शाम-

सवेरे दो बार ठंडे पानी से और जाड़ों में भी कम से कम एक बार गुनगुने पानी से अवश्य नहलाना चाहिए। खूब अच्छी तरह नहलाने से बच्चे को तबियत हल्की रहेगी और उसे खूब अच्छी नींद भी आवेगी। इसके अलावा देखने में वह साफ़-सुथरा और भला लगेगा, जिससे सभी को प्यारा मालूम पड़ेगा। बच्चों को मालिश की आवश्यकता रहती है जरूर, पर नहलाने के पहले ही कर देना चाहिए। बहुत घरों में माताएँ बच्चों के चेहरे पर पाउडर आदि मल देती हैं, जिस से चमड़ा चिकना और साफ़ रहे, लेकिन इस से लाभ के बदले हानि ही होती है। आगे चलकर चमड़े पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है और दाने आदि निकल आते हैं। पाउडर बिल्कुल बेकार है। यदि बच्चे का स्वास्थ्य अच्छा है, वह नहला-धुला कर साफ़-सुथरा रखा जाता है तो उसका चेहरा यों ही चमकता हुआ मुलायम और सुन्दर रहेगा।

बच्चों के कपड़े—

बच्चों के कपड़ों के सम्बन्ध में सब से पहले इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उनके कपड़े ढीले ढीले हों, जिससे खून के दौरान (संचार) में बाधा न पहुँचे। उनके लिए चिकना और मुलायम कपड़ा बनवाना चाहिए। बच्चों को बहुत से कपड़े नहीं पहनाना चाहिए। गर्मी के मौसम में पतला कुर्ता और जाड़ों में कुर्ते के उपर से एक ऊनी—वस्त्र। इस से अधिक कपड़े पहनाने की आदत नहीं डालनी चाहिए। उनके कपड़े खूब साफ़ होने चाहिए। छोटे बच्चों को पेटी नहीं पहनानी चाहिए। उनके

जूते भी बहुत कसे न हों। ऊनी कपड़ा या फलालेन ठीक चमड़े पर न हो। पहले सूती कपड़ा पहना कर तब इन चीजों को पहनाना चाहिए। जाड़ों में करीब करीब सभी घरों में बच्चों को हवा से बचाने के लिए कनटोप पहनाते हैं। यह बहुत ही हानि-कारक है। बच्चों के कान किसी भी हालत में बन्द नहीं करने चाहिए। उससे सिर्फ तनदुरुस्ती ही खराब नहीं होती, दिमाग़ भी खराब होता है। ठंडक ही लगने का डर हो तो कान नहीं बल्कि सीने और गले को ढक कर रखना चाहिए।

कोई कोई बच्चे लार टपकाया करते हैं, जिस से उनका पहना हुआ कपड़ा गीला हो जाता है और सूखने बाद कड़ा हो कर बहुत बुरा मालूम होता है। इसके लिए पतली सी गद्दी सी कर उनके गले में पहना देना चाहिए और उसके गीला हो जाने पर उसे बदल देना चाहिए। साथ ही उपाय करना चाहिए कि लार टपकना बंद हो। छोटे बच्चे को कमर से एक हल्का रूमाल हमेशा बांधे रखना चाहिए, नहीं तो टट्टी करके वे कपड़े और अपना हाथ-पैर खराब कर लेते हैं। उनके लिए मोमजामा रखना भी आवश्यक है। मोमजामा नहीं रहने से जब वे पेशाब करते हैं तो वह बिस्तर में सूख जाता है और फिर बिस्तरे से बदबू आया करती है। गोद में लेते समय भी मोमजामा या कपड़ा रखना चाहिए, जिस से यदि बच्चा गोद में ही पेशाब कर दे तो अपना कपडा बचा रहे। बच्चों के सूती कपड़े रोज धुलने चाहिए। बच्चों के ओढ़ने-बिछाने के कपड़ों को रोज धूप दिखाना चाहिए।

सोना और आराम—

बच्चों को गोद में बहुत नहीं लिए रहना चाहिए। उन्हें केवल नहलाने-धुलाने और दूध आदि पिलाने के समय ही उठाना चाहिए या कभी कभी खेलाने के लिए। अधिक गोद में रखने से बच्चे की आदत बिगड़ जाती है और फिर वह चारपाई पर लेटना पसन्द नहीं करता। इससे उसकी तनदुरुस्ती में हानि पहुचती है। चारपाई पर लेटे रह कर वह खूब हाथ-पैर फैला कर खेल सकता है, इधर-उधर उलट सकता है, लेकिन गोद में यह सब नहीं कर सकता। इसके अलावे इस आदत से वह अपनी माँ को भी बहुत दुख देता है। माँ कभी स्वतंत्र नहीं रह पाती, इसलिए बच्चे को जन्मकाल से ही कुछ महीनों तक चारपाई पर लेटे रहने की आदत लगानी चाहिए।

बच्चों को माताएँ अपने पास ही सुलाया करती हैं। अपने देश में बहुत कम घर ऐसा देखने मे आता है जहां छुटपने से बच्चे अलग सुलाये जाते हों। जन्म से लेकर कम से कम चार-पांच वर्ष तक या और ज्यादा दिनों तक बच्चा मा या बाप के पास ही सोता है। लेकिन कई बातों का खयाल करते हुए यह आवश्यक है कि बच्चे अलग सुलाये जाँय। आरम्भ से ही उनकी चारपाई अलग रखनी चाहिए। इससे एक तो बच्चा खूब फैल कर आराम से सो सकेगा, दूसरे रात में दूध पीने की आदत नहीं लगेगी, तीसरे वह मा के शरीर के विकारों से दूर रहेगा और साथ ही साथ मा को भी निश्चिन्त होकर रात भर सोने को मिलेगा।

बच्चों का बिस्तर खूब गद्देदार और मुलायम होना चाहिए। चारपाई खूब तनी हुई रहनी चाहिए, उसमें जरा भी झोल न हो। ओढ़ने के कपड़े ऋतु के अनुसार होने चाहिए पर बहुत गर्म कपड़ों की आदत नहीं डालनी चाहिए। गर्मियों में कपड़े ओढ़ने की बिल्कुल जरूरत नहीं। मक्खी और मच्छरों से बचाने के लिए जाली से ढके रखना चाहिए या मसहरी लगा देनी चाहिए। बिस्तर, ओढ़ने के कपड़े और मसहरी आदि खूब साफ हों और इनमें रोज धूप दिखलाई जाय। जाड़े और वर्षा के दिनों में रोज बिस्तर आदि को सुखाना जरूरी है पर गर्मियों में भी हर दूसरे तीसरे दिन सुखा लेना चाहिए।

बच्चों के सोने की जगह खूब साफ-सुथरी हो। यदि कमरे में बच्चा सोता है तो कमरे में सामान बहुत कम हो, कोने, छत और दीवारों में जाला मकड़ा न हो, कोई खाने-पीने की चीज या दूध आदि के बरतन न हों, नहीं तो मक्खियां भिनकेंगी। कमरे के दरवाजे और खिड़कियां खुली हों, लेकिन इस बात का ध्यान रहे कि बहुत तेज रोशनी या बहुत झोंके की हवा न आती हो। जाड़ों में भी दरवाजे और खिड़कियां खोल कर बच्चों को सुलाना चाहिए। यदि बरामदे में सुलाये जांय तो बहुत ही अच्छा हो। खुली हवा में सुलाने या रखने से ठंढ कभी नहीं लगती, जैसा कि लोगों का भ्रम है। गर्मियों में रात के समय बिलकुल खुले में सुलाना चाहिए।

इस बात का ध्यान रखना भी आवश्यक है कि बच्चे चाहे छोटे

हों या बड़े उन्हें सोने जाते समय रुलाना न चाहिए, ख़ुशी की हालत में चारपाई पर भेजना चाहिए। जिस दिन बच्चा सोने जाने के पहले रो लेता है उस दिन उसका बुरा असर रात भर रहता है, अच्छी गहरी नींद नहीं आती और वह सोते में सिसकियां भरा करता है। इसका असर उसके स्वास्थ्य पर बुरा पड़ता है। यदि रात में बच्चा छटपटाये या दांत बजावे तो समझना चाहिए कि उसका हाज़मा ठीक नहीं है। बच्चों के लिए गहरी नींद बहुत ज़रूरी है, क्योंकि नींद ही में उनका शरीर पुष्ट होता है। सुलाने के पहले यदि बच्चों का शरीर भीगे हुए तौलिए से पोंछ दिया जाय तो बहुत ही अच्छा हो। तौलिया भिगोने का पानी ऋतु के अनुसार होना चाहिए—गर्मी में ठंडा और जाड़ों में गुनगुना (बहुत थोड़ा गर्म)।

बच्चा कितना सोये—

अब हमें देखना है कि किस उम्र के बच्चे को कितना सोना चाहिए। उनके सोने का हिसाब इस प्रकार रखना चाहिए—

एक महीने तक के बच्चे के लिए	२१ घंटे
छः ,, ,, ,, ,,	१८ ,,
एक वर्ष ,, ,, ,,	१५ ,,
दो ,, ,, ,, ,,	१४ ,,
तीन ,, ,, ,, ,,	१३ ,,

इसके बाद ६-७ वर्ष की उम्र तक बच्चों का काम १०-१२ घंटे सोने से ही चल सकता है।

बच्चों के लिए कसरत

छोटे बच्चों की कसरत—

जैसा पहले बताया गया है, कसरत जीवन के लिए जरूरी है। कसरत से बदन में हरकत होती है, खून तेजी से दौड़ता है और शरीर के अंगों से विकार पसीना के रूप में निकलता है। लेकिन छोटे बच्चों के लिए कोई खास कसरत की जरूरत नहीं होती। बहुत छोटे बच्चे अपने हाथ-पैर फेंक और उछाल कर इधर-उधर उलट-पुलट कर, स्वाभाविक कसरत कर लेते हैं। जब वे कुछ बड़े होते हैं तो उठने और खड़े होने की कोशिश में गिरते-पड़ते हुए काफी कसरत कर लेते हैं।

जब बच्चा चलने लगे तो उसे उँगली पकड़ा कर थोड़ी दूर तक टहलाना चाहिए। जैसे जैसे उसके शरीर में ताक़त बढ़े वैसे वैसे टहलाने की दूरी को बढ़ाना चाहिए। चलना सीखने के पहले भी बच्चे को छोटी गाड़ी (पेराम्बुलेटर-perambulator) में बैठा कर हवा-खोरी के लिए बाहर ले जाना चाहिए या भेजना चाहिए। यह जरूरी नहीं है कि यह गाड़ी कीमती ही हो। साधारण हैसियत के लोग या देहात के रहने वाले लकड़ी की सस्ती गाड़ी बनवा सकते हैं। गोद में बच्चे को दबाकर ले जाना ठीक नहीं है।

मालिश—

बच्चों के लिए तेल की मालिश भी एक जरूरी चीज है। मालिश से कसरत के बहुत से फायदे हासिल हो जाते हैं। अगर यह कहा जाय कि मालिश लाचारों की, बच्चों, कमजोरों और बुड्ढों की कसरत है तो ग़लत न होगा।

देहातों या पुराने ढंग के लोगों के यहाँ बच्चों की मालिश दिन में तीन तीन बार होती है। ऐसा करना अच्छा है। पर मालिश के बाद ही बच्चे को या तो अच्छी तरह नहला देना चाहिए या उसका शरीर भीगे कपड़े से अच्छी तरह पोंछ देना चाहिए। साधारणतः सुबह शाम मालिश करना काफी होगा। गर्मी के दिनों में ठंडे पानी का और जाड़ों में या कमजोर बच्चों के लिए गुनगुने (गर्म नहीं) पानी का इस्तेमाल करना चाहिए।

मालिश की तरकीब यहां बताने की आवश्यकता नहीं। सभी घरों में औरतें इसे अच्छी तरह जानती हैं। यहां इतना ही कहना काफी है कि सिर के लिए तिल या नारियल का तेल और बदन के लिए सरसों का कड़आ तेल काम में लाना चाहिए और यह भी कि मालिश करते समय सारे शरीर, सभी जोड़ों और रीढ़ की अच्छी तरह, धीरे धीरे लेकिन देर तक, मालिश करनी चाहिए। जाड़ों में सुबह-शाम की धूप में मालिश करने से शरीर और भी अच्छा तैयार होता है। जब बच्चा साल भर का हो जाय तो दिन में एक बार की मालिश काफी होगी।

बड़े बच्चों की कसरत—

बड़े बच्चों की कसरत के लिए कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। वे अनायास ही दौड़ते और उछलते हैं, जिससे उनकी पूरी कसरत हो जाती है। माता-पिता को चाहिए कि वे बच्चों के दौड़ने, उछलने और खेलने पर अ-कारण ही नाराज़ न हुआ करें।

—

बाल-रोगों की चिकित्सा

रोग हो ही क्यों—

असल प्रश्न यही है कि रोग हो क्यों ? जैसा कि पहले बताया गया है, रोग, प्रकृति के नियमों को तोड़ने से, माता-पिता के अज्ञान के कारण, होता है। अगर बच्चे जन्म से ही नियम के अनुसार रखे और खिलाये-पिलाये जाँय तो उन्हें कोई भी रोग न हो। रोग होना स्वाभाविक नहीं है। यह शरीर इस लिए नहीं बनाया गया है कि इस में तरह तरह के रोग समय समय पर उभड़ते रहें। अगर यह मामूली सी बात समझ में आ जायगी तो माता-पिता अपने बच्चों की ठीक देख-रेख करेंगे और उनके बढ़ने में सच्चे सहायक साबित होंगे।

इस पुस्तिका के लेखक का अनुभव है कि पहले उसके परिवार में हर दूसरे-तीसरे महीने बच्चे बीमार होते थे, पर अब कई साल से, जब से भोजन और रहने के नियमों पर साधारण ध्यान दिया जाने लगा है, कोई भी जल्दी बीमार नहीं होता।

रोग को दबाना बुरा है--

अव्वल तो रोग हो ही नहीं, लेकिन, जैसा कि पहले बताया गया है, अगर हो जाय तो उसको जहरीली दवाएँ दे देकर और समय से पहले पथ्य देकर दबाना बुरा है। रोग-रूप में प्रकृति

शरीर के अन्दर के विकारों को निकालने का असाधारण प्रबंध करती है। इस प्रबंध में दवा या बे-जरूरी पथ्य देकर अड़चन न डालनी चाहिए। इन अड़चनों से—दवाओं से—अक्सर ऊपरी लाभ मालूम होता है, लेकिन सचमुच वह लाभ नहीं है। विकार अन्दर ही दबे रहते हैं और कुछ ही दिनों में फिर प्रकृति उनको बाहर निकालने की कोशिश करती है, जिस से फिर रोग होता है। बार बार इन विकारों को दबाने से शरीर के अन्दर बहुत गड़बड़ी होती है और आगे चलकर आँखों की खराबी, दाँतों की खराबी, दमा, बवासीर, गठिया, एक्ज़िमा, फालिज इत्यादि जीर्ण रोग शरीर को घर दबाते हैं।

किसी भी रोग में प्राकृतिक उपचारों से बहुत लाभ होता है। रोग के लक्षण जल्द दूर होते हैं, विकार शरीर के बाहर निकल जाते हैं और फिर शरीर नया और तरो-ताजा हो जाता है।

बच्चों का प्राय: वही इलाज है जो बड़ों का है। खयाल इतना रहना चाहिए कि बच्चे की सहन-शक्ति भर सभी बातें हों। बच्चों के कुछ खास रोग हैं, जिनका इलाज यहाँ लिखा जायगा। और सब रोगों में वही सिलसिला चलाना चाहिए, जो बड़ों के लिए लिखा गया है। पहले के खंडों को पढ़िए।

पहले माता का इलाज—

छोटे बच्चों की चिकित्सा के संबंध में यह खयाल रखना चाहिए कि अगर वह बच्चा सिर्फ अपनी माँ या किसी और स्त्री का दूध पीता है तो बच्चे के इलाज के साथ-साथ दूध पिलाने वाली का

इलाज भी होना चाहिए। नहीं तो उधर बच्चे के शरीर से विकार निकाला जायगा और इधर फिर पिये हुए दूध के साथ हर रोज़ नया विकार बच्चे के शरीर में प्रवेश करेगा। दूध पिलाने वाली के अगर बुखार आता हो या कोई संक्रामक रोग हो तो कुछ दिन बच्चे का दूध पीना छुड़वा कर किसी दूसरी स्वस्थ स्त्री या गाय-बकरी का दूध पिलवाने का प्रबंध करना चाहिए। साथ ही स्त्री का मुनासिब (उचित) इलाज इस किताब में पहले बताये ढँगों से करना चाहिए। अगर दूध पिलाने वाली के ऐसी कोई बीमारी न हो, सिर्फ साधारण कब्ज़ या पेट की गड़बड़ी या खून की साधारण गर्मी हो तो उसको अपना इलाज खान-पान में हेर-फेर करके कर लेना चाहिए। ऐसी स्त्रियों के लिए नीचे दिया हुआ प्रोग्राम ठीक होगा :—

(१) पहले तीन रोज़ सुबह, दोपहर, शाम फलाहार। एक बार एक तरह का फल इच्छा भर खाना चाहिए। ऊपर से हर भोजन के साथ पावभर दूध (अगर कब्ज़ रहता हो) या मठा (अगर पतले दस्त आते हों) थोड़े शुद्ध शहद के साथ पिया जा सकता है। कुछ न हो तो किशमिश का प्रयोग किया जा सकता है। केले को छोड़कर सभी ताज़े मीठे फल खाये जा सकते हैं। सुबह में पाख़ाना और मुँह-हाथ धोने से छुट्टी पाकर पेड़ू पर गीली मिट्टी की पट्टी, ३० मिनट के लिए, और उसके बाद आध सेर या तीन पाव गुनगुने पानी का एनीमा लेकर पेट साफ़ करना चाहिए। फिर तीसरे पहर पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी रखनी चाहिए।

इस समय एनीमा की खास जरूरत नहीं है। भोजन और मिट्टी की पट्टी और एनीमा में कम से कम एक घंटे का अंतर रहना चाहिए।

(२) इन तीन दिनों के बाद एक हफ्ते के लिए सुबह में फल-दूध या मठा, दोपहर में रोटी या चावल और सादी साग-सब्जी की भाजी और रात में छिलकेदार साबुत मूँग या मसूर की दाल और एक दो तरह की वैसी ही भाजी खानी चाहिए। मसूर की साबुत दाल से दूध अच्छी मात्रा में और अच्छा बनता है। छिलकेदार दाल से डरने की जरूरत नहीं। रोटी-दाल भरसक एक साथ न खाई जाय।

एक समय मिट्टी की पट्टी और एनीमा पहले की तरह जारी रहेंगे।

(३) इस हफ्ते के बाद मिट्टी की पट्टी और एनीमा बंद कर देना चाहिए। भोजन की विधि वही रहे, लेकिन अगर इच्छा हो तो दोपहर में रोटी या चावल, थोडी सी साबुत मूँग या मसूर की दाल और भाजी और रात में सिर्फ रोटी-भाजी लेनी चाहिए। सुबह का फल-दूध या सिर्फ फल या सिर्फ दूध या मठा जारी रहे।

इस उपचार से दूध पिलाने वालों का शरीर (अगर कोई सख़्त बीमारी नहीं है तो) एक हफ़्ते में ही भला-चंगा हो जायगा और उसके दूध से बच्चे को कोई खराबी न होगी।

बच्चों के कुछ खास रोगों के इलाज—

जैसा ऊपर कहा गया है, बच्चों के कुछ खास रोग होते हैं। उनका इलाज यहां बताया जाता है। अगर इनके अलावा और भी कोई रोग हो जाय तो आशा है कि जिन पाठकों ने इस किताब को अच्छी तरह पढ़ा है वे उसका भी उचित इलाज उपवास, रसाहार, फलाहार, मिट्टी इत्यादि के प्रयोग और एनीमा-प्रयोग से अच्छी तरह कर लेंगे। जैसा कि बार-बार कहा जा चुका है, सभी रोग जड़-मूल में एक हैं और इसलिए उनके इलाज का तरीका भी एक ही है। मामूली हेर-फेर से किसी भी रोग का इलाज किया जा सकता है।

सूखा रोग

यह रोग छोटे बच्चों में बहुत प्रचलित है। इसे मिठना भी कहते हैं। इसमें बच्चा सूखा-साखा, कमजोर, दुबला, पीला और मिजाज का चिड़चिड़ा हो जाता है। इसमें पहले हड्डियाँ कमजोर रहती हैं, पर आगे चलकर शरीर के सभी अंग कमजोर पड़ जाते हैं। रीढ़ की हड्डी भी झुक सी जाती है और टांगें टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती हैं। कभी कभी बुखार रहता है और पतले फटे दस्त भी आते हैं। बहुत बच्चों की जान इस बीमारी से जाती है।

इसके कई तरह के इलाज भी निकले हैं। बच्चों की पीठें दागी जाती हैं और झाड़-फूंक भी होती है। किसी-किसी में अगर ऊपरी लाभ होता भी है तो बच्चा सदा के लिए कमजोर हो जाता है।

इस रोग का अचूक इलाज नीचे दिये उपायों से किया जा सकता है :—

(१) अच्छे दूध का इन्तजाम।

(२) दूध के साथ साथ अनार या सन्तरे का थोड़ा सा रस देना। अगर बच्चा बड़ा है तो फल के टुकड़े भी दिये जा सकते हैं। जब कभी शहद के साथ नीबू का रस भी चटाना चाहिए।

(३) हर रोज पेड़ू पर एक समय या दोनों समय मिट्टी की हल्की पट्टी रखना चाहिए। अगर कब्ज रहे तो एनीमा-प्रयोग।

(४) हर रोज हल्की धूप में बच्चे की मालिश की जाय।

(५) कुछ घंटे बच्चे के नंगे शरीर मे हवा और रोशनी हर रोज लगने दी जाय।

(६) अगर बन सके तो बच्चे को ३-४ मिनट के लिए कुछ दिनों तक हर रोज पेड़ू-नहान देना चाहिए।

पसली चलना

अच्छे दूध का इन्तजाम, फलों के रस का प्रयोग, पेड़ू पर मिट्टी और अगर कब्ज रहे तो एनीमा– बस, इन्हीं बातों से यह तकलीफ भी जाती रहती है। तकलीफ की हालत में दिन भर मे कई बार मिट्टी की पट्टी ढाई ढाई या तीन-तीन घंटे पर दी जा सकती है।

हाथ-पैरों का खिंचना

इस बीमारी में बच्चों के हाथ-पैर सिकुड़ते हैं और कभी-कभी बे-होशी सी भी हो जाती है। यह बीमारी भी अक्सर घातक

होती है, लेकिन शुरू से ही ठीक उपायों के किये जाने पर दूर चली जाती है।

यह हाजमे की खराबी से ही होती है। दूध या फलों के रस का अच्छा प्रबंध रहना चाहिए। लेकिन अगर बीमारी का दौरा जोरदार या बार-बार हो तो बच्चे को सहने लायक (बहुत नहीं, लेकिन काफी) गर्म पानी में ५ से १० मिनट तक बैठाना चाहिए। गर्दन के नीचे का सारा शरीर पानी में रहे। पानी कितना गर्म हो, इसे अच्छी तरह देख लो। दौरे के समय फल का रस भी न देना चाहिए। सिर्फ गुनगुना पानी दिया जा सकता है। एनीमा से पेट जरूर साफ करते रहना चाहिए। बीमारी के शुरू होते ही अगर बच्चे को एक-डेढ़ दिन सिर्फ गर्म पानी पर रखा जाय, कुछ दिनों तक हर रोज गर्म पानी में बैठाया जाय और एनीमा से पेट साफ कर दिया जाय तो यह बीमारी जाती रहती है।

गर्दन में सूजन

इसे अंगरेजी में 'मम्स' (mump-) कहते हैं। इस में कौड़ियों की त्रिभुजाकार सूजन गर्दन में दोनों ओर होती है। सूजी हुई कौड़ी की ऊपरी नोक कान के सामने रहती है, दूसरी नोक कन्धे की तरफ और तीसरी कान के पीछे। कभी-कभी बुखार भी रहता है। मुँह में लार कम हो जाती है और खुश्की (सूखापन) मालूम होती है।

रोगी को कम से कम दो दिन सिर्फ फल (हो सके तो सन्तरे)

के रस पर रखना चाहिए और हर रोज एक या दो बार एनीमा देना चाहिए। जहाँ सूजन है वहाँ दिन में तीन-चार बार गर्म और ठंडी सेंक देनी चाहिए—दो-तीन लगातार गर्म और तब एक ठंडी। इस तरह एक बार की सेंक होगी। जब सूजन बिल्कुल जाती रहे और बच्चा भोजन निगल सके तो एक-दो दिन सिर्फ फल पर रखकर नियमित भोजन शुरू कराना चाहिए।

कुकुर खांसी

यह एक बार बहुत देर तक चलने वाली और परेशान करने वाली खाँसी है। अंगरेजी में इसका नाम 'हूपिंग कफ' (whooping cough) है।

पहले रसाहार और एनीमा-प्रयोग, फिर फलाहार और तब नियमित आहार और साथ-साथ दिन में दो तीन बार या जब-जब खासी उठे गर्दन और सीने के चारों तरफ गीली पट्टियां (गर्म कपडे से ढकी) से इस रोग का इलाज करना चाहिए। दूध तब तक न दिया जाय जब तक कि नियमित भोजन न शुरू हो।

डीप्थिरिया (DIPTHERIA)

यह एक भयानक रोग है, जिस से गलत इलाज के कारण बहुत से बच्चों की जानें जाती हैं। इसमें बुखार और गले की खराश रहती है, कमजोरी जल्द बढती है और गले की कौडियों पर टान्सिल (tonsil) की तरह सूजन आ जाती है। साथ ही

इन कौड़ियों पर एक भूरी या बादामी रंग की झिल्ली, जिसके बाहरी किनारे पर सुर्खी रहती है, फैल जाती है। यह झिल्ली बढ़कर अक्सर गले के नीचे और ऊपर तालू की तरफ़ या नाक में आ जाती है। इसमें कमज़ोरी से बच्चों की जान निकल जाती है। इसके आराम होने में ४-५ दिन से लेकर तीन हफ़्ते लग सकते हैं।

इसका इलाज भी और बीमारियों के इलाज की तरह है, लेकिन इसमें कुछ विशेष सावधान होना पड़ता है। जब तक बुखार रहे तब तक उपवास ज़रूरी है। अगर सन्तरा या ऐसे ही किसी फल का रस दिया जाय तो दिन में सिर्फ़ दो-तीन बार और थोड़ी मात्रा में। दूध बुखार की हालत में हर्गिज़ न दिया जाय। उपवास या रसाहार के दिनों में दिन में दो बार हल्का एनीमा देना चाहिए। साथ ही दिन में एक बार सारे शरीर की गीली पट्टी और तीन-तीन घंटे पर गर्दन की गीली पट्टी भी देनी चाहिए। इस बीमारी में विषैले पदार्थ मुँह में लार के साथ निकलते हैं, जिनके घोटने से खराबी होती है। इस लिए रोगी को चित लेटने न देना चाहिए। वह दाहिनी या बाईं करवट लेटे और उसके मुँह में दाँतों के पास-पास थोड़ी साफ़ रूई इस तरह रखनी चाहिए कि लार उसी में जज़्ब होती (सूखती) जाय। रूई को दो-दो घंटे पर बदलते रहना चाहिए। बुखार जब दूर हो जाय तो कुछ दिन रोगी को फलाहार पर रखकर नियमित भोजन पर लाना चाहिए।

पेट में जोंक (केंचुए)

अक्सर बच्चों के पेट से केंचुए (जोंक) निकलते हैं। ये छोटे होते हैं, लेकिन कभी कभी बड़े केंचुए भी निकल पड़ते हैं। इस को दूर करने के लिए रोगी को सात आठ दिन सिर्फ फलों पर रख कर फिर नियमित भोजन पर लाना चाहिए। हलवा, पूरी इत्यादि कुछ दिनों तक न खाना चाहिए।

सोते में पेशाब करना

इसको दूर करने के लिए भी पहले सात-आठ दिन फलाहार और एनीमा का सहारा लेना चाहिए। साथ ही ३-४ मिनट का पेड़ू-नहान या दो मिनट के लिए ठंढा बैठक नहान हर रोज़ देना चाहिए।

दांत निकलना

छोटे बच्चों के दांत निकलने के समय अक्सर बहुत सी तकलीफें होती हैं। लेकिन अगर माता अपने स्वास्थ्य का ख़याल रखे और बच्चे को अच्छी तरह रखे तो बहुत थोड़ी या कुछ नहीं तकलीफ होती है। तकलीफ होने पर पेड़ू पर मिट्टी और हल्का एनीमा, साथ ही उचित पथ्य से काम लेना चाहिए।

स्त्रियों का स्वास्थ्य

स्त्री-रोगों के कारण; स्त्री-रोगों के इलाज, गर्भावस्था; स्त्रियों के लिए कसरतें।

स्त्री-रोगों के कारण

इन दिनों स्त्री-रोग या औरतों की बीमारियाँ इस तरह फैल रही हैं और उनके कारण इतनी जानें जाती हैं कि उसे सोच कर चिन्ता हो जाती है। इसके बारे में एक दिलचस्प बात यह है कि यह बीमारियाँ ज्यादातर शहर की औरतों, अमीर घराने की औरतों और उन औरतों के होती हैं, जो कुछ भी काम नहीं करतीं और काहिली की जिन्दगी बिताती हैं। देहात की औरतों को इन बीमारियों से बहुत कम दुख भुगतना पड़ता है और देहात की उन नीची कौम (जाति) की औरतें, जो खुद से सभी काम-काज करती हैं और जिन्हें अपने धन्धों के लिए घर के बाहर निकलने का भी मौक़ा मिलता है, स्त्री-रोगों से बिल्कुल बरी (मुक्त) सी रहती हैं। इन औरतों को न तो स्त्री-रोग सताते हैं और न बच्चा जनने के समय उतनी तकलीफ होती है जितनी कि और औरतों को। शहर की औरतों को पढ़ी लिखी दाइयों और मशहूर लेडी डाक्टरों की देख-रेख में रहते हुए भी बच्चा जनने के बाद बहुत सी बीमारियाँ होती हैं और बहुतों के तो जान पर ही बीतती है। देहात की औरतें बच्चा जनने के बाद की तकलीफ से बहुत कम, नहीं के बराबर, मरती हैं। उनके लिए वही पुरानी देहाती चमाइनें रहती हैं, फिर भी वे ख़तरे से बची रहती हैं। इससे

भी ज्यादा ताज्जुब (आश्चर्य) की बात यह है कि जानवरों को बच्चा जनने के बाद का खतरा बिल्कुल नहीं होता। इन दिलचस्प बातों पर अच्छी तरह गौर करने से स्त्री-रोगों का सच्चा कारण मालूम हो जायगा।

स्त्री-रोगों के खास कारण —

(१) औरतों की खराब और कमजोर तनदुरुस्ती, जो गलत रहन-सहन और आहार-विहार से होती है। कसरत की कमी या बिल्कुल अभाव।

(२) बीमारियों में गलत इलाज—जहरीली दवाओं के इस्तेमाल से बीमारियों का अन्दर दबाया जाना, जिसका असर स्त्रियों के मासिक धर्म पर पड़ता है। फिर मासिक धर्म की बीमारियों के दिनों में भी दोषपूर्ण चिकित्सा, जिसका असर और भी बुरा होता है। गर्भाशय में नश्तर या किसी प्रकार भी छुरी और खरोचने वाले यंत्रों का इस्तेमाल।

सच पूछिए तो स्त्री-रोगों के भी वही कारण हैं, जो और रोगों के हैं। अगर भोजन ठीक रहे, अगर काफी कसरत की जाय, अगर काफी साफ हवा फेफड़े में जाय और शरीर में लगे, अगर आराम के लिए काफी समय मिले, अगर ठीक पोशाकें (बहुत कसी नहीं) पहनी जांय और अगर मन के भाव और विचार ठीक रहें तो स्त्री-रोग कदापि न हो।

हम जानते हैं कि हमारी औरतों की हालत कितनी गिरी हुई है, जिसका खास कारण है हम मर्दों की ज्यादती, अन्याय।

हम न तो उन्हें पढ़ाते हैं और न संसार देखने और बातें समझने का मौक़ा देते हैं। हम ख़ुद थोड़ा सा काम करते हुए सुख-चैन के दिन बिताते हैं पर उन से बुरी तरह घर के सभी काम-धन्धे करवाते हैं और उन्हें काफी आराम करने नहीं देते। हम मोह से मिला हुआ झूठा प्रेम दिखाते हैं पर उनकी सच्ची परवाह नहीं करते। इन दिनों बातें कुछ बदली जरूर हैं, फिर भी बहुत कुछ सुधार की गुंजाइश है। स्त्री-जाति को ऊँचा उठा कर देश, जाति का सच्चा कल्याण करने के लिए हमें बहुत कुछ करना होगा, और बिना उन्हें ऊँचा उठाये हमें न तो निजी पारिवारिक सुख मिलेगा और न आने वाली पुश्तें ही ठीक हो सकेंगी।

तीन बातें—

स्त्री-रोगों के समझने के लिए तीन बातों का समझना ज़रूरी है।

(१) औरतों की जननेन्द्रिय और उसके कल-पुर्जे बहुत नाज़ुक हैं। उनके साथ अनुचित छेड़-छाड़ या नश्तर के औज़ारों का व्यवहार बहुत हानिकारक है।

(२) यह कल पुर्जे सारे शरीर के अँग, ज़रूरी हिस्से हैं और अपने पास के चारों तरफ़ के कल-पुर्जों से बहुत सरोकार रखते हैं। अगर उन कल-पुर्जों में गड़बड़ी होती है तो उसका बुरा असर जननेन्द्रिय के कल-पुर्जों पर पड़ता है। उदाहरण के लिए यह कल-पुर्जे, ख़ास कर गर्भाशय, बड़ी आँतों के नीचे और छोटी आँतों के सामने पड़ते हैं। अगर आँतों में वायु या गैस

है या अगर कब्ज के कारण आँतों में मल भरा है तो ऐसी आँतों का दबाव गर्भाशय पर बराबर पड़ता है। इस दबाव से गर्भाशय कभी नीचे की ओर और कभी आगे की ओर झुकता है, और इस तरह कुछ समय के बाद अपनी जगह से टल जाता है। इससे गर्भाशय का अपने स्थान से टल जाना और दूसरे बहुत से रोग होते हैं, पर उन रोगों को दूर करने के लिए इस सभ्यता और विज्ञान (साइन्स) के जमाने में विषैली दवाओं और छुरी का प्रयोग किया जाता है, जो और भी बुरा साबित होता है।

(३) मासिक धर्म से स्त्रियों के शरीर का बहुत सा अन्दरूनी विकार हर महीने निकल जाता है। स्त्रियों के लिए यह एक बड़े फायदे की बात है, लेकिन खेद यह है कि शायद सैकड़े ९० औरतों के मासिक धर्म ठीक ठीक नहीं होता।

जब हम इन बातों को अच्छी तरह समझेंगे और जब जननेन्द्रिय और उसके कल-पुर्जों को सारे शरीर का एक अँग, उससे अलग नहीं, समझेंगे तभी हम अपनी औरतों को स्त्री-रोगों से बचाने में समर्थ हो सकेंगे।

स्त्री-रोगों के इलाज

पहले दी हुई बातों को समझना—

स्त्री-रोगों की चिकित्सा करने के लिए यह जरूरी है कि इस किताब में दी हुई पहले की सारी बातें अच्छी तरह समझी जाँय, क्योंकि, जैसा कि बार-बार कहा गया है, अचूक-चिकित्सा-विधि से रोगों को जड़-मूल से दूर करने के लिए सारे शरीर को शुद्ध, पुष्ट और परिष्कार करना होता है, और ऐसा कर सकने के लिए उपवास, रसाहार, फलाहार, ठीक ठीक श्वास-क्रिया, मिट्टी, पानी और धूप के प्रयोग कसरत और आराम से काम लेना होता है। इसलिए पाठक या पाठिकाएँ इनसे संबंध रखने वाले नियमों को अच्छी तरह समझें, और तब वे खुद ही स्त्री-रोगों की उचित चिकित्सा कर ले सकेंगी। फिर भी स्त्री-रोगों की चिकित्सा पर यहां इशारा दिया जाता है।

मासिक धर्म—

जैसा कि बताया जा चुका है, मासिक धर्म से स्त्रियों के शरीर के विकार हर महीने निकल जाया करते हैं। गर्भावस्था को छोड़ कर इसका हर महीने ठीक-ठीक हो जाना बहुत जरूरी है। 'ठीक-ठीक' होने का मतलब है कि मासिक धर्म हर २८ वें दिन शुरू हो जाय, उस समय कोई खास तकलीफ—कमर या पेट में

दर्द या कोई और रोग—न हो, खून का रंग साधारण चमकीला लाल हो, उसकी मात्रा न बहुत कम न ज्यादा हो और ३-४ रोज़ रहकर वह बंद हो जाय। गलत रहन-सहन और गलत आहार-विहार के कारण अक्सर ऐसा नहीं होता और तब और बहुत सी बीमारियाँ शरीर को घर दबाती हैं। इसलिए जीवन-संबंधी सभी बातों पर उचित ध्यान रखते हुए मासिक धर्म में कुछ भी गड़बड़ी न होने देना हर स्त्री का कर्त्तव्य है।

मासिक धर्म के समय में कोई काम-काज भरसक न करना चाहिए। आराम करना या हल्के कामों में लगे रहना इस अवस्था में लाभदायक होता है। इसमें खाना भी हल्का और सात्विक खाना चाहिए—एक समय साधारण रोटी या चावल और तरकारी और दूसरे समय फल और दूध। हाँ, अगर उन्हीं दिनों कोई नई तकलीफ खड़ी हो जाय तो फलों के रस या सिर्फ दूध पीकर ही रहना चाहिए। कब्ज दूर करने के लिए सहने लायक गर्म पानी का एनीमा लिया जा सकता है। मासिक धर्म के दिनों में नहाना न चाहिए। गुनगुने पानी से बंद कमरे में बदन पोंछा जा सकता है।

स्त्रियों के बहुत से रोग मासिक धर्म से ही संबंध रखते हैं। उनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

मासिक धर्म का बंद हो जाना

इसे अंगरेजी में 'अमेनोरिया' (amenorrhoea) कहते हैं। गर्भावस्था में लगभग साल भर के लिए और फिर ४०-४५ की

उम्र में बराबर के लिए मासिक धर्म का बन्द हो जाना स्वाभाविक है। लेकिन इन अवस्थाओं को छोड़कर अगर मासिक धर्म रुक जाय तो उसे रोग समझना चाहिए। इसके रुकने के इन नीचे दिये कारणों को दूर करना चाहिए :—

(१) शरीर की कमज़ोरी और खून की कमी।

(२) बहुत चिन्ता, शोक, डर और इसी तरह के दिल को चिन्तित और उद्विग्न करने वाले भाव।

(३) गर्भाशय की बनावट की खराबी और उसका अपनी जगह से टल जाना। इसका विवरण आगे मिलेगा।

(४) बहुत कसी पोशाक और साड़ी का पहनना, खासकर जिससे कमर और उसके आस-पास के अँग कसे रहते हों।

इन बातों को दूर करने से ही यह रोग दूर हो जायगा। इलाज के लिए इन बातों पर ध्यान देना चाहिए :—

(१) अगर रोगी बहुत कमज़ोर न हो तो तीन दिन रसाहार और एक या दोनों समय एनीमा-प्रयोग।

(२) फिर सात दिन फलाहार।

(३) इसके बाद सात दिन तक फल के साथ-साथ थोड़ा दूध या मठा भी पीना चाहिए।

इन दिनों भी एनीमा-प्रयोग जारी रहेगा। अगर रोगी कमज़ोर है तो नं० (१) को छोड़ देना चाहिए।

(४) फिर नियमित भोजन, जैसा कि इस किताब में पहले बताया गया है।

(५) शक्ति भर टहलना या कसरत या दोनों और सुबह-शाम गहरी सांस का लेना।

(६) सुबह को साधारण नहाना।

(७) फल और दूध शुरू करने के बाद हर हफ़्ते तीन-चार बार सुबह में या तीसरे पहर गर्म और ठंडा बैठक नहान। अच्छा हो अगर बीच-बीच में पांच सात दिन लगातार काफ़ी लेकिन सहने लायक गर्म पानी में पेडू-नहान लिया जाय। इस नहान के लिये टब में ठंडे पानी के बदले काफ़ी गर्म पानी भरना चाहिए। पानी जितना ज्यादा गर्म रहे लाभ होगा लेकिन इतना न हो कि बदन जल जाय। टब में पैरों को बाहर निकाल कर पेडू-नहान की तरह बैठना चाहिए, पेडू मलने की जरूरत नहीं। बैठने का समय ५-७ मिनट से १५ मिनट तक शक्ति के अनुसार हो। पानी बराबर गर्म रहे। इसके लिए थोड़ी थोड़ी देर के बाद टब में से २-३ लोटे पानी निकाल कर उसके बदले २-३ लोटे खूब गर्म पानी डालते रहना होगा। टब से निकलने के बाद शरीर को अच्छी तरह पहले मामूली गीले और तब सूखे तौलिए से पोंछ लेना चाहिए। अगर रात में सोने के पहले यह नहान लिया जाय तो अच्छा हो, लेकिन भोजन और नहान में कम से कम दो घंटे का अंतर जरूर हो।

(८) जब-कभी धूप-नहान और पन्द्रह दिन में एक बार भाप-नहान। इन नहानों के नियमों को अच्छी तरह समझ लीजिए।

नोट—(१) अगर मासिक-धर्म शुरू हो जाय तो सभी

नहान बंद कर देना चाहिए। कब्ज को दूर करने के लिए एनीमा ले सकते हैं।

(२) अगर जरूरत हो तो दो-ढाई महीने के बाद एक बार फिर ५-७ दिन के लिए सिर्फ फलाहार करके नियमित भोजन पर आ जाना चाहिए।

कष्ट के साथ मासिक

अंगरेजी में इसका नाम 'डिसमिनोरिया' (dysmenorrhoea) है। इस रोग में मासिक धर्म के पहले या उन्हीं दिनों या बाद में या कुछ पहले से कुछ बाद तक कमर और जांघ में हल्का या कष्टदायक दर्द रहता है।

अगर मासिक धर्म के २-३ दिन पहले दर्द शुरू हो तो समझना चाहिए कि स्नायु-संस्थान की कुछ गड़बड़ी है या डिम्ब-संबंधी खराबी है।

अगर मासिक शुरू होने के ठीक पहले दर्द शुरू होता हो तो उसका कारण योनि-द्वार का तंग होना या उसके अंदर की कुछ रुकावट है। पहली हालत में अक्सर वैवाहिक जीवन बिताने के कुछ दिन बाद तकलीफ जाती रहती है, लेकिन अगर रुकावट है तो अनुभवी (तजुर्बेकार) चिकित्सक से सलाह लेने की जरूरत पड़ती है।

अगर खून निकलने की अवस्था में ही या बाद भी दर्द हो तो उसका कारण योनि-द्वार की सूजन और ज्वरावस्था है।

अगर मासिक शुरू होने के पहले से बाद तक दर्द रहे तो

समझना चाहिए कि स्नायु की गड़बड़ी के साथ-साथ योनि-द्वार की सूजन भी है या जितने भी कारण ऊपर बताये गये हैं सभी थोड़ी-बहुत मात्रा में मौजूद हैं।

इस कष्ट को दूर करने के लिए पहले तो ऊपर बताये उपायों से (जो रुके मासिक धर्म के लिए बताये गये हैं) शरीर को तनदुरुस्त बनाने पर ध्यान देना चाहिए। उपवास, रसाहार, फलाहार, नियमित भोजन, कसरत इत्यादि से जब शरीर अच्छी हालत में हो जायगा तो तकलीफ का कारण बहुत कुछ दूर हो जायगा। इस में गर्म और ठंडे बैठक नहान से बहुत लाभ होता है। अगर दर्द मासिक धर्म के पहले शुरू हुआ हो तो इस नहान के अलावा (अतिरिक्त) दर्दवाले स्थान पर दिन-रात में दो-तीन बार गर्म और ठंढी सेंक भी देनी चाहिए। एक बार में दो गर्म एक ठंढी, फिर दो गर्म एक ठंढी, यानी कुल छः सेंक काफी होगी। खून बंद होने के बाद भी अगर दर्द रहे तो ऐसा ही करना चाहिए, लेकिन खून निकलने के दिनों में दर्द को शान्त करने के लिए बैठक नहान न लेकर सिर्फ इन सेकों से ही काम लेना चाहिए। पेड़ू में दर्द रहने से मिट्टी की गर्म पट्टी भी आराम पहुँचाती है। नियमित इलाज कई महीनों तक जारी रखना होगा।

एक तरकीब यह भी अच्छी है कि मासिक शुरू होने के पाँच-सात दिन पहले तीन दिन रसाहार और दो तीन दिन फलाहार पर बिताये जायँ।

इस रोग में सारे शरीर या स्थानीय (मुकामी) धूप या भाप-

नहान से भी बहुत लाभ होता है। स्थानीय धूप-नहान के लिए दर्द वाले स्थान को केले के पत्ते से ढक लेना चाहिए।

इन सभी बातों के लिए एक कार्यक्रम बना लेना जरूरी है।

बहुत खून का आना

मासिक धर्म के समय बहुत ज्यादा खून का शरीर से निकलना अँगरेजी में 'मेनोरेजिया' (menorrhagia) कहा जाता है। अपने शरीर की अवस्था के अनुसार किसी किसी के ज्यादा खून आता ही है, लेकिन अगर उससे कमजोरी बढ़े या और कोई गड़बड़ी हो तो उसे रोग समझना चाहिए और उसका उचित इलाज करना चाहिए। खेद है कि इस रोग का इलाज इन दिनों प्रचलित है वह उचित नहीं है। उस में सिर्फ खून के अधिक बहाव को रोकने की कोशिश की जाती है। यह समझने की बात है कि अपने अन्दर अधिक विकार रहने के कारण शरीर उस विकार को दूर करने के लिए ज्यादा खून निकालता है। इस लिए इलाज खून की मात्रा को कम करने या रोकने के लिए नहीं बल्कि शरीर को शुद्ध और स्वस्थ करने के लिए होना चाहिए।

इस रोग के ठीक इलाज की विधि वही है, जो 'मासिक धर्म के बंद होने' की अवस्था के लिए बताई गई है। इस में भी उसी तरह उपवास, रसाहार, भोजन-सुधार और ताकत भर कसरत के सहारे शरीर के खून को शुद्ध और उसके सब अँगों को रोग-रहित और मजबूत किया जाता है। सिर्फ गर्म पानी के प्रयोग के बदले ठंडे पानी से ही इसमें काम लेना ठीक होता है। पाठक और

पाठिकाओं को याद रखना चाहिए कि गर्म पानी फैलाता है, सख्ती (कड़ापन) को दूर करता है, और ठंढा पानी सिकोड़ता है। पहले ठंढ लाते हुए फिर गर्मी लाता है। इस लिए जब खून के बंद होने, रुकने या कम होने की अवस्था हो तो गर्म पानी का और जब खून के बहाव के बढ़ने की अवस्था हो तो ठंडे पानी का प्रयोग करना चाहिए। साथ ही यह भी याद रखना चाहिए कि गर्म पानी दर्द को भी दूर करता है, लेकिन गर्म के बाद ठंडे पानी का भी प्रयोग जरूरी है, क्योंकि लगातार गर्म पानी के प्रयोग से कमजोरी बढ़ती है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए इस रोग में मेहन-नहान या ठंडे बैठक नहान से काम लेना चाहिए। हाँ, अगर बीच-बीच में कुछ दर्द या और कोई तकलीफ हो तो जैसा उचित हो वैसा करना चाहिए। इलाज कुछ महीनों तक एक निश्चित कार्यक्रम के अनुसार करना चाहिए।

अनियमित मासिक

अक्सर ऐसा भी होता है कि कभी एक महीने पर, कभी पन्द्रह दिन पर ही और कभी दो-ढाई महीने के बाद मासिक धर्म होता है। बताने की जरूरत नहीं कि इस गड़बड़ी को ठीक करने के लिए भी वही उपाय काम में लाने होंगे—रसाहार, फलाहार, भोजन-सुधार, एनीमा-प्रयोग, कसरत, आराम और अवस्था देखकर गर्म या ठंढे पानी का इस्तेमाल।

गर्भाशय का अपनी जगह से टल जाना

इसके नीचे दिये कारण हो सकते हैं :—

(१) आँतों में वायु-विकार और क़ब्ज़, जो पहले बताया जा चुका है।

(२) सारे शरीर की कमज़ोरी

(३) कसी पोशाक

(४) अक्सर नीचे की तरफ़ झुकना। किसी किसी काम-धंधे में बराबर झुककर काम करने को जरूरत होती है।

(५) कसरत के अभाव से पेडू की मांस-पेशियों की कमज़ोरी।

(६) कमज़ोरी में बहुत कसरत।

(७) बच्चा जनने के समय धाई की असावधानी और उसके बाद ग़लत रहन-सहन।

(८) स्त्री-रोगों में ग़लत इलाज।

इस रोग में कमज़ोरी और बहुत तरह की गड़बड़ी होती है। खेद है कि गर्भाशय को अपनी जगह पर लाने के लिए अक्सर नश्तर से काम लिया जाता है, जिस से आगे चलकर और भी गड़बड़ी बढ़ जाती है।

इस रोग के इलाज के लिए पहले उन्हीं साधारण नियमों से काम लेना चाहिए, जो ऊपर बताये गये हैं। एक अच्छे कार्यक्रम के अनुसार (पहले कुछ दिन फलाहार और एनीमा से पेट साफ़ करके) भोजन-सुधार के साथ-साथ नियमित ठंढे बैठक नहान से काम लेना चाहिए। कभी कभी गर्म और ठंढा बैठक नहान दोनों लिया जा सकता है। साथ ही कसरत भी बहुत जरूरी है। स्त्रियों

के लिए कसरतें आगे बताई जायगी। मर्दों के लिए जो कसरतें लेट या बैठकर करने की बताई गई हैं वे सब इस रोग के लिए लाभदायक हैं। कसरत पहले अन्दाज से शुरू कर के धीरे धीरे बढ़ानी चाहिए।

अक्सर गर्भाशय नीचे की ओर झुका होता है और कभी कभी अन्दर का भाग बाहर निकल कर लटक भी जाता है। ऐसी हालतों में लेटकर या बैठकर की जाने वाली कसरतों को ऐसे तख्त या पटरी पर करना चाहिए, जिसका पैताना कुछ ऊँचा उठा हो, जिससे सिर ज़रा निचाई पर हो जाय। इस तरह करने से पेड़ू की पेशियाँ तो मजबूत होंगी ही, साथ ही गर्भाशय धीरे-धीरे अपने ठीक स्थान पर आकर अटल हो जायगा। एक बात और है। जिसे यह रोग हो उसे कुछ महीनों तक ज्यादा चलना-फिरना न चाहिए। चलने-फिरने में गर्भाशय का झुकाव नीचे की तरफ होता है, जिस से रोग बढ़ेगा। साथ ही दिन में अक्सर लेटे रहना या टांगें फैलाकर बैठना, कभी-कभी टाँगों को सिर की सतह से ज़रा ऊँचा करके भी लेटना या बैठना चाहिए। इन दिनों बोझ उठाने या कोई भी मेहनत का काम न करना चाहिए। बड़े-बड़े शहरों के बाजार में एक तरह की पेटी मिलती है, जिसे अगरेजी में 'ट्रस' (truss) कहते हैं। इस ट्रस को चिकित्सा के दिनों में, जब तक पेड़ू की मासपेशियाँ मजबूत न हो जायँ, लगाना लाभदायक होता है।

अक्सर गर्भाशय टलकर पीछे या सामने झुका होता है। इन

सब बातों के समझने के लिए अनुभव चाहिए या किसी अनुभवी डाक्टर की जाँच से ये बातें जानी जा सकती हैं।

जब गर्भाशय पीछे झुका होता है तो कठिन क़ब्ज़, पेट और पाखाने के रास्ते में भारीपन, पीठ में दर्द इत्यादि लक्षण होते हैं। मासिक के समय ये लक्षण और कष्टकर (तकलीफ़ देने वाले) हो जाते हैं और खून का बहाव भी बहुत कष्टकर और ज्यादा मात्रा में होता है। ऐसी हालत में चिकित्सा के दिनों में और उपायों के साथ-साथ दिन में कभी-कभी पेट के बल पट लेटना (जितनी देर तक आराम से लेटा जा सके) लाभ पहुंचाता है। ध्यान रहे कि खाने के तुरंत बाद इस तरह न लेटना चाहिए।

जब गर्भाशय आगे को झुका होता है तो उस समय के खास लक्षण हैं बहुत पेशाब करने की इच्छा लेकिन पेशाब अच्छी तरह न कर सकना, कष्टकर मासिक और कभी-कभी बंध्यापन (गर्भ का न रहना)। इस हालत के इलाज में पीठ के बल अधिक लेटना चाहिए और कसरतों को सिर ज़रा नीचे पर कर के उसी तरह करना चाहिए जिस तरह कि पहले बताया गया है।

बताने की जरूरत नहीं कि रोग के जड़-मूल से जाने और तनदुरुस्ती बिल्कुल अच्छी होने में समय लगेगा।

गर्भाशय में जलन

गर्भाशय में जलन या ज्वरावस्था, जब कि दर्द और सूजन रहती है, के कई कारण हो सकते हैं—(१) शारीरिक कमज़ोरी

-रोग तो तभी जा सकते हैं, जब कि शरीर के विकार दूर कर दिये जायँ और शरीर तनदुरुस्त हो जाय। इस मामूली बात को समझते हुए चिकित्सक ऊपर बताये नियमों का पालन कर इन गुमड़ियों या फोड़ों को दूर करता है। इन हालतों में शक्ति के अनुसार पहले दो-तीन दिन का उपवास, फिर ५-७ दिन या और ज्यादा दिनों के लिए रसाहार और तब १५-२० दिनों के लिए फलाहार से बहुत जल्द लाभ होता है। उपवास और रसाहार के दिनों में पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी और एनीमा-प्रयोग और फलाहार के दिनों में मेहन-नहान या ठंढा बैठक नहान या गर्म और ठंढा बैठक नहान भी चलना चाहिए। साथ ही श्वास-क्रिया, कसरत और उचित आराम के सहारे ये रोग जरूर ही दूर किये जा सकते हैं।

हफ़्ते में दो-तीन बार जननेन्द्रिय का डूश (एनीमा) भी लिया जा सकता है। इसकी विधि वही है जो पाखाने के रास्ते से एनीमा लेने की। इसके लिए एनीमा-यंत्र के साथ-साथ एक और उसका आगे का छोटा सा हिस्सा मिलता है, जिस से यह डूश लिया जा सकता है। रोगी पीठ के बल सिर्फ़ लेट जाय, सिर को नीचा करने की जरूरत नहीं है। पानी के बर्तन को तीन फुट से ज्यादा ऊँचा नहीं रखना चाहिए। गुनगुना पानी ही बराबर काम में लाना चाहिए।

श्वेत-प्रदर

श्वेत-प्रदर या अंगरेजी भाषा में 'ल्युकोरिया' (Lucorrhoea) कमजोर तन्दुरुस्ती और कभी-कभी स्त्री-रोगों में गलत इलाज के

कारण होता है। इसको दूर करने के लिए ऊपर बताये साधारण उपायों से, जैसा कि अमेनोरिया (मासिक का बंद हो जाना) को दूर करने के लिए बताया गया है, शरीर को तनदुरुस्त बनाना चाहिए। फिर तो यह रोग ख़ुद ही चला जायगा। शुरू-शुरू में दस-पन्द्रह दिन के फलाहार और तब नियमित आहार, साथ ही साथ एनीमा-प्रयोग से काम लेना चाहिए। अगर कमज़ोरी बहुत नहीं है तो फलाहार के पहले तीन दिन का उपवास या रसाहार बहुत अच्छा होगा। फलाहार और नियमित आहार के बीच कुछ दिन फल और दूध पर रहना और भी अच्छा होगा। फल और दूध शुरू करने के समय से, या अगर ताकत हो तो सिर्फ़ फल शुरू करने के दो-तीन दिन बाद से ही गर्म और ठंडा बैठक नहान भी हफ़्ते में चार-पाँच दिन लेना चाहिए। साथ ही हफ़्ते में एक-दो दिन जननेन्द्रिय का डूश भी लेना चाहिए। इन सबों के साथ खुले में रहना, ताकत भर टहलना और कसरत करना, गहरी साँस लेना, जब-कभी धूप-नहान, इत्यादि बातों से न सिर्फ़ यह रोग दूर होगा बल्कि सारा शरीर नया और पहले से बहुत अच्छा हो जायगा।

× × × ×

कुछ और स्त्री-रोग भी होते हैं, लेकिन समझदार पाठक और पाठिकाएँ ऊपर बताये सिद्धान्तों के सहारे सभी रोगों का उचित इलाज कर सकती हैं।

अवस्था बदलना

'अवस्था बदलने' से मतलब ४०-४५ वर्ष की उम्र वाली स्त्री की उस अवस्था से है, जब कि मासिक बराबर के लिए बंद हो जाता है और गर्भ धारण करने की शक्ति जाती रहती है। तनदुरुस्त स्त्रियों को या उन स्त्रियों को, जो प्राकृतिक नियमों के अनुसार रहती हैं, इस तबदीली (परिवर्तन) के मौके पर कुछ भी तकलीफ नहीं होती। उनके शरीर में विकार नहीं रहता, जिससे, मासिक के बंद हो जाने से कोई गड़बड़ी भी नहीं होती। लेकिन जिन स्त्रियों के शरीर में विकार है और इधर मासिक के रूप में विकार निकलने का तरीका भी बंद हो गया तो उन्हें बहुत सी तकलीफों का सामना करना पड़ता है। अक्सर ऐसी स्त्रियाँ गलत इलाज के कारण और भी तकलीफ भोगती हैं। इस हालत में भी उन्हीं उपायों से काम लेकर, जो अमेनोरिया और ल्युकोरिया को दूर करने के लिए बताये गये हैं, शरीर शुद्ध और निरोग किया जा सकता है।

गर्भावस्था

मामूली बातें –

गर्भावस्था मे स्त्रियों को कई तरह की तकलीफें भुगतनी पड़ती हैं। बहुत से गलत विचार भी प्रचलित हैं, जिनसे उनकी निज की और होने वाले बच्चे की तकलीफें भी बढ़ जाती हैं। इनमे से एक गलत विचार है—जो चाहो वही खाओ और दो (खुद अपने और बच्चे) के लिए खाओ। यह मामूली समझने की बात है कि अगर स्त्री का स्वास्थ्य अच्छा रहेगा, अगर उसके शरीर में शुद्ध खून रहेगा, तो उसका अच्छा असर (प्रभाव) बच्चे के बनते हुए शरीर पर भी पड़ेगा। इसलिए गर्भावस्था में भोजन और रहन-सहन पर बहुत ध्यान देना चाहिए। इस विषय में भी देहाती स्त्रियों से, जो मामूली भोजन खाती हैं और खुले मे काम-काज करती हैं, और जानवरों से, जो बिल्कुल प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते हैं, शिक्षा लेनी चाहिए। उन्हे न तो गर्भावस्था में ज्यादा तकलीफ होती है और न बच्चा जनने के समय या बाद, साथ ही उनका बच्चा भी पुष्ट होता है। गर्भावस्था के संबंध मे एक दूसरा गलत विचार यह है कि गर्भवती स्त्री को किसी तरह का भी काम-काज या मिहनत न करनी चाहिए। यह ठीक है कि बहुत मेहनत या कसरत इस अवस्था में हानिकर (नुकसानदेह) हो सकती है,

लेकिन अपनी शक्ति भर काम-धंधे में लगा रहना और कसरत करना जरूरी है।

अक्सर लोग समझते हैं कि जन्म के समय बच्चा जितना बड़ा और वजनी (भारी) हो उतना ही वह तनदुरुस्त और अच्छा है। लेकिन ऐसा समझना भूल है। बड़ा और वजनी बच्चा जन्म से ही अपने शरीर में बहुत सा विकार (अपनी माता के शरीर से) लेकर पैदा होता है और आगे चलकर बराबर रोगी बना रहता है। साथ ही उसके जन्म के समय माता को भी कष्ट होता है।

कुछ ज़रूरी बातें—

गर्भावस्था के लिए कुछ ज़रूरी बातें नीचे दी जाती हैं। अगर इन पर ध्यान दिया जायगा तो माता और बच्चे दोनों की भलाई होगी।

(१) तनदुरुस्त पुरुष और स्त्री के ही बच्चे तनदुरुस्त हो सकते हैं। इसलिए ज़रूरी है कि वैवाहिक जीवन शुरू करने के पहले दोनों ही अपनी तनदुरुस्ती को ठीक कर लें और आगे भी उस पर ख़याल रखें।

(२) गर्भावस्था में भोजन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। सबसे अच्छा भोजन-क्रम होगा—सुबह में ७-८ बजे मौसम के ताज़े फल और कच्चा दूध; दोपहर में लगभग १२ बजे कच्ची सब्ज़ियों का सलाद, रोटी या चावल और एक या दो साधारण पकी तरकारियाँ—मुँह मीठा करने के लिए कुछ किशमिश या

मुनक्के या कभी-कभी घर की अच्छी बनी मिठाई, रात मे लगभग ७ बजे या पहले ही पकी तरकारी और थोड़ी सी छिलकेदार मूँग या मसूर की दाल और चार-छः अंजीर। यह क्रम अगर न चल सके तो नाश्ते मे ताजा फल या किशमिश के साथ थोड़ा कच्चा दूध; दोपहर में कच्ची सब्जी का सलाद और रोटी, दाल, तरकारी, और रात में रोटी, तरकारी और कुछ मुनक्के खाना ठीक होगा। बात यह है कि गर्भावस्था में भोजन के बारे में सावधान होना ही चाहिए।

इन दिनों (और बराबर ही) सफेद चीनी से बचना चाहिए। उस से बच्चा के बनते हुए शरीर पर बहुत बुरा असर पड़ता है और सूखा रोग (मिठक्का) होने का डर रहता है।

अच्छी तनदुरस्त गाय का ताजा कच्चा दूध इस अवस्था में माँ और बच्चे दोनों के लिए लाभदायक होता है। अगर सातवें महीने के बाद से सुबह के नाश्ते और रात के खाने दोनों ही में फल और ताजे कच्चे दूध का इस्तेमाल किया जाय तो बहुत अच्छा होगा।

(३) गर्भावस्था में कब्ज से बचना चाहिए। अगर भोजन ठीक है तो कब्ज न होगा। अगर कभी हो भी जाय तो मामूली गुनगुने (गर्म नहीं) पानी के हल्के एनीमा से पेट साफ कर लेना चाहिए, लेकिन जल्दी-जल्दी एनीमा न लेना चाहिए।

(४) गर्भावस्था मे हर रोज साधारण स्नान, शरीर को अच्छी तरह मल कर जैसा कि 'स्नान' वाले अध्याय में पहले

बताया गया है, जरूरी है। स्नान ठंडे पानी से ही करना चाहिए, लेकिन अगर पानी बहुत ठंडा रहता हो या ज्यादा सर्दी के दिनों में ठंडे पानी में थोड़ा गर्म पानी मिलाकर उसकी ठंड मार देनी चाहिए—पानी गर्म न हो। कमजोरी की हालत में सिर्फ बदन पोंछना चाहिए। स्नान बंद कमरे में किया जाय।

(५) गर्भावस्था में शक्ति भर कसरत—टहलना, घर का काम-काज करना या और कोई हल्की कसरत—जरूरी है। साथ ही हल्की हल्की श्वास-क्रिया भी जारी रखनी चाहिए। सातवें महीने के बीच से कसरत को धीरे-धीरे कम कर के आठवें महीने के बीच या अंत तक बिल्कुल बंद कर देना चाहिए।

कुछ भी कसरत न करने से बच्चा जनने की क्रिया कठिन हो जाती है। लेकिन अगर गर्भपात की आशंका हो या अगर पहले एक बार गर्भपात हो चुका हो तो गर्भपात के ठीक बाद वाली गर्भ-धारण की अवस्था में सावधान रहना चाहिए।

(६) गर्भिणी स्त्री को बराबर ही प्रसन्न-चित्त रहना चाहिए। घरवालों को भी देखना चाहिए कि उसे किसी तरह की उद्विग्नता या घबराहट न हो। उसे खुद भी आने वाले आनन्द के दिनों का सुख-स्वप्न देखना चाहिए।

(७) गर्भावस्था में अच्छी अच्छी पुस्तकों का, जिनमें वीरों देश-भक्तों, ईश्वर-भक्तों, दार्शनिकों और वैज्ञानिकों की कहानियां हों, पढ़ना और अच्छे अच्छे कामों में, जिनसे अपना और दूसरों

का उपकार हो, लगना होने वाले बच्चे के जीवन को प्रभावित करता है और इस तरह बहुत लाभदायक सिद्ध होता है।

(८) अक्सर गर्भावस्था के शुरूमें जी मचलाता है और उबकाई सी आती है। अगर यह तकलीफ मामूली रहे तो कुछ हर्ज नहीं, लेकिन अगर ज्यादा हो तो एक दिन फल के रस पर (दिन में तीन-चार बार) रह कर दो दिन फलों पर ही रह जाना चाहिए और पहले ही दिन से हल्का एनीमा भी लेना चाहिए। बहुत हल्के हल्के पेडू-नहान लेना भी (पानी बहुत ठंढा न हो) लाभदायक होता है।

प्रसव के बाद—

बच्चा जनने के बाद भी सावधान रहने की जरूरत होती है। अठारह घंटे के अन्दर भरसक कुछ न खाना चाहिए। उसके बाद दो-तीन दिन गर्म (उबला नहीं) दूध पर ही बिताना चाहिए। फिर दिन में एक बार रोटी या भात और तरकारी और दो बार दूध। इस तरह धीरे-धीरे नियमित भोजन पर आ जाना चाहिए। बच्चा जनने के बाद पहले-पहल दूध शुरू करने के पहले अक्सर थोड़े घी में हल्दी और गुड़ पतला-पतला पका कर दिया जाता है। यह बुरा नहीं है। फल का, खास कर मीठे अनार का रस, भी दिया जा सकता है। कब्ज से बचना चाहिए। कब्ज होने पर गुनगुने पानी का एनीमा ठीक होगा। बच्चा जनने के दूसरे या तीसरे दिन जननेन्द्रिय का डूश भी लेना चाहिए। डूश का पानी गुनगुने से कुछ ज्यादा लेकिन सहने लायक गर्म हो। जब अन्न खाने दो-तीन

दिन हो जाँय तब थोड़ा-थोड़ा टहलना शुरू कर देना चाहिए और फिर एक-डेढ़ हफ़्ते के बाद हल्की कसरत भी शुरू करनी चाहिए।

गर्भपात और उसके कारण—

गर्भ का गिरना दो तरह का होता है—(१) जान-बूझ कर गर्भ गिराना और (२) कुछ और कारणों से गर्भ का आप ही आप गिर जाना।

जान-बूझ कर गर्भ गिराना पश्चिम के देशों में बहुत प्रचलित है और अब अपने देश मे भी धीरे धीरे प्रचलित हो रहा है। इस राक्षसी काम के कई कारण हो सकते हैं, जिनमे दो-तीन खास (मुख्य) हैं—एक, परिवार को बहुत बढ़ने देने से रोकने की इच्छा, दूसरे, संतान की जिम्मेदारी को अपने कंधों पर बिल्कुल ही न उठाने की इच्छा, और तीसरे, विवाह-बंधन से न बंधे पुरुष और स्त्री के अनुचित संसर्ग के फल को प्रकट न होने देने की इच्छा। इसके चाहे जो भी कारण हो, मैं यह साफ साफ कहूँगा कि जान-बूझ कर गर्भ गिराना मनुष्य और प्रकृति (या यों कहिए कि मनुष्य और ईश्वर) दोनों के विरुद्ध (खिलाफ) और इस लिए महापाप है।

जो समय के पहले खुद ही गर्भपात होता है उसके भी कई कारण हो सकते हैं :—

(१) मुख्य कारण है स्त्री-पुरुष की कमजोरी।

(२) कमजोरी की हालत में स्त्री का बहुत कसरत या मेहनत का काम करना।

(३) गर्भ के दिनों में बहुत खाना और गर्म-गर्म चीजों का खाना।

(४) अपच से पतले दस्तों का आना, जोरदार जुलाब लेना।

(५) क़ब्ज।

(६) चिंता, शोक इत्यादि।

सच पूछिए तो कमजोरी ही इसका मुख्य कारण है।

गर्भपात का समय—

गर्भपात या तो वैवाहिक जीवन के बाद ही शुरू-शुरू में या उम्र ढलने पर, जब कि मासिक के बिल्कुल बंद हो जाने का समय नजदीक आता है, होता है। फिर गर्भ-धारण करने के शुरू में ही—दूसरे या तीसरे महीने में—या सातवें महीने में गर्भ गिरने की ज्यादा आशंका रहती है

किसी-किसी के गर्भ गिरने की आदत सी हो जाती है। अक्सर सुनने में आता है कि अमुक स्त्री का गर्भ तीन या पाँच बार गिरा, जिससे उसे बच्चा होता ही नहीं।

गर्भपात रोकने के उपाय—

जिन स्त्रियों के गर्भ अक्सर गिर जाता है उन्हें चाहिए कि एक बार गर्भ गिरने के बाद वे अपनी तनदुरुस्ती को पहले ठीक कर लें, और साथ ही उनके पति भी अपनी तनदुरुस्ती को ठीक करें, और तब वे दोनों वैवाहिक जीवन शुरू करें। यह मालूम होते ही कि गर्भ रह गया है स्त्री को बहुत सावधानी के साथ

रहना चाहिए। भोजन-सुधार के साथ-साथ मेहन-नहान या ठंडे बैठक नहान से जरूर लाभ होगा।

गर्भपात के समय —

गर्भपात होने के पहले थकावट, भारीपन और सुस्ती मालूम होती है। कभी-कभी मूर्च्छा या बेहोशी सी भी हो सकती है। पेडू भारी भारी सा मालूम होता है। पीठ, कमर और कमर के नीचे के हिस्सों में दर्द बना रहता है और फिर खून जारी हो जाता है। अगर खून जोर से और ज्यादा मात्रा में निकलता रहे और दर्द भी बढ़ता जाय तो गर्भपात का रुकना असंभव (ना-मुमकिन) ही है। लेकिन यह आशंका होते ही कि गर्भपात होने वाला है अगर ठीक-ठीक उपाय किये जायँ तो वह रुक सकता है। उपाय ये हैं :—

(१) स्त्री को एक हवादार कमरे में आराम से लेटना चाहिए। आराम करना जरूरी है। बिस्तर मुलायम और खाट झोल न हो। तख़्त (चौकी) पर एक मामूली दरी और कुछ हल्के कपड़े डाल कर लेटना अच्छा है। सिर थोड़ा ही ऊँचा हो। ओढ़ने के कपड़े हल्के और ऐसे हों, जिनसे बहुत गर्मी न पैदा हो।

(२) भोजन सिवा फलों के रस या बार्ली के पानी के साथ थोड़ा दूध के और कुछ न हो। भाजियों का रस भी दिया जा सकता है, लेकिन कोई चीज खट्टी या गर्म तासीर वाली न हो।

(३) पेडू पर कपड़े की गीली पट्टी (पेडू के चारों तरफ) तीन-तीन घंटे के बाद आध-आध घंटे के लिए रखी जाय। इस पर

गर्म कपड़ा लपेटने की जरूरत नहीं है। खून बंद होते ही पट्टी देने के समय को बढ़ा देना चाहिए।

(४) पाखाने के लिए बेड-पैन (bed pan) इस्तेमाल करना चाहिए। अगर स्त्री को दो-तीन दिन लेटी रहना पड़ा और पाखाना न हो तो मामूली ठंडे पानी का (जिसमें ठंढ न हो और गर्मी बिल्कुल ही न हो) हल्का एनीमा दिया जा सकता है।

(५) स्त्री को प्रसन्न रहना चाहिए। उसके परिवार वालों को चाहिए कि वे उसे चिन्तित न होने दें।

जब यह देखा जाय कि गर्भपात न रुकेगा तो पेड़ू पर मिट्टी की गीली पट्टी दिन में दो बार देनी चाहिए। कमजोरी से अगर सिर खाली मालूम हो या बेहोशी सी हो तो सिर और चेहरे को गीले कपड़े से बार-बार पोंछना चाहिए। कमजोरी की हालत में पैरों के पास गर्म पानी की बोतलों को रखना और गर्म कपड़े ओढ़ाना चाहिए। ऐसा प्रबंध (इन्तजाम) करना चाहिए कि खून से कपड़ा भीगा न रहे या सहूलियत से कपड़े को बदल देना चाहिए। जब गर्भ बिल्कुल गिर जाय तो एक दिन के बाद हल्के गर्म पानी से जननेन्द्रिय का डूश देना चाहिए। खून बंद होने के बाद दो-तीन दिनों तक सिर्फ दूध पर—दिन में दो-तीन बार—और फिर चार-पांच दिनों तक फल और दूध पर स्त्री को रखना चाहिए। इस दशा में भी आराम की बहुत जरूरत है।

गर्भ का बिल्कुल न रहना—

यह तो कुछ दैवी बात भी है, लेकिन अगर स्त्री और पुरुष

दोनों ही अपनी तनदुरुस्ती को बढ़ावें तो बहुतों के संतान-सुख ज़रूर हो सकता है। अक्सर लोग अपने पैसे और समय को बे-कार की झाड़-फूंक में खर्च करते हैं। अगर इसके बदले व उपवास, रसाहार, फलाहार, उचित आहार, ठंढा बैठक नहान मेहन नहान, कसरत और गहरी सांस से अपनी तनदुरुस्ती को ऊँचे दर्जे की हालत में ले आयें तो सैकड़े नब्बे निस्संतानों संतान हों।

स्त्रियों के लिए कसरत*

क्या स्त्रियों और लड़कियों के लिए भी कसरतें हैं ? कुछ लोग कहते हैं कि उन्हें कसरत न करनी चाहिए, क्योंकि कसरत से उनके शरीर में अस्वाभाविक कठोरता आती है और कुछ जरूरी शारीरिक यन्त्रों में खराबी आ जाती है।

स्त्रियों के लिए कसरतें जरूर हैं और उनके लिए भी कसरत उतनी ही जरूरी है जितनी कि पुरुषों के लिए, लेकिन पुरुषों की सभी कसरतें स्त्रियों के उपयुक्त नहीं हैं। चक्की पीसना, चावल छाँटना, घर के और काम-काज करना कसरत ही तो हैं, पर जहाँ ऐसी स्वाभाविक कसरतों का अवसर प्राप्त न हो वहाँ ऊपरी कसरतें जरूरी हैं। यह गलत धारणा है कि कसरत से स्त्रियों के शरीर की स्वाभाविक सुकुमारता जाती रहती है। फिर जीर्ण रोगों को दूर करने के लिए तो कसरतें बहुत जरूरी हैं।

यहाँ कुछ उपयुक्त कसरतें दी जाती हैं। इन कसरतों को पुरुष भी कर सकते हैं, पर स्त्रियाँ इनसे विशेष लाभ उठायेंगी। इन कसरतों से पूरा लाभ उठाने के लिए यह जरूरी है कि उनके साथ-साथ श्वास-क्रिया भी ठीक ठीक हो। नथने खोल कर धीरे

---

*लेखक-द्वारा संपादित 'सेवा' पत्रिका में लेखक का यह लेख प्रकाशित हुआ है।

धीरे सांस लेना और उन्हें धीरे धीरे बाहर निकालना, फिर कुछ दिन के बाद सांस रोकने का अभ्यास धीरे धीरे डालना—बस, 'श्वास-क्रिया' से यहाँ इतना ही अभिप्राय है।

अब कसरतों को चित्रों के सहारे समझिए—

(१) जमीन पर बैठो, हाथ पीछे जमीन पर रहेंगे, पैर दोनों सामने एक साथ रहेंगे। कमर और बीच की धड़ को, सिर पीछे की ओर करते हुए, पीछे के हाथों के सहारे उठाओ और सांस लेती जाओ। फिर पहली अवस्था में आ जाओ, सांस छोड़ते हुए। अब यह कसरत एक बार पूरी हुई। इस तरह ३-४ बार से धीरे-धीरे बढ़ाकर १२ बार करो।

(२) जमीन पर चित लेट जाओ, एड़ियाँ मिली होंगी, हाथ बगल में होंगे। अब एक घुटने को ऊपर उठाओ और तब दूसरे को—इस तरह साइकिल चलाने जैसा १० से २५ बार करो। कुछ दिनों के अभ्यास के बाद घुटने घुमाने से पहले सांस लेकर रोक लो और घुमाना बंद करने के बाद धीरे-धीरे सांस छोड़ दो।

(३) जमीन पर चित लेटो। घुटने ऊपर उठे होंगे और पैर जमीन पर होंगे। बाजुओं को सीने पर एक दूसरे के ऊपर मोड़ लो। अब बीच की धड़ को ऊपर उठाओ और फिर वापस ले जाओ। इस तरह इस कसरत को ६-८ बार से १२ बार करो। कुछ अभ्यास के बाद धड़ को उठाते समय सांस लो और जमीन पर वापस ले जाते हुए सांस निकालो।

(४) जमीन पर कसरत न० २ की तरह चित लेटो। फिर

बारी-बारी से एक-एक पैर को धीरे-धीरे ऊपर उठाओ और नीचे रखो। कुछ अभ्यास के बाद हर पैर को ऊपर उठाते समय सांस लो और उसे नीचे लाते समय सांस निकालो। इसे २ से ५ बार करो।

(५) कमर और पीठ के नीचे २ या ३ तकिया रखो और चित्र में बताये ढंग से लेट जाओ। फिर घुटनों को ऊपर उठाकर उन्हें पेड़ू पर मोड़ो और वापस ले जाओ। इस तरह ५ से १२ बार करो। कुछ अभ्यास के बाद घुटनों को ऊपर ले जाते समय सांस लो और वापस लाते समय सांस निकालो।

इन कसरतों से पेट और पेड़ू के कल-पुर्जे ठीक होंगे, जिससे पाचन अच्छा होगा, यकृत अपना काम अच्छी तरह कर सकेगा—पाखाना, पेशाब की क्रियाएँ ठीक ठीक होंगी और साथ ही रीढ़ और दूसरे अवयव पुष्ट होंगे। इन सब का फल होगा—अच्छा स्वास्थ्य। स्त्री-रोग में यह व्यायाम भोजन-सुधार के साथ विशेष उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

किसी भी कसरत से लाभ उठाने के लिए यह जरूरी है कि उसे हर रोज की जाय। यह कसरतें हल्की हैं। अगर लड़के या पुरुष इन्हें करते हैं तो उन्हें चाहिए कि वे अपना खेल-कूद जारी रखें। औरतें भी अपने दूसरे परिश्रम के कामों को या टहलना न बंद करें।

कुछ और बातें

खाद्य पदार्थ ; चिकित्सकों के प्रति , सच्ची तन्दुरुस्ती

खाद्य पदार्थ*

भोजन के बारे में बहुत कुछ बताया जा चुका है, लेकिन यह विषय इतना जरूरी है कि इस संबंध में कुछ और बातें बताई जाती हैं।

अचूक-चिकित्सा-विधि में भोजन के बारे में जो खयाल है वह दूसरी चिकित्सा-विधियों के खयाल से कुछ भिन्न है। उदाहरण के लिए, कुछ चिकित्सक बुखार इत्यादि के बाद मूँग की दाल के पानी का पथ्य देते हैं। कुछ लोग बुखार में ही या बुखार के बाद दूध-साबूदाना देते हैं। इसी तरह बीमारी के अच्छा होते ही खिचड़ी का पथ्य दिया जाता है। अक्सर लोग फलों से डरते हैं और कहते हैं कि उनसे ठंढ लग जायगी। फिर हैजे के दिनों में भाजी खाना मना किया जाता है। इसी तरह के बहुत से विचार हैं, जिनसे अचूक-चिकित्सा-विधि वाले मतभेद रखते हैं।

पहली बात तो यह है कि नये रोगों में कुछ भी खाने को न देना चाहिए, लेकिन अगर रोग ज्यादा दिन चले तो फलों के रस या तरकारी का सूप देना चाहिए। रोग के अच्छा हो जाने पर एक दो दिन तक और रोगी को रसों पर ही रखकर उनके अलावा

*इस लेख का कुछ अंश (पहले लेखक द्वारा संपादित) 'जीवन-सखा' पत्र (नं० ३०, बाईसवाँ भाग) में प्रकाशित लेखक के एक लेख से लिया गया है।

थोड़ा-थोड़ा दूध देते हैं। फिर एक दो दिन फल या भाजी और तब रोटी-भाजी या चावल-भाजी देते हैं। दाल तभी शुरू कराते हैं जब कि रोगी की पाचन-शक्ति अच्छी हो जाती है।

अचूक-चिकित्सा-विधि से रोग की अवस्था में अगर कुछ भी खाने को दिया जाता है तो यह सिर्फ इसी विचार से कि खून को ठीक करने के लिए रोगी को प्राकृतिक लवणों (नमक) के रूप में जरूरी दवाइयाँ मिल जायँ और साथ ही पचाने में भी बहुत शक्ति न लगे। यह लवण फल और भाजी से अच्छी तरह मिलते हैं।

फल

फलों में नींबू और नींबू की जाति के सभी फल जैसे सन्तरे, मीठे नींबू, मौसंबी, चकोतरे, अच्छे हैं। मकोइया (रसभरी) और अनन्नास का गुण भी करीब क़रीब वैसा ही है। यह कुछ खट्टे तो होते हैं तो भी खून की खटाई को दूर कर उसमें खारापन लाते हैं। सभी बीमारियों में इनके रसों का इस्तेमाल कर सकते हैं, लेकिन जो बहुत कमजोर हैं या जिनके पेट से बहुत खट्टी डकार आती है या जिन्हें वीर्य-दोष है उन्हें खट्टे फलों से या तो परहेज करना चाहिए या उनका इस्तेमाल थोड़ी मात्रा में करना चाहिए। यह भी देखना चाहिए कि कब गर्म पानी के साथ, कब ठंढे पानी के साथ और कब बिना पानी के ही नींबू के रस को पी सकते हैं। जुकाम-खाँसी में नींबू के रस से पहले कुछ सर्दी या खाँसी बढ़ी सी मालूम हो सकती है, लेकिन उससे फ़ायदा

छोड़कर नुकसान नहीं हो सकता। नींबू के रस को पानी के साथ या वैसे ही जखम या फोड़े फुँसी पर बहुत फायदे के साथ लगाया जा सकता है। यह कुछ चुभेगा, लेकिन जितना टिक्चर आयोडीन (tincture iodine) चुभता है उससे ज्यादा न चुभेगा और उससे ज्यादा लाभ पहुँचायेगा।

और रसदार फल अनार अंगूर, टमाटर, गन्ना हैं। इनमें अनार और टमाटर के रस सभी हालत में सब रोगी को दे सकते हैं। खट्टे अनारों का इस्तमाल न करना चाहिए, लेकिन सुर्ख (लाल) कंधारी अनारों का इस्तेमाल खाँसी की हालत को छोड़ कर और सभी हालतों में कर सकते हैं।

अंगूर और गन्ने मे चीनी की मात्रा ज्यादा है, इससे उनके पचने में ज्यादा देर लगती है। रोग के चल जाने पर ही इनके रसों को देना ठीक है। नये रोग के दूर होते ही अंगूर का रस दे सकते हैं। मात्रा का भी खयाल रखना चाहिए। सन्तरे या टमाटर का रस अगर एक बार दो छटाँक दिया जा सकता है तो अंगूर का रस एक ही छटाँक देना चाहिए।

सेव और नाशपाती को कुचलकर भी रस निकलता है। इसे अनार के रस की तरह समझना चाहिए।

छोटे छोटे पके बीजू (चूसने) आमों का रस पुराने रोग वालों के लिए बहुत फायदमन्द है। नये रोगों में रोग के चले जाने पर ही आम का रस देना चाहिए।

जामुन का ताजा रस भी बहुत लाभ के साथ नये और पुराने रोगों में इस्तेमाल किया जा सकता है।

इसके बाद गूदेदार फलों का नम्बर आता है, जैसे तरबूज खरबूजा, जामुन, अनन्नास, पपीता, आम इत्यादि। इनको नये रोग के बाद या पुराने रोगों में इस्तेमाल करते हैं। फिर सख्त फलों में खीरा, ककड़ी, सेब, नाशपाती, अमरूद इत्यादि हैं। खीरा और ककड़ी बहुत अच्छे हैं, लेकिन इनके पचने में देर लगती है।

जितने तरह के भी फल हैं, रसदार या गूदेदार या सख्त, इन सबों का इस्तेमाल शक्ति देख कर पुराने रोगों में किया जा सकता है, लेकिन एक ही फल को एक बार पेट भर खाना चाहिए। कोई भी पुराना रोग सिर्फ फलाहार पर रहकर दूर किया जा सकता है। एक ही दिन में कई तरह के फल अदल-बदल कर खाये जा सकते हैं, जैसे सुबह को सन्तरे, दोपहर में अमरूद और शाम को अँगूर या सेब।

सेब बहुत अच्छा फल है, लेकिन मँहगा जरूर है। फलाहार शुरू करने पर किसी किसी को कब्ज रहने लगता है। ऐसे लोगों को कुछ दिनों तक लगातार एनीमा लेना चाहिए। एनीमा तब तक लिया जाय जब तक कि खुद-ब-खुद पाखाना साफ न आने लगे।

सेब, नाशपाती, अमरूद जैसे मुलायम छिलकेवाले फलों के छिलके न फेंकना चाहिए।

केला और कटहल का इस्तेमाल रोग की हालत में न करना चाहिए।

सूखे फलों में किशमिश, मुनक्के, अँजीर और पिन-खजूर का इस्तेमाल तो नये रोग के बाद या पुराने रोगों में कुछ दिनों की चिकित्सा के बाद कर सकते हैं, लेकिन बादाम, अखरोट, काजू, पिस्ता, मूंगफली का इस्तमाल पुराने रोगों मे भी नहीं करते। यह सब तन्दुरुस्ती के दिनों की चीजें हैं। नारियल की गिरी पुराने रोगो मे अन्दाज से खाई जा सकती है।

जो फल ऊपर बताये गये हैं उनके अलावा कुछ और भी फल हैं। अगर वे पक जाने पर मीठे हो जाते हों तो उन सबों का इस्तेमाल रोग की हालत में किया जा सकता है, लेकिन इतना याद रखना चाहिए कि नये रोगो में सिर्फ उनका रस दिया जाय।

भाजी-तरकारी

नये रोगों मे सिर्फ इनका रस (सूप) देना चाहिए। पुराने रोगों में यह फल के बदले या फल के साथ अदल-बदल कर दी जा सकती हैं, लेकिन यह कह देना जरूरी है कि तरकारी से फल ही अच्छे होंगे। फिर भी जहाँ फल न मिलें या अच्छे न मिलें वहाँ साग-भाजियों से वही काम निकल सकता है। पुराने रोगों में सिर्फ तरकारी खाकर ही रहा जा सकता है। इनको पकाने की तरकीब जाननी चाहिए। सब से अच्छी तरकारी वह होती है जो भाप से पकाई जाती है, जैसे इकमिक कूकर (icmic cooker) में। अगर यह न हो सके तो किसी बड़े वर्त्तन म पानी खौलाना चाहिए और उसी में तरकारी से भरे एक डब्बे या कटोरदान को, जिसका मुँह बन्द हो, छोड़ देना चाहिए।

उस बड़े वर्त्तन को भी ढक देना चाहिए। खौलते पानी की गर्मी से डब्बे के अन्दर की भाजी चुर जायगी। अगर यह भी न हो सके तो धीमी आँच पर और वर्त्तन का मुँह बन्द कर तरकारी पकानी चाहिए।

लौकी, नेनुआ, तरोई, परवल इत्यादि भाजियों के छिलके मुलायम होते हैं। उन्हें न फेंकना चाहिए। हाँ, अगर कोई रोगी ऐसा है जिसकी पाचन-शक्ति बहुत ज्यादा कमजोर हो गई है, या जिसके पतले दस्त आते हों, या खाते ही पेट में किसी तरह की तकलीफ होती हो तो उसके लिए इन भाजियों के छिलके छीलकर और उन्हें खूब अच्छी तरह गलाकर देना चाहिए। थोड़े ही दिनों के बाद छिलके सहित तरकारी पकाना और रोगी को खिलाना शुरू कर देना चाहिए। छिलकों में तनदुरुस्ती के लिए बहुत सी चीजें रहती हैं, लेकिन हम लोग सिर्फ दिखावे के लिए असली चीज को फेंक कर बेकार या कम फायदे की चीजों को खाना अच्छा समझते हैं। आलू का छिलका कभी न फेंकना चाहिए।

पकाते समय तरकारी से निकला हुआ पानी भी न फेंकना चाहिए। उनमें बहुत-सी प्राकृतिक दवाइयाँ रहती हैं।

रोग की हालत में पहले तरकारी में घी या तेल न पड़े। कुछ दिनों के बाद बहुत थोड़ा सा घी डाल सकते हैं। मसाले में सिर्फ जीरा। रोग दूर हो जाने पर थोड़ी हल्दी, धनिया भी छोड़ सकते हैं। बस, और किसी मसाले का इस्तेमाल न करना चाहिए।

भाजियों के दर्जे इस तरह हैं—

(१) पत्तीदार भाजी, जिसमें सभी तरह के साग, जैसे पालक, बथुआ, चौलाई, मर्सा (लाल साग), पोई, ऊगल, चने का साग, करमकल्ला (पात गोभी या बन्द-गोभी) की पत्ती, मूली की पत्ती, शलजम की पत्ती, लेटिस इत्यादि आते है। इनकी तरकारी सब से ज्यादा लाभदायक है, क्योंकि इनमे प्राकृतिक नमक और सभी तरह के विटामीन रहते हैं। कुछ लोगों को साग वायु करता है। ऐसे लोगों को चिकित्सा के दिनों मे साग से परहेज रखना चाहिए। हाँ, सावन में भी सागों का इस्तेमाल छोड़ देना चाहिए।

इनमें से कुछ साग कच्चे खाये जा सकते हैं, जैसे पालक (नींबू के रस या दही के साथ), चने का साग, करमकल्ला, मूली की पत्ती, लेटिस। कच्चा खाने से वायु नहीं होती या कम होती है।

(२) हरी भाजी, जैसे लौकी (लौआ, कद्दुआ), परवल, नेनुआ (परोर, गोगरा, घीआ तरोई), तरोई (झिंगी,) ककड़ी, भिंडी (राम तरोई), करेला, बन-करेली, (खेखसा, चठैल), टिंडा, चचिंडा (कैंता), सेम, लोभिया (बोड़ा) इत्यादि। नये रोग के दूर होने के बाद ही और पुराने रोगों मे इन भाजियों में से सेम और लोभिया को छोड़कर और सभी भाजियों को खा सकते हैं। इलाज के समय भिंडी और करेला का इस्तेमाल भी कम ही करना चाहिए। जब पुराने रोग आधे से ज्यादा चले जायँ तो कभी-कभी सेम और लोभिया खा सकते हैं।

फूल-गोभी और गाँठ-गोभी का स्थान हरी भाजियों में है। फूल-गोभी जरा वायुकारक (वादी) है। इसका इस्तेमाल तन-दुरुस्ती की हालत में ही करना चाहिए। गाँठ-गोभी का इस्तेमाल पुराने रोगों में कभी-कभी कर सकते हैं।

फूल-गोभी भी कच्ची खाई जा सकती है।

(३) कन्द भाजी, जैसे आलू, घुइयाँ (अरवी, पेंची), थंडा (कन्दा), सूरन (ओल, जिमीकन्द), रतालू (आर, रुभार), शलजम, मूली, गाजर, चुकन्दर इत्यादि। इनमें शलजम, मूली, चुकन्दर और गाजर का इस्तेमाल नये रोग के बाद और पुराने रोगों में करना चाहिए। शलजम और मूली को उनकी पत्ती के साथ पकाना चाहिए। मोटी मूली वायुकारक (वादी) होती है। रतालू भी कभी-कभी पुराने रोगों में खा सकते हैं। आलू पुराने रोगों में तभी खाना चाहिए जब कि रोग आधा से ज्यादा दूर हो गया हो।

(४) कुछ और भाजियाँ, जैसे बैंगन (भंटा, बराऊँ), कोंहड़ा (कद्दू), टमाटर (जिसकी गिनती फलों में कर ली गई है), कच्चा केला इत्यादि। पके टमाटर का इस्तेमाल सभी हालत में कर सकते हैं। बैंगन वादी होता है और केला देर से पचता है। कोंहड़ा कुछ वादी है।

आलू और केले को रोटी के बदले खाना चाहिए। दो बड़े आलू या एक छोटा केला एक मामूली रोटी के बराबर है। अक्सर लोग रोटी-चावल के साथ आलू को बहुत तरह की तरकारियों

खाते हैं। ऐसा करना कब्ज को निमंत्रण (न्योता) देना है। अगर आप चार रोटी खाते हैं और रोटी के साथ-साथ आलू की तरकारी भी खाना चाहते हैं या खाने के बाद पका केला खाना चाहते हैं तो ऊपर बताये अन्दाज से रोटी का नम्बर कम कर दीजिए।

आलू बहुत अच्छा और तनदुरुस्ती बढाने वाली चीज़ है, लेकिन तनदुरुस्ती के दिनों में ही इसे खाना चाहिए।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, कुछ भाजियाँ कच्ची खाई जा सकती हैं, जैसे टमाटर, खीरा, ककड़ी, करमकल्ला, शलजम, लेटिस, चुकन्दर, फूल गोभी, पालक, चने का साग, धनिया की पत्ती, पुदीने की पत्ती, मूली, मूली की पत्ती। इनको पकाना मानो इनकी जान लेना है। इनमें से तीन-चार भाजियों को पतला-पतला काटकर और एक साथ मिला कर 'सलाद' (salad-सैलेड) बनाते हैं। इसमें नमक, नींबू का रस, घी या जैतून (olive) या सरसों के तेल की दो-चार बूँदें, अगर इच्छा हो तो, छोड सकते हैं। तनदुरुस्ती की हालत में सलाद में प्याज, अदरख (आदी) और हरी मिर्च के चार-छ टुकडे भी छोड सकते हैं। ऊपर से नारियल की गिरी के पतले छिले हुए टुकडे भी दे सकते हैं। सिरका न छोडना चाहिए। सिरका सडी-गली चीज है। उससे पहिले पचाने में आसानी तो होती है, लेकिन आगे चलकर मेदे और खून पर बुरा असर पड़ता है। सिरके का सभी फायदा नींबू के रस से मिल जाता है। सलाद में भरसक एक पत्तीदार

भाजी जरूर हो। तनदुरुस्ती में और पुराने रोगों की हालत में सलाद हर रोज खाना चाहिए, क्योंकि इसके खाने से भाजी खाने का पूरा-पूरा लाभ जरूर मिल जाता है। पकाने से भाजियों का कुछ गुण जरूर नष्ट हो जाता है।

फलों का भी सलाद बनता है। दो-तीन फलों के टुकड़ों को एक साथ मिला कर ऊपर से थोड़ा दूध या दही छोड़ देने से फलसलाद बनता है।

अनाज

(१) गेहूँ का आटा बहुत अच्छा है, अगर वह हाथ की चक्की से पीसा जाय और उसका चोकर न निकाला जाय। अगर हाथ की चक्की का पिसा आटा न हो तो मिल का ही सही, लेकिन चोकर न निकाला जाय। बहुत से पुराने रोगों में जिन रोगियों को फल की सुविधा न हो तो वे सिर्फ रोटी (गेहूँ या जौ की, और कुछ नहीं) खाकर ही अपना रोग दूर कर सकते हैं। इससे पेट भरता है, ताकत बनी रहती है और रोग भी दूर होता है।

(२) चावल गेहूँ के बराबर हैं, अगर धान का छिलका निकालने के बाद चावल कूट-कूट कर साफ न किये जायँ तो। चावल की माँड कभी न निकालना चाहिए। रोटी और चावल को एक ही खाने में खाना अच्छा नहीं है। चावल की खराबी यही है कि उसका चबाना मुश्किल है और उसमें बहुत पानी है।

(३) दालों को छिलके के साथ खाना चाहिए। अरहर की

दाल जितनी कम खाई जाय अच्छा है। उड़द की दाल ताक़त पैदा करने वालों पर कुछ बादी है। कमज़ोर मेदे वालों के लिए मूँग की दाल और साधारण तनदुरुस्ती वालों के लिए मसूर की दाल बहुत अच्छी है। मसूर ताक़तवर है और साथ ही उतनी बादी नहीं है जितना कि उड़द। दाल गाढ़ी बनानी चाहिए, जिससे कि उसके साथ खाये गये चावल या रोटी के चबाने में कठिनाई न हो। रात के खाने के साथ दाल न खानी चाहिए। चालीस साल की उम्र लगते-लगते दालों का इस्तेमाल बहुत कम कर देना चाहिए। दाल तनदुरुस्ती के दिनों की चीज़ है।

मटर और चनों को फ़स्ल के दिनों में हरा और कच्चा ही खाना चाहिए। तनदुरुस्ती के दिनों में दिन के भोजन में दिल खोलकर सिर्फ़ मटर या चना खाइए। मटर बादी है, लेकिन अकेली और कच्ची खाने से हर्गिज़ बुरा असर न होगा। सूखे चने भी अगर भिगोकर और उनके कल्ले (अंकुर) निकल आने पर खाये जायं तो बहुत फ़ायदा हो। भुने चने खाने का रिवाज ठीक नहीं है। भुट्टे के दिनों में दिन के भोजन में, किसी नाश्ते में नहीं, सिर्फ़ भुट्टे खाये जायँ तो कुछ नुक़सान न होगा।

दूध, दही, घी

दूध के बारे में बहुत बहस है। दूध एक पूरी ख़ूराक है। उसे हल्का न समझना चाहिए। किसी भी नये रोग में दूध का इस्ते-माल हानिकर होगा। पुराने रोगों में भी रोग के आधा से ज़्यादा

दूर होने पर दूध का व्यवहार करना चाहिए। दूध का मेल फलों के साथ ही अच्छा होता है। रोटी, चावल के साथ भरसक दूध न पीना चाहिए। रात में आठ-नौ बजे खाना खाकर सोते समय दूध पीने का रिवाज बहुत हानिकारक है। उससे न तो खाना ही पचता है न दूध।

जिन्हें बार-बार खांसी होती है या खांसी की हालत में या जिन्हें आँव या पेचिश की शिकायत रहती हो उन्हें दूध से परहेज करना चाहिए।

दूध अगर अच्छा मिल सके तो लेना चाहिए, नहीं तो उसके लिए चिन्ता करने की कुछ जरूरत नहीं। फिर दूध कच्चा ही पीना चाहिए। अगर धूप में घूम घूमकर घास चरने वाली मामूली तन-दुरुस्त गाय का दूध अच्छे बर्त्तन में दुहा जाय तो कच्चा पीने में कुछ हर्ज नहीं है। औटने से दूध का गुण जाता रहता है। खीर, सयई अच्छी चीजें नहीं हैं। वे चबाई नहीं जा सकतीं। रबड़ी-मलाई खाना शरीर में रोग इकट्ठा करना है। ऐसी ऐसी चीजों को अगर दो-तीन महीने पर खाया जाय तो नुकसान न होगा।

गाय के दूध का मठा, घर का जमा और जिससे मक्खन निकाल लिया गया है, दूध से हल्का और अपच रोग वालों के लिए दूध से ज्यादा हितकर है। मठा से डरना न चाहिए। सुबह नाश्ते में मठा का व्यवहार अच्छा होता है। दूध या मठा में सफ़ेद चीनी नहीं, लाल शक्कर, गुड़ या शहद डालना चाहिए। चीनी का इस्तेमाल बहुत बुरा है। बहुत से रोग उसी से होते हैं।

दही अच्छी चीज है। तनदुरस्ती के दिनो मे खाने के साथ थोड़ी मात्रा में दही खाना अच्छा है। रोगियो को दही के बदले मठा ही लेना चाहिए। घी तनदुरुस्ती की हालत मे थोड़ी मात्रा में दाल या तरकारी के साथ ले सकते है।

घोड़े, बैल इत्यादि काम करने वाले जानवर या शेर, चीते जैसे बलवान जानवर घी, दूध नहीं खाते पीते, फिर भी तगड़े बने रहते हैं। खुद गाय, जिसका दूध पिया जाता है, दूध नही पीती। सच पूछिए तो दूध या तो बचपन (जब दाँत नहीं होते) या बुढापे (जब दाँत गिर जाते हैं) के दिनो का आहार है। फिर भी अगर नियम से दूध-घी लिये जायँ तो बहुत लाभ हो सकता है।

रोग दूर होने पर, और आँव की शिकायत जब किसी तरह न रहे तो, दूध के इस्तेमाल से तनदुरस्ती बनती है।

× × × ×

अगर सफेद चीनी, सफेद मैदा, सफेद छटे चावल और बिना छिलके की दाल का इस्तेमाल छोड़ दिया जाय, घी के पके पकवान और मिठाइयो का इस्तेमाल बहुत कम कर दिया जाय, चाय, काफी, कोको, ओवलटीन, मॉस-मछली को दिल से उतार दिया जाय और साथ ही नाश्ते में अन्न की चीजें बिल्कुल न खाई जायं तो रोग दूर या बहुत कम हो जायगा। अगर भोजन के परहेज के साथ कसरत नियमानुसार की जाय तो रोग हो ही नहीं।

× × × ×

इन दिनो प्रायः सैकड़े निन्यानवे आदमियों का पेट किसी न

किसी तरह खराब रहता है। ऊपर से देखने में वे भले-चगे मालूम होते हैं, लेकिन सच्ची तन्दुरुस्ती इनके पास नहीं होती। अगर यह मन तीन दिनों के उपवास और दोनों समय एनीमा-प्रयोग के बाद एक महीने तक सिर्फ फल या भाजी या फल-दूध खाकर रहें और इन दिनों भी दिन में एक बार या जब जरूरत मालूम हो तब एनीमा लें तो शरीर करीब करीब नया सा हो जायगा। इसके बाद नियमित भोजन और कसरत से चार-छः महीनों में ही वे पूरी तरह तन्दुरस्त और हट्टे-कट्टे हो जायगे। इस तरह का काया-कल्प प्राय सभी ३० साल से ज्यादा उम्र वालों के लिए फायदेमन्द होगा।

सभी पहलुओं से देखिये—

खाद्य-पदार्थ के मसले (समस्या) को सभी पहलुओं (दृष्टि-कोणों) से देखना चाहिए। अगर पाठक ने इस किताब को अच्छी तरह पढ़ा है तो वे सभी जरूरी बातों को जरूर समझे होंगे। कुछ जरूरी बातें नीचे दी जाती हैं —

(१) खाद्य-पदार्थ ऐसा होना चाहिए कि शरीर को पुष्टि मिले और साथ ही शरीर के विकारों को निकाले। इस दृष्टि-कोण से उसके विविध प्रकार इस तरह हैं।

(अ) तेजी से विकार निकालने वाले पदार्थ। मुसम्मी और संतरे के रस, मकोईया और उसके रस अनन्नास और उसके रस की गणना इसमें है।

(ब) विकार निकालने वाले पदार्थ । सेव, नाशपाती, अमरूद इस विभाग में आता है । कच्ची सब्जियों का सलाद और कई सब्जियाँ इसी जाति की हैं।

(स) विकार निकालने के साथ पुष्टि देने वाले पदार्थ, जैसे गाजर, गन्ना, अंगूर इत्यादि।

(द) पुष्टि देने वाले पदार्थ, जैसे रोटी, चावल, आलू, फलों में केला इत्यादि।

(न) बहुत पुष्टिकारक पदार्थ, जैसे दाल, मांस-मछली, अंडा, दूध, दही, मठा, भाजियों में सेम, लोभिया इत्यादि।

इस संबंध में यह समझना चाहिए कि जब रोग को दूर करना है, विकारों को निकाल कर शरीर को शुद्ध करना है, तब कुछ दिनों तक पहले (अ) जाति के, फिर (ब) जाति के, उसके बाद धीरे-धीरे और जाति के खाद्य-पदार्थों का इस्तेमाल करना चाहिए। तेज बीमारी (तीव्र रोग) में तो तब तक कुछ न खाना चाहिए, जब तक कि तकलीफ़ दूर न हो जाय । जीर्ण रोग (पुरानी बीमारियों) में पुष्टिकारक भोजन खाना मानो विकारों को पुष्ट कर अपनी तकलीफ़ को बनाये रखना और बढ़ाना है।

(२) दूसरा पहलू यह है कि एक ही बार के भोजन में कई चीजों को एक साथ खाना पाचन-क्रिया को कठिन करना और विकार के निकलने की राह में अड़चन डालना है। इसीलिए जीर्ण रोगों में यह जोर देना होता है कि उपवास और रसाहार के बाद जब फलाहार शुरू किया जाय तो एक समय एक ही

तरह का फल खाया जाय और फिर जब अन्न शुरू किया जाय तो एक समय एक ही चीज, जैसे सिर्फ रोटी या दलिया, खाई जाय। फिर धीरे धीरे उसके साथ और चीजें मिलाई जाँय।

(३) तीसरा पहलू यह है कि भोजन का सिलसिला बदलने में जल्दीबाजी न करनी चाहिए। अगर कोई तेज तकलीफ है तो भोजन छोड़ ही देना चाहिए, लेकिन जीर्ण रोगों में धीरे धीरे भोजन बदलना चाहिए। पहले दोनों समय के अन्न में से एक समय का अन्न खाना छोड़ना चाहिए। ३,४ या ७ दिनों तक एक समय अन्न और एक समय फल या भाजी रहे। फिर दोनों समय अन्न छोड़कर फलों पर ही आ जाना चाहिए। इसके बाद एक समय फल और दूसरे समय रस। तब दोनों समय या दिन में तीन-चार बार रस और सब के अंत में उपवास। इसी क्रम से अन्न पर वापस भी आना चाहिए। हाँ, जीर्ण रोग में भी अगर रोगी के काफी ताकत है तो एक-ब-एक फलाहार या उपवास शुरू कर सकते हैं।

(४) खाद्य-पदार्थ के संबंध की मोटी-मोटी बातें ऊपर बताई गई, फिर भी आदमी-आदमी के शरीर पर हरेक पदार्थ की अलग-अलग तासीर (प्रभाव) होती है। इसे समझना पड़ेगा।

(५) पांचवा पहलू यह है कि किस पदार्थ में कौन सा विटा-मीन और कौन सा प्राकृतिक लवण मिलता है और उनके अभाव से कौन कौन खराबियाँ होती हैं। इस संबंध में कुछ इशारे नीचे दिये जाते हैं।

पहले मैं विटामीन्स को ही लूँगा। विटामीन क्या है, यह

कहना कठिन है। इसके संबंध में इतना ही कहा जा सकता है कि विटामीन जीवन के लिए जरूरी है। अभी तक पांच तरह के विटामीन्स का पता चल सका है, जो यों हैं:—

(अ) विटामीन 'ए' साधारण तौर से शरीर के बढ़ने और पुष्ट होने के लिए जरूरी है। आँखों की शक्ति भी इसी से मिलती है। यह विटामीन दूध, घी, मक्खन, गाजर, टमाटर, लेटिस (एक पत्तीदार भाजी जो सलाद में पड़ती है) और अंडे की चर्बी में पाया जाता है। मांस-मछली में भी इसका कुछ अंश रहता है।

(ब) विटामीन 'बी' स्नायु-संस्थान (nervous system) के लिए जरूरी है और टमाटर, पालक, गाजर, कच्ची बन्द-गोभी (करमकल्ला), सेम, मटर, प्याज, चुकन्दर, लेटिस, फलों के रस, छिलके सहित साबुत अनाज और घी-मक्खन में पाया जाता है।

(स) विटामीन 'सी' दाँत, हड्डी और खाल के लिए हितकर है। यह सभी पत्तीदार और हरी भाजियाँ, दूध, सन्तरे, टमाटर, सभी फल, बन्द-गोभी, प्याज, गाजर और पालक में विशेष-रूप से पाया जाता है।

(द) विटामीन 'डी' बच्चों के सूखा (मिठुआ) रोग का रोकने वाला, अंडे की जर्दी, मक्खन, दूध, छिलके सहित साबुत अनाज, सभी भाजियाँ, मछली और अंगूर में पाया जाता है। अगर सूखे में बच्चों को धूप में रखा जाय—जितनी धूप सही जा सके—

और अंगूर का थोड़ा रस दूध के बाद या पहले या साथ पिलाया जाय तो कुछ ही दिनों में सूखा रोग जाता रहे।

(न) विटामीन 'ई' बन्ध्यापन (बांझपन) को रोकता है और तेल, अनाज के दानों, सेम, मटर, मसूर, पालक, अंडे को जर्दी और बादाम, मूंगफली में पाया जाता है।

अब मुख्य खनिज तत्वों का वर्णन किया जायगा।

(अ) कैलशियम (calcium-चूना) के अभाव से हड्डियाँ कमजोर और पतली रहती हैं; खून में ताकत नहीं होती और शरीर पुष्ट नहीं होता। शलजम के ऊपर का हिस्सा और पत्ते, बादाम, सूखे अंजीर, अंडे की जर्दी, फूल-गोभी, दूध, आटे का चोकर, मसूर, मटर, पालक, नींबू, लेटिस, बंद-गोभी, मूली, प्याज की पत्ती, शलजम, सन्तरे और चकोतरे में कैलशियम मिलता है।

(ब) आयरन (iron—लोहा) की कमी से खून की कमी, कमजोरी और बीमारियों को रोकने की अयोग्यता होती है। यह तत्व अंडे की जर्दी, मसूर, मटर, चोकर-सहित आटा, बादाम, पालक, खजूर, छुहारे, अंजीर, आलू-बुखारे, किशमिश, मुनक्के, अखरोट, प्याज की पत्ती, लेटिस और मूली में मिलता है।

(स) सोडियम (sodium) की कमी से बदहजमी और खून में लोहे की कमी होती है। सोडियम आलू-बुखारा, दूध, फूल-गोभी, शलजम, सेब, चुकन्दर, मूली, अंडे, खीरा-ककड़ी, अंजीर, बन्द-गोभी, पालक, लेटिस, किशमिश, गाजर और प्याज की पत्तियों में मिलता है।

(द) फ़ासफ़रस (phosphorus) की कमी से दिमाग़ की कमज़ोरी और थकावट, स्नायुओं की कमज़ोरी और हड्डियों का पतलापन होता है। यह तत्व, अंडे की ज़र्दी, बादाम, मसूर, बे-छना आटा, जौ, मटर, अखरोट, बंद-गोभी, फूल-गोभी, खीरा-ककड़ी, लेटिस, सेब, लौकी, मूली, पालक और मछली में पाया जाता है।

(न) सल्फ़र (sulphur—गन्धक) की कमी से यकृत की ख़राबियाँ होती हैं और शरीर में विकार इकट्ठे होते हैं। सल्फ़र शलजम, पालक, गोभी, (दोनों), मूली, प्याज़ की पत्ती, शफ़तालू अंडे, मूंगफली, बे-छना आटा, प्याज़ और सन्तरे में मिलता है।

(त) पोटाशियम (potassium) की कमी से यकृत की ख़राबियाँ, क़ब्ज़, फुन्सियाँ और ज़ख्मों को देर से भरना होता है। यह टमाटर, शलजम, लेटिस, प्याज़, बन्द-गोभी, फूलगोभी, लोभिया (बोड़ा), दूध, अनन्नास, आलू-बुखारे, नींबू, सन्तरे, शफ़तालू, नाशपाती और चकोतरे में पाया जाता है।

(प) मैगनेशियम (magnesium) की कमी से स्नायु की ख़राबी, बे-चैनी और ख़ून में खटाई की ज़्यादा मात्रा होती है। चोकर, बादाम, मूंगफली, टमाटर, लेटिस, पालक, खजूर, अंजीर, आलू-बुखारे, किशमिश, नींबू, सन्तरे, चुक़न्दर, बन्द-गोभी और सेब में यह पाया जाता है।

(म) आयडीन (iodine) की कमी से गिल्टियों (glands) की बीमारी होती है और शरीर में विकार इकट्ठे होते हैं। आय-

हीन गाजर, आलू, बन्द-गोभी, नाशपाती, अनन्नास, केले और लेटिस में मिलती है।

(ज) क्लोरीन (chlorine) की कमी से शरीर मे बहुत ज्यादा मात्रा मे विकार इकट्ठे होते हैं। टमाटर, पालक, दूध, बन्द-गोभी, अंडे की सफेदी, लेटिस, केले, खजूर, नींबू, अनन्नास, नारियल और बे-छने आटे मे मिलती है।

इनके अलावा और भी खनिज तत्व हैं, जैसे सिलिकोन (silicon), फ्लूरीन (fluorine) इत्यादि, पर मुख्य मुख्य ऊपर बताये गये।

विटामीन्स और खनिज तत्वों के संबंध में इन बातों को भी जानना चाहिए : —

निरोग रहने की अवस्था मे जो जो चीजें खाई जाती हैं वे सभी रोग की अवस्था मे नहीं खाई जा सकतीं।

कुछ चीजों में इन दो पदार्थों के अलावा और भी कई तत्व हैं, जो शरीर के लिए हितकर नहीं हैं। जैसे, मांस में बहुत से रोग पैदा करने वाले तत्व हैं। मांस-मछली या अंडों को नहीं खाना ही अच्छा है। अगर मांस खाया ही जाय तो उसे पहले ३० मिनट तक खौलते पानी में उबाल कर उसका सारा विकार-मय रस फेंक देना चाहिए, तब उसे पकाना चाहिए। जिस रस को डाक्टर या हकीम ताकत की चीज़ बताते हैं वह ताक़त तो देता है पर ताक़त के साथ मुर्दे की मांसपेशियों के अन्दर के सभी जहरीले पदार्थ भी शरीर में छोड़ देता है।

अंडा कच्चा या आधा उबला खाना अच्छा है बनिस्बत सख़्त उबले या पके हुओं के ।

फल और भाजी अनाज से ज्यादा हितकर हैं, रोज़ के भोजन मे इनकी मात्रा आधी से ज्यादा होनी चाहिए।

आग के सम्पर्क से बहुत से विटामीन्स और कुछ हद तक खनिज तत्व भी नष्ट हो जाते हैं। भाजियों को बहुत हल्की आँच पर पकाना चाहिए और उनसे निकले पानी को कभी फेंकना न चाहिए।

भोजन में कुछ कच्ची सब्ज़ी, जिसे अंगरेज़ी मे 'सलाद' (salad) कहते हैं, जरूर खाना चाहिए।

जब शरीर में किसी तत्व की कमी हो तो चुनकर अपनी पाचन-शक्ति के अनुसार उन्हीं चीज़ों को खाना चाहिए, जिनसे वह कमी पूरी हो जाय।

कुछ लोग कहते हैं कि फलाहार में बहुत पैसे लगते हैं। उन्हें मैं सिर्फ यही याद दिलाना चाहता हूँ कि डाक्टरो की फ़ीस, बेश-कीमती लेकिन ज़हरीली दवाओं और इन्जेकशनों मे फलाहार से भी ज्यादा पैसे लगते हैं और फिर भी रोग नहीं जाता।

चिकित्सकों के प्रति

जो अचूक चिकित्सा की विधियों को जानकर अपनी या दूसरों की चिकित्सा करना चाहते हैं उन से कुछ कहना है। सभी ज़रूरी बातें इस किताब में बताई गई हैं, फिर भी कुछ बाक़ी ही रह गया। वह है अपनी सूझ, आपनी समझदारी और अपना अनुभव। चिकित्सकों को सभी बातें अच्छी तरह समझनी चाहिए। साथ ही वे अपना अनुभव अच्छी तरह नोट करें। अगर वे इस किताब को अच्छी तरह पढ़ गये हैं तो उन्हों ने जान लिया होगा कि चिकित्सा के सिद्धान्त (असूल) बहुत मामूली हैं।

लेकिन अगर कोई बहुत ही अच्छा चिकित्सक बनना चाहता है तो उसे दो बातें और जाननी चाहिए—(१) शरीर की रचना और (२) नाड़ी की पहचान। इस किताब में ये दो बातें नहीं दी जा सकतीं। पाठकों को अँगरेजी और हिन्दी की किताबें इस विषय की पढ़नी चाहिए। 'शरीर-रचना' पर डाक्टर वर्मा की एक बड़ी और अच्छी किताब हिन्दी में है। नाड़ी की पहचान किताब के पढ़ने, अच्छे वैद्यों की संगति और अभ्यास से आती है। मुझे नाड़ी देखना मामूली तौर पर अच्छा आता है, जिससे चिकित्सा में बहुत मदद मिलती है।

तीसरी बात यह है कि चिकित्सकों को पहले मामूली रोगों में अनुभव हासिल करना चाहिए। बुख़ार इत्यादि मामूली नये रोग

और ऐसे पुराने रोग, जिसमें रोगी बहुत कमजोर न हुआ हो या बहुत विषैली दवाएँ न खाई हों, आसानी से दूर किये जा सकते हैं। पहले इन्हीं में अनुभव प्राप्त करना चाहिए। कोई भी नया रोग, चाहे वह कैसा भी भयंकर मालूम होता हो, आसान है। अगर उसमें उपवास करा दिया जाय और एनीमा का प्रयोग किया जाय (जरूरत पर, जैसे हैजा मे नहीं), साथ ही अंदाज से ठंडा या गर्म पानी का प्रयोग किया जाय तो रोग जल्दी और जरूर जाता है। जिस पुराने रोग के रोगी ने बहुत वर्षों तक विषैली औषधियो का प्रयोग किया है उसकी चिकित्सा मे सावधान होना पड़ता है। पहले कुछ महीनों तक भोजन-सुधार और बीच-बीच मे फलाहार, उपवास और एनीमा-प्रयोग जारी रखकर पानी का इस्तेमाल शुरू करना चाहिए। उपवास और पानी के इस्तेमाल के संबंध मे शरीर की शक्ति और गर्मी को जरूर देख और समझ लेना चाहिए। बहुत ठंढ में न तो लंबा उपवास ही ठीक होता है और न बहुत देर तक पानी में बैठना। फिर जिसका शरीर कमजोरी से ठंढा रहता हो उसे भरसक पानी का इस्तेमाल जाड़ो मे नहीं करना चाहिए।

मैं अपनी चिकित्सा मे बहुत कम पानी का इस्तेमाल करता हूँ। सैकडे पचास रोगो मे नहीं करता। बाकी मे आधे मे सिर्फ पट्टियों से ही काम लेता हूँ। हाँ, एनीमा-प्रयोग से जरूर सहार लेता हूँ, वह भी रोगी का बल और शरीर की आवश्यकता देखकर। एनीमा से बढ़कर और कोई भी उपाय शरीर के अन्दर

-के सूखे मल को बाहर निकालने और आँतों के स्नायुओं के जगाने का नहीं है।

अंत में मैं फिर यही कहूँगा कि चिकित्सक पहले इस किताब को आदि से अंत तक तीन-चार बार अच्छी तरह जरूर पढ़ लें।

सच्ची तनदुरुस्ती

इस किताब में जो बातें और नियम बताये गये हैं उनका पालन करने से न सिर्फ रोग ही दूर होंगे बल्कि सच्ची तनदुरुस्ती हासिल होगी। हम में से बहुतों को तनदुरुस्ती का आनंद नहीं मालूम है। जिन्हे मालूम है उनमें बहुतों को पूरी तनदुरुस्ती नहीं, उसके सिर्फ कुछ थोड़े से हिस्से का, आनंद मालूम है। इसी थोड़े आनंद से वे फूले नहीं समाते। अगर उन्हें पूरे आनंद का स्वाद मिल जाय तो ये इस संसार को ही स्वर्ग समझने लगें। सचमुच नरक और स्वर्ग अपने ही अन्दर है और यह हम पर निर्भर है कि हम नरक का दुख झेलेंगे या स्वर्ग का आनंद लेंगे।

हम लोगों को पूरी-पूरी तनदुरुस्ती नहीं रहने के कारण शरीर और मन की पूरी शक्ति हासिल नहीं हो पाती। अगर तनदुरुस्ती सभी तरह ठीक हो जाय तो हमारा शरीर मजबूत, हट्टा-कट्टा, और देखने में सुन्दर होगा और हमारा मन निर्मल, जगा हुआ, तेज और चौकन्ना रहेगा। इन दोनों से जो शक्ति अपने अन्दर आयेगी उसका कहना ही क्या है। इस शक्ति को पा जाना हमारा आप का कर्त्तव्य है।

इस शक्ति को पाना असंभव (ना-मुमकिन) नहीं है। जो थोड़ी देर के सुख के लिए प्रकृति के नियमों को तोड़ने में ही

अपनी मर्दानगी मानते हैं उन्हें यह शक्ति नहीं मिल सकती, लेकिन जो सभी बातों को समझते हैं, समझदारी से काम करते हैं और बराबर ही प्रकृति के नियमों का पालन करते हैं उन्हें यह शक्ति आसानी से मिल जायगी।

यह शरीर और मन की शक्ति कैसी है? इसका एक निश्चित चित्र खींचना कठिन है, लेकिन अगर सिंह का शारीरिक बल, किसी अच्छे वैज्ञानिक की तेज बुद्धि और किसी तत्वदर्शी दार्शनिक का दृष्टिकोण सभी एक साथ मिला दिये जायं तो इस शक्ति का पता चल सकता है। यह शक्ति सभी को मिल सकती है, पर मिलती उन्हीं को है, जो प्रकृति के साथ चलते हैं।

तनदुरुस्ती बनाये रखने के लिए हर रोज चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। जो चिन्ता करेंगे उनकी तनदुरुस्ती न बनेगी, क्योंकि चिन्ता तो स्वयं ही एक रोग है। अपने जीवन के लिए कुछ नियम बना लेना, उनका दृढ़ता के साथ पालन करना और फिर तनदुरुस्ती की सारी बातों को भुला देना—बस, यही तनदुरुस्ती हासिल करने का सहज उपाय है। अगर आप अच्छी चीजें नियम के साथ खायेंगे, हर रोज कसरत करेंगे और जरूरी आराम लेंगे तो शरीर के अन्दर का खून अच्छा अच्छा होगा, स्नायु-बल ठीक रहेगा और शरीर के सभी कल-पुर्जे अच्छी तरह काम करेंगे। इसी से तनदुरुस्ती ठीक रहेगी। यही चाहिए और इसमें हर रोज चिन्ता करते रहने की कुछ जरूरत नहीं।

कुछ लोग कहेंगे कि इस किताब में खाने-पीने के जो पहिन

नियम वताये गये हैं, उनका पालन करने से जीवन शुष्क हो जायगा। अगर अचार, पकौड़ी, मिठाई, पकवान, चाय, विस्कुट, डबल रोटी इत्यादि का इस्तेमाल न किया तो ऐसे जीने से लाभ ही क्या। जो ऐसा कहते हैं उनकी कठिनाई समझी जा सकती है। इतने दिनों से इन चीजों का व्यवहार होता आ रहा है और अपने चारों तरफ इतने लोग इन चीजों को खाते-पीते हैं कि हम लोगों की समझ में ही यह नहीं आता कि यह चीजें खराव हैं। फिर हमें वार-वार वीमार होने, दवा पीकर थोड़े दिनों के लिए बीमारियों को दवा देने और अगर दवाओं ने असर न किया और रोगी मर गया तो भाग्य को बुरा कहने की आदतें इस तरह पड़ गई हैं कि बीमार होना और कु-समय में ही मर जाना हमें अ-स्वाभाविक नहीं जंचता। लेकिन हमें तो यह देखना चाहिए कि क्या पशु-पक्षी भी उसी तरह बीमार होते और मरते हैं जिस तरह आदमी। आदमी सब जीवधारियों में श्रेष्ठ है। उसे तो औरों से ज्यादा अच्छा रहना चाहता था, लेकिन इस बात में वह सबों से खराब और कमजोर है। आशा है कि धीरे-धीरे मनुष्य अपने को सुधार लेगा और अपने जीवन को फिर से दिव्य और स्वर्गीय बनावेगा।

प्राकृतिक चिकित्सा का संक्षिप्त इतिहास

संक्षिप्त इतिहास*

प्राचीन काल में एक समय ऐसा जरूर रहा होगा जब कि आज कल की तरह तरह की औषधियों में से एक भी न रही होगी, फिर भी आदमी सुख से जीते होंगे। भारत में शुरू से ही रमणीय तीर्थ स्थानो में घूमना, नदी तट पर कुछ समय के लिए रहना, व्रत रखना, मांस न खाना, सप्ताह मे एक बार नमक न खाना, सूर्य, अग्नि, जल आदि की पूजा करना, इत्यादि, बातें स्वास्थ्य-प्रद होने के कारण धर्म का अंग मानी गई हैं। इन बातों का प्रभाव भी अच्छा होता था। शायद पुराने समय में अन्य देशों में भी मनुष्य प्राकृतिक शक्तियों से ही विशेष सहायता लेकर हृष्ट-पुष्ट रहते होंगे। उस समय आज के बनावटीपन से दूर रह कर और प्राकृतिक जीवन के कारण मनुष्य को बीमार होने का अवसर ही न होता होगा। अगर किसी प्राकृतिक नियम के तोड़ने से कोई कभी अस्वस्थ हो जाता होगा तो उपवास से और प्राकृतिक पदार्थों का प्रयोग कर या जड़ी-बूटी ही खाकर वह फिर स्वस्थ हो जाता होगा। इस तरह अनुमान किया जाता

---

* यह अध्याय 'जीवन-सखा' पत्र (पहले लेखक द्वारा सम्पादित) में प्रकाशित श्रीयुत कृष्णनन्दन प्रसाद के लेखों के आधार पर है।

है कि उस समय रोग से युद्ध करने के लिए मनुष्य के पास प्राकृतिक उपायों का ही एक-मात्र शस्त्र रहा होगा।

धीरे धीरे नगर-जीवन और बनावटी सभ्यता की वृद्धि के साथ मनुष्यों के रहन-सहन के ढंग बदलने लगे और पहले सादी जड़ी-बूटियां व्यवहार में लाई जा कर फिर उनसे तरह तरह की औषधियां आविष्कृत होने लगीं। संसार में सब से पहले औषधियों का तथा चीरा लगाने का शास्त्र भारत में ही आविष्कृत हुआ। आयुर्वेदीय औषधियों का प्रचार धार्मिक उपदेशों के साथ साथ होना आरंभ हो गया। इस बात का पूरा प्रमाण इंगलैंड के एक बड़े डाक्टर और लेखक वाइज (Wise) की १८०८ में प्रकाशित पुस्तक 'History of Medicine among Asiatics' ('एशिया में औषधि का इतिहास') से मिलता है। अंगरेज़ी के अन्य विद्वान् लेखकों ने यह भी लिखा है कि रोम में औषधि-शास्त्र के प्रचारक किसी बात का प्रमाण देने के लिए भारतीय औषधि-शास्त्र का उदाहरण देते थे। ईस्वी सन् एक में औषधि-शास्त्र के प्रकांड पंडित चरक ने इसे संहिता का रूप दिया और सन् दो में सुश्रुत रचा गया। सुश्रुत में चीरा लगाने के सौ यंत्रों का परिचय दिया हुआ है। उनमें से कुछ यन्त्र ऐसे भी थे जो बाल को भी दो बराबर टुकड़ों में विभाजित कर सकते थे। भारतवर्ष से इस विद्या को ले जाकर बौद्ध भिक्षुओं ने इसका प्रचार चीन देश में किया और भारत से ही यह मिश्र (ईजिप्ट) देश को ले जाया गया, जहाँ से फिर इसका

प्रचार यूनान (ग्रीस) में हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस शास्त्र के आविष्कार और सारे संसार में प्रचार का श्रेय भारत को ही है, परन्तु साथ ही साथ यह भी न भूलना चाहिए कि यदि औषधियों का प्रयोग ठीक नहीं है तो इसका दायित्व भी भारत के ही सर है।

ईसा के जन्म के चार सौ वर्ष पूर्व ग्रीस में पेरिक्लीज़ के समय में दार्शनिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक और कलाकारों के साथ साथ औषधि-शास्त्र में हिपोक्रेटस (Hippocrates) का नाम पश्चिमीय संसार में व्याप्त हो रहा था। उसी की लिखी हुई पुस्तकों से प्रमाणित होता है कि उसके समय तक दो सौ पैंसठ औषधियों का आविष्कार हो चुका था, परन्तु ये औषधियां मुख्यतः कुछ नये रोगों में ही प्रयोग की जाती थीं। हिपोक्रेटस इन औषधियों के गुण में विश्वास करता था, परन्तु उसकी धारणा थी कि प्रकृति में ही रोग-निवारण करने की शक्ति है और यह भी कि नये रोग (acute disease) स्वयं ही शरीर में एक प्राकृतिक तरीके से उभाड़ (curative crisis) लाकर शरीर के प्राकृतिक मार्गों में से एक या अधिक के द्वारा विकारों को बाहर फेंकता है।

हिपोक्रेटस के अनुसार चिकित्सक का कर्तव्य है कि वह इन तबदीलियों का अनुमान पहले ही करले, जिससे वह उस प्राकृतिक तरीके को सफलीभूत होने में सहायता दे, रोकने में नहीं, जिससे कि रोगी चिकित्सक की सहायता से रोग के ऊपर विजय प्राप्त

कर सके। जब विकार शरीर से होकर निकलने की चेष्टा करता था तो उस उभाड़ के समय की प्रतीक्षा व्यग्रता-पूर्वक की जाती थी और हिपोक्रेटस की प्रणाली में यह मुख्य बात थी कि उसके अनुयायी चिकित्सक उस उभाड़ के समय का भविष्यज्ञान ठीक ठीक कर लेते थे। इस तरह वे पहले से ही सतर्क हो जाते थे कि किस प्रकार प्राकृतिक शक्तियों का प्रयोग कर वह रोगी के विकारों के दूर करने में सहायता पहुँचा सकेंगे। रोग की पहचान उन चिकित्सकों में अच्छी न थी और न वे शरीर रचना का ही समुचित ज्ञान रखते थे, जिससे यह बता सकते कि किस स्थान में कौन सा विकार इकट्ठा हो गया है। परन्तु यद्यपि हिपोक्रेटस और उसके शिष्य रोग के लक्षण और पहचान तथा शरीर की रचना भली भाँति न जानते थे तो भी उन्हें रोगों को अच्छा करने में कोई अड़चन न होती थी। आजकल के उच्च-उपाधि-प्राप्त डाक्टरों में, जो रोगों के नाम- लक्षण और शरीर-रचना के अच्छे ज्ञाता समझे जाते हैं, कितने ऐसे हैं जो सब रोगों का अचूक इलाज कर पाते हैं? इंगलैंड के एलोपैथी के एक सुविख्यात डाक्टर सर विलियम औस्लर (Sir William Osler) का कहना है, 'We put drugs, of which we know little, into bodies, of which we know less' अर्थात् 'हम लोग औषधि, जिनके बारे में हम कम ज्ञान रखते हैं, शरीर में, जिसके बारे में हम और भी कम ज्ञान रखते हैं, देते हैं।' अमेरिका के डाक्टर क्लार्क (Clerk) का कहना है कि

चिकित्सकों ने रोगियों को लाभ पहुँचाने के प्रयत्न में इसके विपरीत बहुत हानि पहुँचाई है। उन्होंने सहस्रों ऐसे रोगियों के प्राण लिये जो यदि प्रकृति के भरोसे छोड़ दिये जाते तो अवश्य आरोग्य हो जाते। जिन्हें हम औषधि समझते हैं वे वास्तव में विष हैं और उनकी प्रत्येक मात्रा से रोगी की शक्ति का ह्रास होता जाता है। डाक्टर होम्स (Holmes) का कहना है कि यदि सब औषधियां समुद्र में फेंक दी जातीं तो मनुष्य जाति का बड़ा उपकार होता। डाक्टर अबरानकी (Oberanki) के विचार में चिकित्सकों की संख्या बढ़ने के साथ ही साथ रोगों की संख्या भी बढ़ती जाती है। हिपोक्रेटस और उसके शिष्य चिकित्सा के समय भोजन देने में भी विशेष ध्यान रखते थे और विविध रोगों में न्यूनाधिक हेर-फेर कर के भोजन देते थे। इस तरह रोग-निवारण में प्राकृतिक उपचारों को प्रधानता देकर औषधि को वे दूसरा स्थान देते थे और जीर्ण रोगों में संभवतः कुछ भी औषधि न देकर केवल नियमित भोजन, व्यायाम और अन्य प्राकृतिक विधियों का व्यवहार कर रोगों को दूर करते थे। हिपोक्रेटस के बाद रोम में अलक-जेन्ड्राइन स्कूल के डाक्टरों ने औषधि-प्रणाली की उन्नति और वृद्धि पर ही ध्यान दिया।

धीरे धीरे धातु, नशीले और विषैले पदार्थों से औषधियाँ बनाकर व्यवहार में लाई जाने लगी, जिनका सामूहिक नाम 'एलोपथी' (Allopathy) अर्थात् विपरीत प्रभाव की औषधि

पड़ा। उन चिकित्सकों ने, जो केवल जड़ी-बूटी की बनी औषधियाँ ही व्यवहार में लाते थे, इन औषधियों का बड़ा विरोध किया परन्तु इनका कुछ भी बस न चला। कारण यह था कि नई आविष्कृत औषधियाँ स्थूल दृष्टि से देखने में बहुत जल्द लाभ पहुँचाती थीं। लोग उसी से सन्तुष्ट होने लगे और सर्वदा के लिए आरोग्य कर देने वाली विधियों को भूलने लगे।

जैसे जैसे समय बीतता गया एलोपैथी का साम्राज्य सारे संसार में होने लगा, परन्तु साथ ही साथ इस प्रणाली के विरोधी भी प्रकट होने लगे। इन लोगों में सबसे प्रथम विगत शताब्दी के आरंभ में जर्मनी के एक डाक्टर हैनीमैन (Hahnemann) थे। एम० डी० की डिग्री लेकर १७८४ में ये ड्रेस्डन (*Dresdon*) में डाक्टरी करने लगे। इनकी प्रैक्टिस खूब चली। इन्हीं दिनों जब यह डब्लू० कलेन (W. Cullan) के द्वारा रचित डाक्टरी की सब से मुख्य पुस्तक 'मेटीरिया मेडिका' का अनुवाद जर्मन भाषा में कर रहे थे तो यह जान कर चकित हो गये कि यदि कुनैन आरोग्य मनुष्य को खिलाई जाय तो उसके शरीर में वही विकार पैदा हो जायगा जिसके अच्छा करने के लिए यह दवा एक रोगी को दी जाती है। इसी एक बात से उन्हें अपने तथा अपने पेशे वालों पर बड़ी ग्लानि हुई। उन्हें आश्चर्य हुआ कि ये इतनी अधिक मात्रा में इन विषैली औषधियों को मनुष्य के शरीर में भरते हैं। इनके दिल में यह बात अच्छी तरह बैठ गई कि विष की बनी औषधियाँ विनाश-कारिणी होती हैं और रोग को अच्छा

करने के बदले वे उनको केवल दबाती और शरीर में जहर भर देती हैं। इस प्रकार रोग से कहीं अधिक घातक ये औषधियाँ ही होती हैं। हैनीमैन के सब विचार प्राकृतिक चिकित्सक के विचार के बिल्कुल अनुकूल हैं, परन्तु हैनीमैन जब यह स्थापित करते हैं कि रोग को आराम करने में केवल प्राकृतिक शक्तियां ही पर्याप्त नहीं हैं बल्कि औषधियों से भी थोड़ी सहायता लेना आवश्यक है तो दोनों मतों में भेद पड़ जाता है। हैनीमैन ने औषधि देने का एक नया तरीका सोच निकाला। उन्होंने सोचा कि रोगी को अधिक मात्रा में औषधि दे कर रोग के साथ छेड़-छाड़ करने से रोग दब जाता है। यदि विकार के विरुद्ध औषधि न देकर उसी के योग्य दवा दी जाय तो उसके उभड़ने में और भी सहायता मिलेगी और तेजी से विकार बाहर निकल जायगा। रोग को उभाड़ कर निकालना प्राकृतिक चिकित्सक के मतानुसार भी ठीक है, परन्तु यहाँ भिन्नता इसी में आ जाती है कि एक तो औषधि देकर रोग को उभाड़ने का प्रयत्न करता है और दूसरा बिना किसी प्रकार की औषधि दिये ही। औषधि से रोग उभड़ कर निकल तो जाता है परन्तु फिर भी औषधि का कुछ अंश शरीर में रह ही जाता है। एक बात यह भी है कि यह शरीर ऐसा बना है कि अपनी सफाई और मरम्मत आप ही कर लेता है। इस तरह हम देखते हैं कि दोनों के उद्देश्य एक ही हैं, पर साधन में अन्तर जरूर है।

एलोपैथी का बोलबाला इगलैंड आदि देशों में बहुत था,

परन्तु अठारहवीं शताब्दी के अन्त में वहाँ के दो प्रमुख एलोपैथिक डाक्टर ही इसके घोर विरोधी हो गये। उनमें से एक लिचफील्ड (Lichfield) के डाक्टर सर जॉन फ्लॉयर (Sir John Floyer) थे। उनको यह पता चला कि उपर्युक्त शहर के पास ही किसी झरने के पानी में स्नान करके कुछ किसानों ने स्वास्थ्य-लाभ किया है। उन्होंने इस बात की खूब जाच की और तब उन्हें जल का प्रभाव विदित हुआ। दूसरे विरोधी लिवरपूल (Liverpool) के डाक्टर जेम्स करी (James Currie) थे। इन्होंने भी १७९७ में एक पुस्तक प्रकाशित की, जिसमें उन्होंने ज्वर और अन्य रोगों में जल के प्रभाव पर लिखा। कुछ साल बाद ही ये दोनों पुस्तकें जर्मन भाषा में अनुवादित होकर छापी गईं और वहाँ उनका बड़ा आदर हुआ। १८०४ में जर्मनी अन्तर्गत ऑसबैक (Ansbach) के प्रोफेसर ऑर्टेल (Ortel) ने जल पीकर सब रोगों को दूर करने की विधि पर बड़ा आन्दोलन किया, जिससे उपर्युक्त दोनों अँगरेजी पुस्तकों से प्रभावित जर्मन जनता का जल के आरोग्य दायक गुण पर विश्वास बढ़ने लगा। यह सब तो था परन्तु अभतक प्राकृतिक चिकित्सा की किसी नियमित प्रणाली की स्थापना नहीं हुई थी।

जर्मनी अन्तर्गत सिलेसियन पहाड़ के एक गाँव में प्रेसनीज (Vincenz Priessnitz) नामक एक व्यक्ति का जन्म १७९९ ई० में एक साधारण किसान के घर हुआ। लड़कपन में उसे शिक्षा न दी जा सकी। किसान-बालकों की तरह वह अपने गाँव

के आस-पास के पहाड़ी जङ्गलों में दिन भर गायें चराया करता था। एक दिन, जब वह केवल आठ ही साल का था, अपनी गायों को चराते हुये, उसने देखा कि एक हिरनी बुरी तरह लँगड़ाती हुई एक झरने के पास पहुँची और करीब आध घंटे पानी में खड़ी होने के बाद पानी से निकल कर जिधर से आई थी उधर ही चली गई। इस घटना से तीव्र-बुद्धि बालक प्रेसनीज के दिल में यह जानने की उत्कंठा हुई कि वह जख्मी हिरनी पानी में इतनी देर तक क्यों खड़ी रही? उसने सोचा कि दूसरे दिन भी देखना चाहिये कि हिरनी फिर आती है या नहीं। ऐसा सोच कर दूसरे दिन वह उसी जगह बहुत पहले से ही छिप कर उसके आने की प्रतीक्षा करने लगा। हिरनी करीब करीब उसी समय पर फिर आई, जिस समय कि पिछले दिन आई थी, और इस बार आध घंटे से कुछ अधिक देर तक पानी में ठहरने के बाद फिर चली गई। इसी तरह रोज तीन सप्ताह तक नियमित समय पर हिरनी नित्य आती रही और प्रेसनीज बहुत ही ध्यान-पूर्वक उसे देखता रहा। प्रेसनीज ने यह भी देखा कि हिरनी का लँगड़ाना धीरे धीरे कम होता जा रहा है। फिर इस अवधि के अन्त में पानी से निकल कर हिरनी जो चारों पैरों से उछलती हुई भागी तो फिर न आई।

इस एक महत्वपूर्ण घटना के द्वारा आठ साल के बालक प्रेस-नीज के हृदय पर पानी का प्रभाव अंकित हो गया। जब प्रेसनीज सोलह साल का था तो एक दिन जंगल से लकड़ी काट कर लौटते

समय वर्षा की बौछार होने लगी। उस आँधी-बौछार में लुढ़कता हुआ वह घर के पास जा पहुँचा और जब आंधी शान्त हुई तो वह एक उलटे हुए छप्पर के नीचे पड़ा हुआ पाया गया। जब वह निकाला गया तो उसकी चार पसलियाँ बुरी तरह कुचली पाई गईं। वे उसके शरीर में धुस गई थीं। जब वह छप्पर के नीचे दबा पड़ा था तो उसी समय उसके स्मृति-पथ में हिरन वाली घटना आई और उसने सोचा कि यदि मैं इसके नीचे से जीवित निकाल लिया गया तो मैं भी उसी तरह अपनी चिकित्सा करके देखूँगा कि क्या प्रभाव होता है। छप्पर के नीचे से निकाले जाने पर सचमुच उसने अपनी चिकित्सा उसी तरह की। हिरनों की तरह पानी में खड़ा होकर उसको जल का प्रयोग न करना था क्योंकि उसकी पसलियां टूटी थीं। सूती कपड़े की गद्दी पानी में भिगो कर वह अपने आहत अंग पर रखने लगा और जब गद्दी सूख जाती तो फिर उसे पानी में भिगो कर रख देता। इस तरह दिन बीतते गये, उसकी पीड़ा कम होती गई, उसके विक्षत अंग में शक्ति आने लगी और वह बिल्कुल स्वस्थ हो गया।

इस तरह सभ्य-जीवन से बहुत दूर रहने वाला इस अनुभव-शील, दीन, अपढ़, पहाड़ी किसान-बालक ने अपनी विलक्षण तीव्र बुद्धि से जल-चिकित्सा-प्रणाली की स्थापना की, जो आज समस्त सभ्य संसार में अचूक चिकित्सा का एक अंग समझी जा रही है। (कुछ लोगों के मत के अनुसार प्रेसनीज १८०१ में पैदा हुआ और १८२९ में उसने अपने घर पर ही जल-चिकित्सा करना शुरू

किया।) इसकी नई विधि से अच्छा होने के लिए बहुत संख्या में दूर दूर से रोगी इसके घर पर आते और अच्छे होकर इसके यश की वृद्धि करते। पुराने विचार के लोग, विशेष कर डाक्टरों ने, इस विधि का घोर विरोध किया और इस बेचारे पर सब तरह का दोषारोपण कर इसे क़ैद की सजा तक दिलवाने की सोची। मामला बहुत बढ़ा, परन्तु इन सब फसादों में इसी की जीत हुई। इस जीत से इसका गौरव और भी बढ़ गया।

प्रेसनीज़ की चिकित्सा-प्रणाली में प्रधानता जल के व्यवहार और भोजन की सादगी की थी। इससे सचमुच उस प्रणाली को आधुनिक प्राकृतिक-चिकित्सा का एक अंग अर्थात् 'जल-चिकित्सा' कहना चाहिए, परन्तु इसके बाद विविध सज्जनों-द्वारा प्राकृतिक-चिकित्सा के अलावा और भी बातें जोड़ी गईं, जैसे उपवास, एनीमा का व्यवहार, भोजन का वैज्ञानिक ज्ञान, प्रकाश, धूप, हवा भाप और बिजली का प्रयोग, तरह तरह के लेप, स्नान और पट्टियाँ (packs), आराम (relaxation), व्यायाम इत्यादि। इन बातों के कारण अब प्राकृतिक-चिकित्सा-प्रणाली की सम्पूर्णता में कोई कमी न रह गई है। दुर्घटना इत्यादि में कभी कभी सर्जरी (चीरा) से सहायता लेनी होती है, परन्तु इसका अधिकतर काम मिट्टी, भाप, उपवास आदि से निकल जाता है। यदि प्राकृतिक नियमों के अनुसार रहा जाय तो फोड़े होवें ही नहीं और सर्जरी की आवश्यकता ही न पड़े।

प्रेसनीज़ के बाद (पहले ऑस्ट्रिया और अब चेकोस्लोवा-

का सन से पहला था। पहले पहल इसी ने यक्ष्मा के रोगी तथा दूसरे रोगों से ग्रस्त मनुष्यों को प्रकाश और वायु में पूरा शरीर खोल कर रखने और निरामिष (बिना मांस के) भोजन खाने के सिद्धान्तों का प्रचार किया।

जर्मनी अन्तर्गत लिपजिग (Leipzig) नगर के लूई कूने (Louis Kuhne) नामक एक जुलाहे के माता-पिता की मृत्यु औषधि वाले डाक्टरों के हाथ हुई थी और केवल बीस साल की अवस्था में ही यह युवक स्वयं हा सिर और फेफड़े के भयानक रोगों से तथा पेट में फोड़ा हो जाने से बुरी तरह पीड़ित होकर जीवन से निराश हो गया था। जब डाक्टरों ने १८६४ में इसकी बीमारी को अपनी शक्ति के बाहर समझ कर इसकी चिकित्सा छोड़ दी तो यह जीर्ण-शीर्ण युवक अपनी मृत्यु की घड़ियां गिनने लगा। परन्तु इसी समय जल-चिकित्सा के द्वारा रोग अच्छा होने की भनक इसके कानों में पड़ी। उस समय प्रेसनीज, श्रौथ, नीप आदि के बहुत से अनुयायी हो गये थे, जिनमें मेलत्सर (Meltzer), थियोडोर हैन (Theodor Hann), रसे (Rausse) आदि बहुत नाम पा रहे थे। कूने सीधा इनके आश्रम में आया और इनके कहे अनुसार अपनी चिकित्सा करने लगा। धीरे धीरे इसकी पीड़ा शान्त होने लगी। इसी समय उसका भाई भी बहुत बुरी तरह बीमार हो गया। उपर्युक्त प्राकृतिक चिकित्सकों से थोड़ा इशारा पाकर लूई कूने ने अपनी बुद्धि से कई प्रकार के -- -- से रोग अच्छा करने की विधि सोच निकाली और प्राकृ-

तिक चिकित्सा के एक अंग अर्थात् जल-चिकित्सा को पूर्ण रूप से उपयोगी बनाने के साथ साथ उसने अपने और अपने भाई के रोगों को भी अच्छा कर लिया। अपने और अपने भाई के स्वास्थ्य-लाभ का प्रभाव कूने के ऊपर इतना अधिक हुआ कि उसने इस विषय का ख़ूब अध्ययन किया और दूसरों पर भी प्रयोग किया। जब वह इसमें पूर्ण-रूप से सिद्धहस्त हो गया तो अपने ही नगर में सन् १८८३ में अपना चिकित्सालय खोल दिया। कूने का सिद्धान्त था 'Unity of all diseases' अर्थात् 'सब रोगों की जड़ एक ही है'—शरीर में विजातीय द्रव्य का एकत्रित होना—और यह भी कि केवल आन्तरिक सफाई से ही रोग अच्छा हो जाता है। विविध प्रकार के स्नानों का आविष्कार करते हुए इसने निरामिष भोजन और शाकाहार पर ज़ोर दिया तथा चेहरे के हाव-भाव और चेहरे की बनावट (facial expression) देख कर ही रोग पहचान लेने के तरीक़ों को भी ढूँढ़ निकाला। इसने अपने सिद्धान्त, प्रयोग और अविष्कार को 'दि न्यू साइन्स ऑफ हीलिंग' (The New Science of Healing) और 'दि साइन्स ऑफ फेशियल एक्सप्रेशन' (The Science of Facial Expression) नामक दो पुस्तकों में ख़ूब समझा कर लिखा है।

जर्मनी के ही एलोपैथी के प्रसिद्ध डाक्टर और बाद में प्राकृतिक-चिकित्सक हेनरिक लहमन (Henrick Lahmann) ने स्वस्थ जीवन, वैज्ञानिक-भोजन और स्वास्थ्य-वर्द्धक कपड़े

क्रिया-अन्तर्गत) लिन्डविज् (Lindewiese) नगर के जोहान श्रौथ (Johannes Schroth) नामक एक गाड़ी हाँकने वाले कोचवान ने प्राकृतिक-चिकित्सा के महत्व को अपने ही ऊपर घटित उदाहरणों से अच्छी तरह समझ कर इस प्रणाली के उन्नति-शील होने में विशेष रूप से सहायता दी। एक बार घुटने की गोल हड्डी (patella) पर उसे भारी चोट लग गई। ऐसा अनुमान होता था कि वह सदा के लिए लंगड़ा हो गया। उसने उसको अच्छा करने के लिए बहुत प्रयत्न किये, अच्छी से अच्छी दवा लगाई, पर कोई लाभ न हुआ। एक साधु ने उसे चोट पर ठंढे जल का प्रयोग करने को कहा। सब दवाओं से हार कर जल का प्रयोग करना उसने पहले से ही निश्चय किया था, परन्तु अब साधु-द्वारा उत्साह दिलाये जाने पर वह साधु के बताये ढंगों में कुछ अपनी बुद्धि से हेर-फेर कर अपनी चिकित्सा आप ही करने लगा और कुछ ही सप्ताह के बाद बिल्कुल अच्छा हो गया। अपने ऊपर आजमाये हुए इस अचूक विधि को दूसरों पर आजमाने के पहले वह इस प्रयोग को कुत्तों और घोड़ों पर करने लगा और इसमें जब वह सिद्धहस्त हो गया तो मनुष्यों को भी अच्छा करने लगा। प्रेसनीज की तरह इसकी ख्याति भी खूब फैली, परन्तु उसी की तरह औषधि-विज्ञान के भक्तों ने इसकी भी खूब निन्दा की। बीस साल तक उन लोगों ने इसे खूब सताया, इसकी जिन्दगी तबाह कर दी और कई तरह के दोषारोपण कर इसे जेल की भी सजा दिलवा दी। अगर उसके जीवन में नीचे की

हुई एक घटना न होती तो शायद वह इसी तरह प्राण भी विसर्जन कर देता। १८४९ मे वर्टेम्बरा (Wurtemberg) का ड्यूक लड़ाई में बुरी तरह घायल हुआ। कई स्थानों पर उसका शरीर क्षत-विक्षत हो गया। बड़े से बड़े डाक्टरों ने तीन महीने तक उसकी अच्छी से अच्छी चिकित्सा की परन्तु लाभ होने के बदले उसका जीना भी दुर्लभ हो गया। जीवन से आशा-रहित होकर ड्यूक ने अन्त मे श्रौथ का आश्रय लिया। श्रौथ ने उसे वचन दिया कि वह उसे अच्छा कर देगा और कुछ महीनों मे ही ड्यूक सचमुच बिल्कुल अच्छा हो गया। इस घटना के बाद श्रौथ शत्रुओं के चंगुल से मुक्त हुआ। ड्यूक ने इसकी ख्याति समस्त ऑस्ट्रियन फौज मे फैला दी। प्राकृतिक चिकित्सा के इस विधि को, जिसे श्रौथ करता था 'श्रौथ-चिकित्सा' (Schroth-cure) के नाम से पुकारते हैं। श्रौथ के बाद इसका लड़का (Emanule) इमेन्युल श्रौथ ने भी इसी विधि को अपनाया और लिन्डविज में ही अपना केन्द्र-स्थान बना कर हजारों रोगियों को प्रतिवर्ष अच्छा करने लगा।

जोहान श्रौथ के समय मे ही बवेरिया के एक उदार प्रकृति के पादड़ी, फादर नीप (Father Sebastian Kneipp), ने भी इस विधि का प्रचार असीम उत्साह से करना शुरू कर दिया और जड़ी-बूटी और जल के प्रयोग-संबंधी बहुत से बहुमूल्य आविष्कार किये। उसी देश के आर्नल्ड रिक्ली (Arnold Rickli) नामक एक व्यापारी ने अपने शहर मे १८४८ मे 'प्रकाश' और 'वायु' का एक सैनिटोरियम खोला, जो अपने ढंग

का सब से पहला था। पहले पहल इसी ने यक्ष्मा के रोगी तथा दूसरे रोगों से ग्रस्त मनुष्यों को प्रकाश और वायु में पूरा शरीर खोल कर रखने और निरामिष (बिना मांस के) भोजन खाने के सिद्धान्तों का प्रचार किया।

जर्मनी अन्तर्गत लिपज़िग (Leipzig) नगर के लुई कूने (Louis Kuhne) नामक एक जुलाहे के माता-पिता की मृत्यु औषधि वाले डाक्टरों के हाथ हुई थी और केवल बीस साल की अवस्था में ही यह युवक स्वयं भी सिर और फेफड़े के भयानक रोगों से तथा पेट में फोड़ा हो जाने से बुरी तरह पीड़ित होकर जीवन से निराश हो गया था। जब डाक्टरों ने १८६४ में इसकी बीमारी को अपनी शक्ति के बाहर समझ कर इसकी चिकित्सा छोड़ दी तो यह जीर्ण-शीर्ण युवक अपनी मृत्यु की घड़ियां गिनने लगा। परन्तु इसी समय जल-चिकित्सा के द्वारा रोग अच्छा होने की भनक इसके कानों में पड़ी। उस समय प्रेसनीज, श्रौथ, नीप आदि के बहुत से अनुयायी हो गये थे, जिनमें मेलजर (Meltzer), थियोडोर हैन (Theodor Hann), रूसे (Rausso) आदि बहुत नाम पा रहे थे। कूने सीधा इनके आश्रम में आया और इनके कहे अनुसार अपनी चिकित्सा करने लगा। धीरे धीरे इसकी पीड़ा शान्त होने लगी। इसी समय उसका भाई भी बहुत बुरी तरह बीमार हो गया। उपर्युक्त प्राकृतिक चिकित्सकों से थोड़ा इशारा पाकर लुई कूने ने अपनी बुद्धि से कई प्रकार के स्नानों से रोग अच्छा करने की विधि सोच निकाली और प्राकृ-

तिक चिकित्सा के एक अंग अर्थात् जल-चिकित्सा को पूर्ण रूप से उपयोगी बनाने के साथ साथ उसने अपने और अपने भाई के रोगों को भी अच्छा कर लिया। अपने और अपने भाई के स्वास्थ्य-लाभ का प्रभाव कूने के ऊपर इतना अधिक हुआ कि उसने इस विषय का खूब अध्ययन किया और दूसरों पर भी प्रयोग किया। जब वह इसमें पूर्ण-रूप से सिद्धहस्त हो गया तो अपने ही नगर में सन् १८८३ में अपना चिकित्सालय खोल दिया। कूने का सिद्धान्त था 'Unity of all diseases' अर्थात् 'सब रोगों की जड़ एक ही है'—शरीर में विजातीय द्रव्य का एकत्रित होना—और यह भी कि केवल आन्तरिक सफ़ाई से ही रोग अच्छा हो जाता है। विविध प्रकार के स्नानों का आविष्कार करते हुए इसने निरामिष भोजन और शाकाहार पर ज़ोर दिया तथा चेहरे के हाव-भाव और चेहरे की बनावट (facial expression) देख कर ही रोग पहचान लेने के तरीक़े को भी ढूँढ़ निकाला। इसने अपने सिद्धान्त, प्रयोग और अविष्कार को 'दि न्यू साइन्स ऑफ हीलिंग' (The New Science of Healing) और 'दि साइन्स ऑफ फेशियल एक्सप्रेशन' (The Science of Facial Expression) नामक दो पुस्तकों में खूब समझा कर लिखा है।

जर्मनी के ही एलोपैथी के प्रसिद्ध डाक्टर और बाद में प्राकृतिक-चिकित्सक हेनरिक लहमन (Henrick Lahmann) ने स्वस्थ जीवन, वैज्ञानिक-भोजन और स्वास्थ्य-वर्द्धक कपड़े

पहनने पर विशेष जोर दिया। इसी देश के एडौल्फ जुस्ट (Adolf Just) नामक एक और साधारण मनुष्य ने प्राकृतिक-चिकित्सा को अपने आविष्कारों से संपूर्णता-प्राप्त करने में सहायता दी। जुस्ट प्रकाश तथा वायु-सेवन का प्रबल पक्षपाती था। जुस्ट की यह धारणा है कि यदि प्रौढ़-मनुष्य भी प्राकृतिक जीवन व्यतीत करे तो उसके सारे शरीर में एक नई शक्ति उत्पन्न होकर उसे फिर से (rejuvenate) जवान बना देगी। उसकी पुस्तक 'रिटर्न टु नेचर' (Return to Nature) मशहूर है। जर्मनी का ही रहने वाला प्रोफ़ेसर ऑर्नल्ड एहरेट (Arnold Ehret) ने अमेरिका में प्राकृतिक-चिकित्सा का अच्छा प्रचार किया। उसने फलाहार और उपवास पर जोर दिया।

अमेरिका के डाक्टर हेनरी लिंडल्हार, एम० डी० (Henry Lindlhar) ने भी प्राकृतिक-चिकित्सा का प्रचार खूब किया। यह पहले एक बड़े विख्यात एलोपैथिक डाक्टर थे, पर पीछे प्राकृतिक चिकित्सा के अनुयायी हुए। इनका कहना है कि यदि नया रोग दवा इंजेक्शन आदि से शरीर में दब कर छिप रहा और विकार शरीर से नहीं निकला तो वही जीर्ण रोग के रूप में प्रगट होता है। उसी देश के डाक्टर डिवो (Dewey) ने भोजन और उपवास पर बहुत सी नई बातें सोच निकालीं, जिनसे प्राकृतिक-चिकित्सा और भी सम्पूर्ण हो सकी है।

इसी तरह बहुत से एलोपैथिक डाक्टर और अन्य सज्जन-गण भी हुए, जिन्होंने इस चिकित्साविधि की वृद्धि और प्रचार

में बड़ी सहायता दी । अमेरिका के डाक्टर कैलेब जैक्सन (Caleb Jackson), डाक्टर केलौग (Kellog), डाक्टर टिलडन (Tilden); जर्मनी के डाक्टर श्वेनिंगर (Schweninger) और इंगलैंड के दो प्रसिद्ध डाक्टर सर विलियम ओस्लर (Sir William Osler) और सर विलियम आर्बथनॉट लेन (Sir William Arbuthnot Lane) के नाम इन प्रचारकों में उल्लेखनीय हैं। अपने देश में भी जबलपुर निवासी राय बहादुर डाक्टर लक्ष्मीनारायण चौधुरी रिटायर्ड सिविल-सर्जन, का नाम प्रमुख प्राकृतिक चिकित्सकों में रखा जा सकता है। इनकी अवस्था इस समय ७८ साल की है पर यह एक नवयुवक से भी अधिक फुर्ती, चुस्ती और उत्साह से सारा काम करते हैं। अन्य प्रचारकों में 'फिजिकल कल्चर' पत्रिका के संपादक बर्नर मैकफेडन (Bernarr Macfadden) और 'हेल्थ फॉर ऑल' (Health for All) पत्रिका के संपादक स्टेनली लीफ (Stanley Lief) मशहूर हैं। अपने देश के एक दूसरे सुविख्यात प्राकृतिक चिकित्सक पुदुकोट्टा (मद्रास) के श्रीयुत के० लक्ष्मण शर्मा हैं। चौधुरी और शर्मा के अतिरिक्त और भी बहुत से प्राकृतिक चिकित्सक हिन्दुस्तान में हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि प्राकृतिक-चिकित्सा चिकित्सक मंडल से बाहर रहने वाले लोग, जैसे किसान प्रेसनीज, कोचवान श्रौथ, पादड़ी नीप, जुलाहा कूने आदि के द्वारा आविष्कृत और परिवर्द्धित होकर भिन्न भिन्न देशों के सुप्रसिद्ध, सुशिक्षित और

अनुभवी डाक्टरों-द्वारा अपनाई और फैलाई गई है। इन डाक्टर ने इसकी उपयोगिता तथा तत्व को समझ कर पुरानी पद्धति को त्याग दिया और इसके प्रबल समर्थक बन गये। इनके अतिरिक्त इस शताब्दी में संसार के प्रायः सभी देशों के उदारमत वाले चिकित्सकों ने इस चिकित्सा की उपयोगिता को समझा है और आजकल की प्रचलित विषैली औषधियों द्वारा होने वाले अनर्थों पर जोर देते हुए उसका विरोध करना शुरू किया है। सर विलियम औस्लर ने, जो गत वर्षों में संसार के शायद सबसे बड़े डाक्टर हो गये हैं, और अमेरिका के जॉन हॉपकिन्स युनिवर्सिटी के तथा इंगलैंड के ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी के चिकित्सा-विभागों के अध्यक्ष रह चुके हैं, आधुनिक चिकित्सा-प्रणाली को बड़े जोरों से निंदनीय बताया है। जर्मनी के प्रिन्स बिसमार्क के चिकित्सक डाक्टर श्वेनिंगर ने भी 'दि डाक्टर' (The Doctor) नामक एक पुस्तक लिखी है, जिसमें उन्होंने आज कल की जहरीली तथा प्राण-घातक औषधियों द्वारा चिकित्सा-प्रणाली की कड़ी आलोचना की है। जर्मनी मे, जहाँ से इस प्राकृतिक-चिकित्सा-विधि की उत्पत्ति हुई, सर्व-साधारण जनता ने चिकित्सकों को इसी विधि को अपनाने के लिए विवश किया है और जर्मन सरकार ने तो अपनी फौजी तथा जहाजी विभागों में भी इसी विधि का प्रचार कर दिया है। इन सब बातों से प्रगट होता है कि सभ्य संसार धीरे धीरे प्राकृतिक-चिकित्सा का तत्व समझता जा रहा है। यथार्थ में यह आधुनिक युग के उन आविष्कारों में है, जो मनुष्य जीवन को पहले से कहीं अधिक उपयोगी तथा सुखमय बनाने की चेष्टा कर रहे हैं।

ॐ